जनवरी, १९६९

मूल्य : २० रुपये मात्र

रूपायन संस्थान द्वारा प्रकाशित और
रूपायन प्रेस, बोरुन्दा [जोधपुर] द्वारा मुद्रित

आमुख

श्री कुलिश अमरीका गये—एक पत्रकार की हैसियत से। उस विशाल देश में केवल पैंतालीस दिन रहे और वे दिन भी निरंतर अमरीका की यात्रा करते हुए ही बीते। अमरीका के जीवन की तेज रफ्तार और उससे भी तेजी से पत्रकार की आंखों के सामने रंग-बिरंगे चित्र आये और विलीन हो गये। लेकिन आंखों के जरिये मन पर जो छाप पड़ी, उसे पत्रकार ने अपने तक ही सीमित नहीं रखा। प्रयत्न किया कि अपनी सहज प्रतिक्रियाओं के साथ 'राजस्थान पत्रिका' के पाठकों को भी जोड़ लें। इसी प्रयास में कुछ लेख तैयार हो सके, जिनकी मूल-प्रेरणा में प्रत्येक अस्थिर क्षण को अंकित कर देने की उत्कट लालसा ही मिलती है। परिणाम-स्वरूप अमरीका के जीवन पर एक विहंगम दृष्टि का सृजन अवश्य हो गया।

यों श्री कुलिश अमरीकी सरकार के निमंत्रण पर ही वहां पहुंचे थे किन्तु इस निमंत्रण का सौभाग्य उन्हें अपने पत्रकार जीवन की सफलता के कारण मिला था। निमंत्रण पर जाने के बाद श्री कुलिश ने जिस दायित्वपूर्ण रूप से 'राजस्थान पत्रिका' के पाठकों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाया, यह प्रशंसा की बात है। अन्यथा 'निमंत्रित यात्राओं' में पर्यटन के अतिरिक्त हो ही क्या पाता है!

'पत्रिका' के हजारों पाठकों ने प्रतीक्षा से, आतुरता से और उत्साह से श्री कर्पूर चंद कुलिश के लेखों को पढ़ा और उनकी रिपोर्ताज को आत्मसात करने का प्रयास किया। सही है कि प्रस्तुत पुस्तक, मात्र एक यात्रा विवरण है किन्तु यात्रा विवरण में जिस जीवन्त लेखन शैली और गहरी अनुभूति की दृष्टि मिलती है, उसने निश्चय ही पाठकों को नवीन स्फूर्ति प्रदान की। पाठकों की उसी मांग को परिपूरित करने के लिए यह पुस्तकाकार लेखमाला तैयार है। संभव है कि यह पुस्तक नये रूप से नवीन पाठकों को भी अमरीकी जीवन की आधुनिकतम समस्याओं की गहराई में जाने के लिए प्रवृत्त करे।

इस निर्लिप्त, निर्विकार और निरपेक्ष यात्रा विवरण में निश्चय ही एक सजीव अमरीकी चित्र पाठकों को प्राप्त होगा। पाठक को यही प्राप्ति लेखक की सफलता को सिद्ध करने में समर्थ होगी।

कोमल कोठारी—विजयदान देथा

विषय सूची

यात्रा का प्रारंभ १
लन्दन : अपनी लकीर पर ६
वाशिंगटन : मेज़वान के घर १४
गोरों की राजधानी में कालों का बहुमत २२
एक घरेलू गोलमेज सभा ३२
विलियम्सवर्ग : अतीत से सवक ४०
प्रेसीडेण्ट्स प्राइमरी : उम्मीदवार का चुनाव ४५
सोने के संसार में गरीवों का कूच ५२
न्यूयार्क टाइम्स : पढ़ें तो कैसे ? ५६
न्यूयार्क : लंका में सब बावन गज के ६५
स्वयं सेविकाएं : पर-दुख-कातर ७२
फूलों से परहेज क्यों ? ७८
समस्या कालों की नहीं गोरों की है ८५

पत्रकारों में : आमने सामने ९४
एक छलांग में मेट्रिक से ग्रेजुएट १०२
न्यूनतम आय की गारण्टी दो ! १११
केप केनेडी : मौत बटन में बन्द है ११५
नासा केन्द्र : जीवन की दौड़ में १२१
देखें, चांद का मुखड़ा कैसा है ? १२७
न्यू आर्लियन्स : निराला ही रंग १३२
अलपासो : अब मेरा घर है १४३
केनेडी को गोली : बन्दूक की बुलन्दी १४९
ग्रेन्ड केनयन : देखते ही रहो १५६
नई पीढ़ी : बदले तेवर १६०
देश काल का संकट १७१
लॉस वेगस : क्या जिंदगी जुआ है ? १७९
खुली दौड़ लेकिन कदम कदम पर रोक १९१
नारी : द्रुत गामिनी, मृदु भाषिणी १९९
नेहरू जेकेट और बम महादेव २१०
अखबार — टेलीविजन : अपना अपना राग २१९
ब्रेन ड्रेन : अमरीका अमरीका बन गया २२७
होनोलूलू : नाम ही मजेदार २३७
जापान : दौर दौरे में २४२
गिंजा : रंग रोशनी की एक शाम २५०
क्योटो : नई बोतल, पुरानी शराब २५८
फार्मूसा : साढ़े सात एकड़ की सीमा में २६६
पीकिंग या ताइपेह : चीन की खिड़की २७२
हांगकांग के हटवाड़े की एक सैर २७८
वापसी २८६
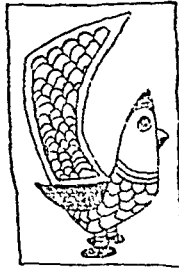
यात्रा का प्रारंभ

६ फरवरी १९६८ की शाम ज्यों ही मैं अपने कार्यालय में पहुंचा, कुछ साथियों ने बधाई दी। मैं यकायक कुछ समझा नहीं, तुरन्त ही मेरे असमंजस को दूर करने के लिए कहा गया कि अमरीकी राजदूत चेस्टर बोल्स का निमन्त्रण पत्र आया है मेरी अमरीका यात्रा के लिए। पत्र यद्यपि मेरे नाम से था, परन्तु वह प्रेस विज्ञप्तियों वाले बड़े पीले लिफाफे में आया था, अतः प्रकाशन-सामग्री समझ कर मेरे संपादकीय विभाग के साथियों ने खोल लिया था। मैंने पत्र को पढ़ा। मेरे लिए भी यह आकस्मिक घटना थी। ६ फरवरी से पहिले किसी ने संकेत रूप में भी मुझे कोई जानकारी नहीं दी थी। निमन्त्रण पत्र पर मेरी स्वीकृति मांगी गई और जल्दी ही। यह भी कहा गया था कि जून के अन्त तक मुझे अमरीका चला जाना चाहिये। तुरन्त ही मैं कुछ तय नहीं कर पाया। मेरे सामने सवाल था दो महीने से ज्यादा लगातार बाहर रहने का। विदेश यात्रा का प्रस्ताव मेरे लिए नया नहीं था। फिर भी एक आकर्षण जरूर था। निमन्त्रण

पत्र पर स्वीकृति देने के लिए मैं कुछ समय चाहता था, परन्तु मेरे दो सहयोगियों ने मेरा मानसिक भार काफी हल्का कर दिया। हमारे व्यवस्थापक लक्ष्मीनारायण व प्रबन्ध संपादक विजय भण्डारी ने अपनी ओर से यह फैसला सुना दिया कि मुझे निमन्त्रण को स्वीकार करना ही चाहिये। उन्होंने मेरे पीछे की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ली। वैसे भी 'राजस्थान पत्रिका' के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों में मैं इन्हीं दो मित्रों पर विशेष निर्भर करता हूं और अधिकांश भार भी ये दोनों ही उठाते हैं। मेरे जयपुर में रहते हुए भी दैनन्दिन कार्यों की देखरेख यही मित्र करते हैं, अतः इनकी अनुमति पाकर मैंने निमन्त्रण पत्र पर अपनी स्वीकृति भेज कर अपने प्रवास की तैयारी शुरू करदी। १६ फरवरी को मैंने पासपोर्ट के लिए आवेदन पत्र भर कर भेज दिया।

यहां मुझे यह लिखते हुए खेद होता है कि नई दिल्ली में पासपोर्ट कार्यालय में मेरे आवेदन पत्र की जो दुर्गति हुई वह मेरे लिए अप्रत्याशित थी। आवेदन पत्र में मैंने कोई भी खामी नहीं रखी थी, परन्तु पासपोर्ट कार्यालय के अभागे कर्मचारियों को कोई खामी नजर नहीं आई तो उन्होंने अपनी टांग अड़ाने के लिए बेमतलव का एक सन्देह खड़ा कर दिया, मजिस्ट्रेट के दस्तखतों पर। मैंने जयपुर के एस. डी. ओ. तारा प्रकाश जोशी के हस्ताक्षर करवाकर आवेदन पत्र भेजा था। जोशी जी ने इस कार्य में जो तत्परता दिखाई वह भी असाधारण थी, परन्तु नई दिल्ली ने उनके सब किये कराये को मिट्टी में मिला दिया। जोशी जी ने अपने दस्तखतों पर हर जगह अदालत की मुहर लगाई थी, परन्तु न जाने क्यों पासपोर्ट कार्यालय के सन्देहशील कर्मचारियों को उनपर विश्वास नहीं हुआ। करीव एक महीने कागजों को सड़ाने के वाद उन्होंने वापिस रजिस्ट्री करवाकर एस. डी. ओ. जयपुर के पास हस्ताक्षरों की पुष्टि के लिए भेज दिया। कहने की जरूरत नहीं कि एस. डी. ओ. जोशी जी ने फिर उसी तत्परता से आवश्यक कार्यवाही करके मेरे कागजों को तुरन्त भेज दिया। अप्रेल के तीसरे सप्ताह में पासपोर्ट मेरे पास पहुंचा।

इस बीच मैंने अमरीकी सूचना विभाग व दूतावास को वाशिंगटन पहुंचने की तारीख दे दी थी । मुझे दो मई को वाशिंगटन पहुंचना था। तारीख यह सोचकर दे दी थी कि पासपोर्ट बनने में ज्यादा समय नहीं लगेगा । मई और जून में अमरीका में मौसम भी वसन्त का रहता है । मेरी इच्छा थी कि अमरीका जाते हुए रास्ते में यूरोप के कुछ देशों की एक झलक देख लेता, परन्तु हमारे पासपोर्ट कार्यालय के बाबुओं को शायद यह मंजूर नहीं था। फिर भी मैंने इरादा और प्रयास नहीं छोड़ा। प्रेस इन्स्टीट्यूट नई दिल्ली के सचिव लक्ष्मण टण्डन ने ब्रिटिश सूचना विभाग को मेरी प्रस्तावित अमरीका यात्रा के बारे में जानकरी दी थी । वहां से मेरे पास मिस कार्पेन्टर की चिट्ठी भी आई थी, जिसमें मुझ से चाहा गया था कि दिल्ली जाऊं तब ब्रिटिश सूचना विभाग से भी सम्पर्क करूं । पासपोर्ट बनने से पहिले यदि मैं सम्पर्क भी करता तो बेकार था । मुझसे पहिला ही सवाल किया जाता तारीख के बारे में और तारीख मैं दे नहीं सकता था । पासपोर्ट मिलने के बाद मेरे पास इतना समय नहीं बच पाया था कि दिल्ली जाता । मैं २४ अप्रेल को दिल्ली पहुंचा । ब्रिटिश सूचना विभाग से भी सम्पर्क किया । मेरे पहुंचते ही उन्होंने लन्दन को समुद्री तार भेजा । लन्दन से स्वीकृति सूचक जवाब भी आ गया और यह तय हुआ कि मैं २८ अप्रेल को नई दिल्ली से रवाना होकर २९ अप्रेल को लन्दन उतर जाऊं और दो मई को वाशिंगटन रवाना हो जाऊं । केवल तीन रात लन्दन में बिताने का समय मिल पाया, जिसका ब्रिटिश सूचना विभाग को व लन्दन में केन्द्रीय सूचना केन्द्र को बेहद अफसोस था । वे चाहते थे कि कम से कम १५ दिन मैं ब्रिटेन में रहता । मेरे लन्दन-पड़ाव की पूरी व्यवस्था का जिम्मा वे लेने को तैयार थे । इसी तरह फ्रान्स, जर्मनी आदि देशों का भी दौरा करना मेरे लिए संभव था, परन्तु पासपोर्ट की कहानी पढ़कर आपकी समझ में आ गया होगा कि हमारे सरकारी दफ्तरों का हाल क्या है । उनकी बला से अगर किसी का काम बिगड़े या बने ।

अमरीका जाने के लिए पासपोर्ट बनवाने के अलावा मेरे सामने दूसरे भी कई काम थे। अमरीकी सूचना विभाग के नई दिल्ली कार्यालय में जाकर मैंने कुछ जानकारी हासिल की। मई और जून में अमरीका में मौसम कैसा रहेगा ? किस तरह के कपड़े पहिनना होगा ? दैनिक जरूरतों के बारे में दूसरी जानकरी भी की। इस जानकारी के आधार पर मैंने अपने साथ दो सूट ले लिये। मुझे सलाह दी गई थी कि एक गर्मकोट भी लेलूं, किन्तु मैंने उस पर अमल नहीं किया। मैंने अपने साथ पश्मीने का एक पूरी आस्तीन का स्वेटर जरूर ले लिया था। जिससे लन्दन और शिकागो में मुझे अच्छी राहत मिली। इन दोनों शहरों में मैंने सर्दी ज्यादा महसूस की।

मैं अपने साथ कुछ सौगातें भी ले गया था, जो प्रवास में बड़ी काम आई। सब जयपुर की बनी हुई दस्तकारी की चीजें थी। इन चीजों को अमरीकी लोगों ने बहुत पसन्द किया।

पासपोर्ट के अलावा 'पी' फार्म का काम रिजर्व बैंक से करवाना था, परन्तु यह काम एक ही दिन में टी. डबल्यू. ए. ने करवा दिया। वीसा बनवाना था, वह अमरीकी सूचना विभाग की एक अधिकारी मिस क्रुकशेन मुझे साथ ले जाकर हाथोंहाथ अमरीकी दूतावास से बनवा लाई। स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रमाण पत्र मैंने जयपुर में ही बनवा लिया था। मैंने एक काम और किया। नई दिल्ली में रहते हुए जापानी दूतावास से भी वीसा प्राप्त कर लिया था, अतः मुझे विदेश में नहीं बनवाना पड़ा और विदेशी मुद्रा खर्च नहीं करनी पड़ी।

मुझे विदेश यात्रा से पहिले सबसे ज्यादा दिलचस्प अनुभव हुआ; वह यह सुनने का कि मैं किसके लिए क्या लाऊंगा। मेरे व्यक्तिगत मित्रों की और कुटुम्बियों की संख्या एक दूसरे से बढ़कर है और हर एक कुछ न कुछ अपेक्षा रखता था। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं थी जो अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे, परन्तु उन लोगों की तादाद का शुमार ही नहीं जिनकी फर्माइशों में पूरी प्रदर्शनी लगाई जा सकती थी। ये फर्माइशें भी स्वाभाविक थीं। अमरीका से भी कोई

भारत यात्रा के लिए आता है तो यहां की कोई न कोई सौगात लेकर जाना ही चाहता है। भारत में भी हम अपने शहर से दूर कहीं जाते हैं तो कुछ न कुछ लेकर आना चाहते हैं, परन्तु भारत के विदेश यात्री की स्थिति वड़ी विषम होती है। मुझे विदेशी मुद्रा के नाम पर सिर्फ साढ़े तीन पौण्ड दिये गये थे। अमरीकी सरकार से जो कुछ मिलना था, वह दैनिक खर्च को ध्यान में रखकर ही मिलना था। मुझे २५ डालर रोज मिलते थे : जिसमें होटल, खाना, चाय - नाश्ता, सवारी खर्च, कपड़े धुलाई वगैरह सव तरह के खर्च शामिल थे। अमरीकी यात्री के सामने तो इस तरह की कोई सीमा होती नहीं, लेकिन यह बात कितने लोग जानते हैं? किस किस के सामने मैं अपनी कठिनाई समझाता? एक दिन यों ही फर्माइशों की सूची वनाने बैठा तो करीव १५० तक पहुंच गई। अगर एक डालर का औसत भी लगाऊं तो १५० डालर चाहिये। सूची में सव इस तरह के नाम थे, जिनमें से मैं एक को भी काट नहीं सका। एक एक नाम के साथ एक एक परिवार भी बंधा हुआ था। जिसके प्रत्येक सदस्य का मुझ पर पूरा पूरा हक था। इधर कस्टम की पावन्दी। ५०० रुपये तक की चीजें सामान्य कर देकर लाई जा सकती हैं। इससे ऊपर होने पर जुर्माना देना पड़ सकता है। दूसरी ओर मेरी उत्कट इच्छा थी कि अगर कुछ वचत हो तो मैं उस वचत के सहारे एशिया के देशों का दौरा करूं। देशाटन के मुकावले सौगातें खरीदना मुझे छोटा काम लगता था। मेरा सोचने का तरीका यह था कि चीज तो हरएक मिल जायगी अपने देश में ही, लेकिन जापान, फार्मूसा, हांगकांग आदि देश देखने को वारवार नहीं मिलेंगे। मेरे पास दुनिया का गोलचक्कर काटने का टिकट भी था। मैंने अपने यात्रा कार्यक्रम में पहिले ही यह शामिल कर लिया था कि यूरोप होकर अमरीका जाऊंगा और जापान होकर आऊंगा। यूरोप लाख वढ़ा चढ़ा होकर भी मेरी दृष्टि में एशियाई देशों के मुकावले कम महत्वपूर्ण था। मेरे सामने जव पसन्द थी तो क्यों न मैं एशियाई देशों में होकर आता।

मुझे २८ अप्रेल की रात को या २९ अप्रेल की सुबह पालम हवाई अड्डे से उड़ान भरनी थी। यात्रा सम्बन्धी कागजी कार्यवाही, 'पी' फार्म, वीसा, ट्रेवलर्स चेक आदि के लिए दो-तीन दिन दिल्ली में रहना जरूरी था। २७-२८ अप्रेल को शनिवार और रविवार के कारण अमरीकी सूचना विभाग और दूतावास की छुट्टियां थीं, अत: मैं २३ अप्रेल की रात को ही दिल्ली मेल से रवाना हुआ। मेरे प्रवास कार्यक्रम की सार्वजनिक सूचना नहीं दी गई थी। मित्रों व परिजनों तक ही उसकी जानकारी शामिल थी। मैंने देखा कि उन सबमें बड़ा उत्साह था। मैं स्वयं उतना उत्साहित नहीं था, न जाने क्यों? मुझे बारबार लग रहा था जैसे कि कोई जिम्मेदारी उठा रहा हूं। अगर अमरीका में जाकर सैर सपाटे करने की मेरी कोई कल्पना होती तो भी एक चाव पैदा होता, परन्तु मेरे मानस में लगातार सवाल उठते रहते थे — मुझे क्यों बुलाया गया है? मैं वहां जाकर सारे यात्रा-खर्च की सार्थकता किस तरह सिद्ध करूंगा? मुझसे जो लोग जिस तरह की भी अपेक्षा रखते हैं, उन्हें कहां तक पूरी कर सकूंगा। यह यात्रा मेरी दृष्टि में कोई व्यक्तिगत विषय की तरह नहीं थी। यह एक पत्रकार को मिला हुआ यात्रा का निमन्त्रण था, एक विदेशी सरकार से। जितना ही अधिक उत्साह मेरे मित्रों में था, उतना ही अधिक दायित्व मैं अपने ऊपर समझने लगा। २३ अप्रेल की रात को जयपुर रेलवे स्टेशन पर कोई ५० मित्रों का जमाव होगा। कुछ लोग ९ बजे ही घर पर आ गये थे। इन सबसे विदा लेकर रात को एक बजे मैंने करीब दो महीने के लिए जयपुर से कूच कर दिया।

नई दिल्ली में, मैं २४ अप्रेल से २८ अप्रेल तक रहा। २४-२५-२६ अप्रेल के तीन दिन मैंने कागजी कार्यवाही में लगाये। २७-२८ को शनिवार और रविवार था, अतः ब्रिटिश सूचना विभाग से भी इससे पहिले ही सारी व्यवस्था करवानी थी और वह हो भी गई। २७-२८ अप्रेल में से एक दिन मैं पूसा इंस्टीट्यूट जाना

चाहता था। मेरी इच्छा थी कि भारत में खेती के क्षेत्र में जो वैज्ञानिक गवेषणा कार्य हो रहा है उसकी मोटी मोटी जानकारी करता जाऊं ; इसलिये कि अमरीका में इस सम्बन्ध में कई लोग चर्चा करेंगे। अमरीका हमें खाने को गेहूं देता है और हर अमरीकी आदमी भारत की खेती-बाड़ी के बारे में कोई न कोई जिज्ञासा रखता होगा। पूसा इन्स्टीट्यूट में मेरे कुछ परिचित अनुसन्धान-कर्त्ता भी थे। मैं उनसे मिला। पूरा दिन करीब करीब पूसा इन्स्टीट्यूट में ही बिताया और वहां मिली हुई संक्षिप्त जानकारी अमरीका प्रवास में मेरे बड़ी काम आई।

एक दिन मैंने अपने कुछ निकट मित्रों से मिलने में लगाया। यहीं मैं मदर इंडिया के संपादक बाबू राव पटेल से और आकाशवाणी भवन में गोपालदासजी बैजल से भी मिला। इनका उल्लेख इसलिये करना चाहता हूं कि दोनों ही महानुभावों की सलाह मेरे लिए बहुमूल्य सिद्ध हुई क्योंकि दोनों को अमरीका का अच्छा ज्ञान है।

२८ अप्रेल की रात को अर्थात् २९ अप्रेल की सुबह मैं पान-अमरीकन विमान से लन्दन होकर अमरीका के लिए रवाना हो गया। पूरी रात ही काली हुई। पान-अमरीकन के कार्यालय में बड़े तड़के तीन बजे पहुंचना था। रात को सोने में १२ या १ तो वैसे ही बज जाते हैं। दो घण्टे का सोना क्या सोना, लेकिन सोने का उपक्रम तो किया ही।

एक घण्टा पालम हवाई अड्डे पर सामान बुक करवाने और पासपोर्ट, कस्टम आदि की कार्यवाही में लगा। सवा पांच बजे सुबह विमान उड़ता था। आधा घण्टे पहिले ही दोस्तों से विदाई लेली और दूर अनजान देश के रास्ते चल पड़ा। पहिली बार अपने देश के बाहर निकला था। मन में कौतूहल तो था, झिझक जरा भी नहीं थी। मुझसे पहली पीढ़ी में जब विदेश-यात्रियों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था, तब न जाने उनको कैसा लगा होगा? आज तो धूमधाम से विदाई दी जाती है। अभी १९३५ की ही बात है,

मैं ९ वर्ष का था । मुझे याद है कि जयपुर से स्व. सेठ सोहनमल गोलेछा, सरदारमल कास्टिया और मोतीचन्द हीरावत अमरीका जाने को हुए तो समाज में उनका भारी विरोध हुआ। विरोध के वावजूद वे चले गये, परन्तु वापिस आने पर फिर उन्हें भारी लोकापवाद का सामना करना पड़ा। उसको भी उन्होंने सहन किया। मैं समझता हूं कि उन लोगों ने मेरी पीढ़ी का रास्ता विलकुल साफ कर दिया। उनके वाद विदेश जाने वालों को न केवल मौन स्वीकृति मिल गई, वल्कि अव तो उनकी विदाई भी धूमधाम से होती है। अगर वे लोग दकियानूसी विरोध के सामने समर्पण कर देते तो हो सकता है आज मुझ जैसे कई विदेश यात्रियों को उसी विरोध का सामना करना पड़ता। जयपुर के सवसे पहिले अमरीका - यात्री ईश्वरमल सोगाणी व उनकी पत्नी के साथ क्या वीती होगी, यह मैं नहीं जानता, परन्तु मैं यह कह सकता हूं कि आज विदेश यात्राओं का जो महत्व वन गया है, उसे वनाने में मुझसे पहिली पीढ़ी के यात्रियों का सवसे वड़ा योगदान है।
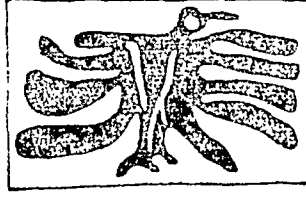
लन्दन : अपनी लकीर पर

पालम हवाई अड्डे से मुंह-अंधेरे ही विदा होने तक मुझे लग रहा था कि किसी नई दुनिया में जा रहा हूं लेकिन लन्दन पहुंचने पर मुझे यह कतई नहीं लगा कि किसी अनजान देश में हूं या अजनबी हूं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बचपन से ही मेरी पीढ़ी के भारत-वासी लन्दन के बारे में पुस्तकों, फिल्मों और अखबारों के जरिये हर छोटी बड़ी बात को जानते रहे हैं और दो सदियों का हमारे रहन-सहन पर लन्दन का बेहद असर है। ३ दिन के थोड़े से समय में मैं राष्ट्रकुल कार्यालय के अधिकारियों के साथ बहुत कुछ घूमा और मुझे लगा कि लन्दन शहर बम्बई का ही वृहत् एवं परिष्कृत रूप है। मुख्य शहर में विक्टोरिया के जमाने की बड़ी-बड़ी इमारतें बम्बई के फोर्ट एवं कलकत्ता के डलहौजी स्क्वायर की याद दिला देती हैं। आज लन्दन शहर नये और पुराने जमाने की दहली पर खड़ा है। वह अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है।

आज लन्दन की सबसे बड़ी समस्या मकानों की है।

मजदूर सरकार पर इस समस्या का बड़ा भारी दवाव है। समस्या का दिलचस्प पहलू यह है कि लन्दन के विस्तार के लिए जमीन की कमी है। जो जमीन उपलब्ध है वह दूर भी वहुत है। अमरीका की तरह लन्दन में वहुमंजिले गगनचुम्वी मकान वनाने का वड़ा भारी विरोध है, क्योंकि लन्दन अपने पुराने युग के मकानों को गिराना भी नहीं चाहता। उन मकानों के साथ लगी हुई इतिहास की स्मृतियों को वह संजोये रखना चाहता है। लन्दनवासियों की धारणा है कि लन्दन का पुरानापन विदेशी पर्यटकों के लिए वहुत वड़ा आकर्षण है। ब्रिटिश ट्रेवल एसोसियेशन के एक प्रवक्ता ने मुझे वताया कि पिछले साल लन्दन में कुल ८० लाख विदेशी पर्यटक आये जिनसे लन्दन को ३५ करोड़ पौण्ड की आमदनी हुई जो पिछले वर्षों में सवसे ज्यादा थी। इस साल में पर्यटकों की संख्या में १० प्रतिशत वृद्धि का रुख है लेकिन लन्दनवासियों को भय है कि कहीं अमरीकी पर्यटक कम न हो जायें, क्योंकि अमरीकी सरकार डालर के खर्च पर अंकुश लगा रही है। लन्दन को सबसे ज्यादा डालर पर्यटकों से ही मिलते हैं और कुल पर्यटकों में से एक तिहाई पर्यटक अमरीका से आते हैं। डालर देवता के आव्हान के लिए ट्रेवल एसोसियेशन व सरकार तरह-तरह के आयोजन कर रही है। खान-पान और होटलों की सज्जा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। अनेक होटल जो उन्नत श्रेणी के हैं, उन्हें पुरानी सज्जा पर चलाया जा रहा है। इसी तरह के एक होटल एर्मिन्स में मैं ठहरा हुआ हूं।

हाल ही में लन्दन में काले-गोरे का सवाल उठ खड़ा हुआ है जो विल्सन सरकार के लिए सिरदर्द वना हुआ है। काले-गोरे का भेद तो यहां कभी नहीं मिटा था लेकिन आज वह उभर कर सामने आ गया है। यह सवाल उठा है कि केनिया के ब्रिटिश पासपोर्ट वाले भारतवासियों के आवर्जन के कारण और ब्रिटेन के नये आवर्जन कानून के कारण। वर्णभेद के अलावा इस सवाल का एक दूसरा पहलू भी है ओर वह यह कि लन्दन की पाचनशक्ति अव गिरती जा रही

है। जो कुछ बच रहा है उसे सजाकर रखने में ही लन्दन अपने वर्चस्व की इतिश्री समझने लगा है। वह विदेशियों को बसाने में हिचकने लगा है। एक जिम्मेदार अधिकारी ने मुझे बताया कि लन्दन में चिकित्सा व शिक्षा मुफ्त है जिसके लिए विदेशियों से कोई कर नहीं लिया जाता लेकिन लन्दनवासी हर सप्ताह अपने वेतन में से कुछ अंश कटवाते रहते हैं जो सामाजिक सेवाओं पर खर्च किया जाता है। इन सेवाओं का लाभ विदेशियों को भी मिलता है जिससे करदाताओं में असंतोष है। वे नहीं चाहते कि ज्यादा विदेशी यहां आकर बसें। लन्दन में भारतवासियों की संख्या बहुत है। साउथआल में करीब १५ हजार भारतवासी हैं जिनके कुछ उम्मीदवार आगामी स्थानीय चुनावों में भी खड़े हो रहे हैं। लन्दन में विदेशी नागरिकों के रजिस्ट्रेशन का कानून नहीं है, अतः यह ठीक-ठीक बताना मुश्किल है कि यहां कुल भारतवासी या विदेशी कितने हैं, परन्तु उनकी संख्या कई लाख है। इस तरह विदेशियों एवं काले-गोरों के सवाल आपस में मिल गये हैं और आजकल एक साथ उभर कर आये हैं। मई दिवस के प्रदर्शन में पार्लियामेंट के सामने इनके समर्थन में नारे लगाये गये। उसी दिन बी. बी. सी. के टेलीविजन पर लिबरल पार्टी के विवाद-रत नेताओं को भी बुलाया गया और वर्णभेद सम्बन्धी कार्यक्रम का विशेष आयोजन किया गया। लिबरल पार्टी में वर्ण भेद सम्बन्धी प्रसारण को लेकर गहरा विवाद चल रहा है।

लन्दन के रहन-सहन में नये जमाने की छाप उतनी ज्यादा नहीं है। टेरीवूल का जितना प्रसार भारत के बड़े-बड़े शहरों में हो रहा है उतना आज भी लन्दन में नहीं है। मेरे पहुंचने के दिन से ही यहां बरसात हो रही है और सर्दी काफी बढ़ गई है। इसलिए छतरियों और गर्म कपड़ों की बाढ़ आ गई है, लेकिन गर्म कपड़ों में वही पुराने ढर्रे की ट्यूड और सर्ज देखने में आई है, टेरीवूल नहीं। यूरोपीय स्टेन्डर्ड की अच्छी पोशाक लन्दनवासियों को बेहद रुचिकर है। मिनि-स्कर्ट पहनने वाली लड़कियां भूले भटके ही नजर आती हैं।

लन्दन वाले बहुत जल्दी जल्दी बदलना नहीं चाहते। एक एक पुरानी चीज को सजाकर संजोकर रखना पसन्द करते हैं। लन्दन का रवैया शायद सारी दुनिया के बदल जाने के बाद ही बदलेगा। परिवर्तन के बारे में लन्दन का रवैया रूढ़िवादी भी है और उपयोगितावादी भी। लन्दन के ज्यादातर क्लबों में आज भी महिलाओं को सदस्य नहीं बनाया जाता, प्रेस क्लब में भी नहीं। पूछने पर प्रेस क्लब के वयोवृद्ध मन्त्री मेकार्थर ने बताया कि स्त्रियों को सदस्य बनाने पर पुरुष सदस्यों की पत्नियां चैन की नींद नहीं सो सकेंगी और उनके घरों में कलह होंगे। वैसे अखबारों में आजकल स्त्री कर्मचारियों की संख्या काफी है।

मैंने जब स्त्रियों के समानाधिकार की बात चलाई तो मेकार्थर ने एक दलील यह भी दी कि प्रेस क्लब का मकान पुराना है। अगर स्त्रियों को सदस्य बनाया गया तो उनके लिए शौचालय-स्नानघर आदि की जगह निकालना मुश्किल होगा। मैंने जानकारी चाही कि क्या लन्दन के ज्यादातर क्लबों का यही रवैया है। लेकिन मेहमानों के तौर पर वहां स्त्रियां बराबर जाती हैं और क्लब के बार, डाइनिंग हॉल व दफ्तर में स्त्रियां काम करती हैं। व्यक्तिगत रूप से भी स्त्रियों को काफी स्वतन्त्रता है। कुंवारी मां की सन्तान को पालने-पोसने की व्यवस्था है। उसे धिक्कृत नहीं किया जाता बल्कि कोशिश यह की जा रही है कि लड़कियां निरोधक-उपकरणों का प्रयोग करें। आवास समस्या के कारण संगठित परिवार-नियन्त्रण योजना में अविवाहित लड़कियों को भी सुविधाएं दी जाती हैं।

लन्दन में भिक्षा मांगने पर रोक है लेकिन भारत के नशाबन्दी कानून की तरह यहां भी भिक्षा विरोधी कानून को चकमा दिया जा सकता है। मैंने ब्रिटिश म्यूजियम के बाहर दो बूढ़ों को इसी तरह चकमेबाजी करते देखा। एक बूढ़ा गिटार बजाता जाता था और दूसरा झोला फैलाकर भीख मांगता था। एक अधिकारी ने यह स्पष्टीकरण किया कि संगीत के जरिये कमाना वर्जित नहीं है।

'थेंक्यू' लन्दन जाने वाले के लिए सबसे ज्यादा जरूरी चीज है। पौंड शिलिंग पैंस के बिना शायद लन्दन में गुजर हो जाय, थेंक्यू के बिना नहीं। यह शिष्टाचार लखनवी अदा को भी मात कर गया है। यही नहीं कि आपका काम किसी ने किया और आपने शुक्रिया अदा कर दिया, बल्कि यह बैरा आपको चाय दे गया और साथ में कह गया 'थेंक्यू सर, वैरीमच'। यह व्यवहार लोग दिखाऊ भी नहीं हैं बल्कि लन्दन के सामाजिक शिष्टाचार का अंग है जिससे भारतवासी भली भांति अभ्यस्त हैं। विनयशीलता और सफाई, अनुशासन व शालीनता लन्दन के जीवन की एक विशेषता है।

— २ मई, १९६८
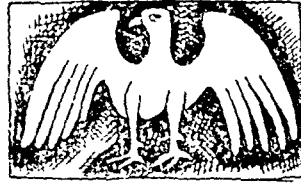
वाशिंगटन : मेज़बान के घर

लन्दन से वाशिंगटन की यात्रा के ७ घन्टे जैसे अन्तरिक्ष में बीते । दो मई को डेढ़ बजे दिन को लन्दन हवाई अड्डे से उड़ान भर कर बीच में कहीं रुके बिना ७ घन्टे के बाद वाशिंगटन के नए बने हुए डलस हवाई अड्डे पर टी. डबल्यू. ए. का विमान उतरा । करीब आधा घण्टे पहले आंख खुलने पर अपनी घड़ी में देखा तो आठ बजे थे, लेकिन आसमान में तीसरे पहर का सूरज तेज चमक रहा था । हवाई कम्पनी का कप्तान जब एक कार्ड भरवाने के लिए आया तो उसकी घड़ी से समय मिलाया । चार बजे थे । विमान में लन्दन से ही यात्री बहुत कम बैठे थे, अतः मैंने अपनी पंक्ति की तीनों सीटों के बीच के हैंडिल हटा-कर सोने की व्यवस्था करवाली थी । थोड़ी देर बैठे बैठे खिड़की से नीचे की ओर देखता रहा । नीचे अतलान्तिक समुद्र था लेकिन बादलों की परत से पूरी तरह ढंका हुआ । ३० हजार फीट की ऊंचाई पर आसमान के सिवाय कुछ भी नहीं । एकरसता की गहनता में नींद आ गई और वाशिंगटन के आस पास ही पहुंच कर आंख खुली । अगर

हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन को किसी देश की समृद्धि का मापदण्ड माना जाय तो यहां भी कहना पड़ेगा कि दिल्ली से वाशिंगटन तक के मेरे मार्ग के सभी हवाई अड्डों में डलस हवाई अड्डा सर्वश्रेष्ठ था और कराची व पालम हवाई अड्डे सबसे हल्के पड़ते थे। दूसरा स्थान लन्दन और फ्रेंकफर्ट को दिया जा सकता है और तीसरा बेरूत व इस्ताम्बूल को।

विमान उतरते ही टी. डबल्यू. ए. का कोच खिड़की से आ लगा; वातानुकूलित कोच। क्या मजाल कि यात्री को बाहर की हवा का झोंका भी लग जाय। विमान से हमें हवाई अड्डे की इमारत के दरवाजे पर पहुंचाया गया और वह इमारत भी वातानुकूलित। स्वास्थ्य एवं कस्टम की पूछताछ हुई। मुझे लेने के लिए परराष्ट्र विभाग के एक अधिकारी आ पहुंचे थे। किसी तरह की कोई असुविधा नहीं हुई। कस्टम वालों ने एक ही सवाल किया, फूल तो नहीं लाये हैं? वे सभी यात्रियों से एक ही सवाल पूछते थे और यात्रियों के कथन पर विश्वास भी कर लेते। किसी किसी के पास सामान के बन्डल ज्यादा देख कर खुलवा लेते थे। देखते यही थे कि फूल तो नहीं है? अजीब ही बात लगी। वाशिंगटन शहर के रास्ते में वर्जिनिया प्रदेश की घनी हरयाली देख कर तो मेरा कौतूहल और भी ज्यादा बढ़ गया। सवाल मेरे दिमाग में बार बार चक्कर काटने लगा कि इस हरे भरे देश में फूलों पर इतनी कड़ी नजर! फूलों के प्रति डालर की यह बेरुखी थी या प्रीति, मेरी समझ मे नहीं आया।

हवाई अड्डे से वातानुकूलित कार में ही मुझे होटल में ले जाया गया, जो स्वयं वातानुकूलित था। अभी तक मुझे पता नहीं चला कि अमरीका की हवा कैसी है। होटल के रास्ते में अधिकारी महोदय ने मुझे प्रारम्भिक जानकारी दी और परराष्ट्र विभाग का एक पत्र भी दिया, जिसमें मेरे आगमन के बारे में स्वागत सूचक शब्दावली लिखी हुई थी और दूसरे दिन कार्यालय में मिलने का समय निर्धारित था। मैंने पत्र जेब में रखा और तुरन्त ही अपनी मूर्खता

का एक नमूना सामने आ गया। हवाई अड्डे पर मैं अपनी जेब में रखे हुए पांच पौण्ड के नोट को डालरों में बदलवाना भूल गया और मेरा ख्याल भी था कि या तो होटल में पौण्ड बदल दिए जायेंगे या पौण्ड का सिक्का भी शहर में चलता होगा। मुझे नयी दिल्ली में अमरीकी दूतावास से जो ३५ पौण्ड और पालम हवाई अड्डे पर जो ३।। पौण्ड मिले थे, अब तक खर्च हो चुके थे, लेकिन इसी बीच बी. बी. सी. से पांच पौण्ड और कुछ शिलिंग मिले थे जो बच रहे। मैंने अपनी बेवकूफी जब परराष्ट्र विभाग के उक्त अधिकारी हेक्टर लेवलेंक के सामने जाहिर की तो उन्होंने बताया कि पौण्ड से यहां काम नहीं चलेगा और बदलवाने का काम दूसरे दिन बैंक खुलने पर ही होगा। उन्होंने मुझे अपने पास से पांच डालर उधार दिए, जिनसे रात और सुबह का काम चल गया।

मैंने उन्हें सोमवार को इस ऋण का भुगतान करवाया, जब कि मैं अपनी अमरीका यात्रा का कार्यक्रम बनाने के लिए परराष्ट्र विभाग पहुंचा। इससे पूर्व जब शुक्रवार को मैं परराष्ट्र विभाग गया, तो उस समय तक मेरा दैनिक खर्च का चेक नहीं मिला था। यह चेक एक अन्य कार्यालय से मिलने वाला था। इस प्रसंग में मुझे तनिक अनुभव हुआ। हमेशा खाली हाथ रहने और आगे की न सोचने की आदत मुझे कभी न कभी मुसीबत में डाल सकती है। खाली हाथ रहते रहते शायद यह मेरी आदत बन गई है।

होटल में पहुंचने पर कुछ देर सामान इधर उधर करने में समय बीता और बाद में मैं अपनी लन्दन यात्रा का शेषांश लिखने बैठ गया। लिखते लिखते फाउन्टेनपेन की स्याही खत्म हो गई। यह दूसरी बेवकूफी थी कि मैंने लन्दन के होटल में स्याही तो भरवाली, किन्तु वहां दवात नहीं खरीदी। लिखना बन्द हो गया। कोई आठ बजे होंगे। अभी सूरज छिपा ही था। जी में आया कि जरा बाहर घूमा जाय।

इसी समय मुझे ध्यान आया कि हमारे होनहार पुलिस अफ-

सर भवानी मल माथुर भी वाशिंगटन आए हुए हैं। उनका पता मैं जयपुर से ही लिख लाया था। डायरी देखी, पता याद किया और होटल का कमरा बन्द करके नीचे उतर आया। थोड़ी देर यों ही खड़ा रहा। रास्ते की चहल पहल देखता रहा। मैं सत्रहवीं स्ट्रीट या गली में था, भवानी मल जी का पता इक्कीसवीं स्ट्रीट का था। सोचा पास ही होगी और यह बात सही निकली। रास्ते में एक महानुभाव से पूछा तो उन्होंने मोटे तौर पर नक्शा समझा दिया। मैं भवानी मल जी को पूर्व सूचना नहीं देना चाहता था। उनके साथ कोई औपचारिक सम्बन्ध भी नहीं है। घरबार की जैसी मुलाकात है। मैं अचानक ही पहुंचना चाहता था। वाशिंगटन की गलियां जयपुर की गलियों की तरह ही एकदम सीधी हैं। मकान नम्बर मालूम हो तो पहुंचने में कोई रुकावट या मुश्किल नहीं। चार गली आगे ही जाना था और चल पड़ा। रास्ते में कुछ मनचले नीग्रो छोकरों की फब्तियां सुनी 'ओ मेन' और हा हा हा...... । चौराहे चौराहे पर ट्रैफिक की लाल, हरी, पीली रोशनियों और पैदल चलने के तौर तरीकों को समझता गया। कोई अड़चन या झिझक नहीं हुई। ठीक उनके मकान के सामने पहुंच गया। आस पास के मकानों के सामने सीढ़ियों पर काले गोरे छोकरे छोकरी व बूढ़े बूढ़ी टिके हुए सान्ध्य बेला का आवागमन देखने में व्यस्त थे और चुहलबाजी भी करते जाते थे। रास्ते चलते लोगों पर आवाजें कसना उनका अच्छा आमोद-प्रमोद है।

स्वागत कार्यालय से जानकारी करके मैं ऊपर चढ़ गया। संयोग की बात थी कि अपने कमरे के सामने की वीथि में खड़े हुए भवानी-मल जी टेलीफोन ही करते हुए नजर आ गये। सचमुच ही आश्चर्य की बात थी कि मुझे पहिचानने और मेरे आगमन पर विश्वास करने में उन्हें देर नहीं लगती, लेकिन ज्योंही उन्होंने मुझे सामने खड़ा देखा और पहिचान लिया तो न जाने फोन पर बात भी पूरी कर पाये या नहीं, एक दम लपक कर सामने बढ़े। एक हाथ से वे रिसीवर को रख रहे थे और दूसरा मेरी तरफ बढ़ाये जा रहे थे। फौरन ही

खींच कर कमरे में ले गये। एक ही सांस में न जाने कितनी बातें पूछ गये और पूछे ही जा रहे थे। अचानक अमरीका कैसे आना हुआ, जयपुर का क्या हाल है, दौसा और चौमू के उपचुनावों में क्या हुआ, राजी खुशी वगैरह वगैरह। उनके साथ मैसूर के एक अफसर भी बैठे थे। बहुत सी इधर उधर की बातें कर डालीं। वे खाना खा चुके थे। [अमरीका में शाम को जल्दी ही खा लेने का रिवाज है] फिर भी उनसे रहा नहीं गया। झटपट कपड़े बदल कर तैयार हो गये। चलो, जरा घूमेंगे, खायेंगे और बातें करेंगे। मेरी भी खुशी का ठिकाना नहीं था। दस हजार मील दूर बैठे दोनों ही संगत के भूखे। मिलने का यह संयोग भी दुर्लभ ही था। खाना भी मुझे खाना ही था और खाने की व्यवस्था को समझना भी था। हम एक बात भूल ही गये कि वाशिंगटन में हमारे सिवाय कोई और भी रहता है। करीब डेढ़ घण्टे या सवा दस बजे तक साथ रहे। एक केफीटेरिया में जाकर खाने बैठ गये।

मैंने पहला सबक सीखा, जिसकी दिन में तीन चार बार जरूरत पड़ती है। इस केफीटेरिया में मुझे एक दिलचस्प अनुभव भी हुआ, जिसका सम्बन्ध अमरीकी अंग्रेजी से हो सकता है। कई अमरीकी लोगों का अंग्रेजी उच्चारण बड़ा दुरूह होता है। केफीटेरिया में काम करने वाली नीग्रो लड़की को हमने सेंडविच और सेब के रस का आर्डर दिया और उसे कई बार दुहराया। मैंने तीन बार एपिल-ज्यूस बोला होगा, लेकिन वह तीन ही बार नारंगी का रस ले आई और सेंडविच तो लाई ही नहीं। यह ठीक है कि सेंडविचेज को सेंचेज और ओरेंज ज्यूस को ओं ज्यूस कहने से अमरीकी लोगों का काम चल जाता है, लेकिन एपिल ज्यूस को ओं ज्यूस किस तरह सुना जा सकता है, यह मेरी समझ में बिलकुल ही नहीं आया। आखिर में उस लड़की ने जब उकता कर पूछा कि और तो कुछ नहीं चाहिये या कोई सप्लाई तो गड़बड़ नहीं रह गई तो मैंने मन ही मन उस अन्नपूर्णा को नमस्कार कर लिया और 'बाइ बाइ' कह कर उठ खड़ा

हुआ ।

रात को होटल में पहुंच कर कुछ देर अखबार पढ़ा और करीब बारह बजे सो गया । सवेरे साढ़े नौ बजे परराष्ट्र विभाग में पहुंचना था । जल्दी ही उठ कर तैयारी में लगा । उठते ही चाय पीने की मेरी आदत है । होटल के किराये में चाय , नाश्ता, खाना वगैरह शामिल नहीं है । अमरीका में यही रिवाज है । आर्डर देने पर कमरे में चाय पहुंचाई जा सकती है , लेकिन अगर होटल से चाय मंगवाई जाय तो एक हिन्दुस्तानी प्रवासी को फिर अपनी हजामत बनाने की जरूरत महसूस नहीं होगी और गुंजाइश नहीं बचेगी । होटल का खान - पान अमरीका में असली नवाबी का उदाहरण है , इसलिए उठते ही कपड़े पहिन कर पास के केफीटेरिया में पहुंचा । चाय मांगी और काउण्टर पर एक स्टूल पर वैठ गया । यह केफीटेरिया रात भर खुला रहता है । नाम के लिए ड्रग स्टोर [दवा की दुकान] होता हैं , लेकिन दैनिक जरूरत की सब चीजें यहां मिलती हैं । काउण्टर पर एकाध मिनट बैठे रहने के बाद जवाब मिला कि मुझे दूसरे काउण्टर पर जाना चाहिये , क्योंकि वह काउण्टर बंद हो चुका है । सवेरे का काउण्टर खुल गया है । चाय आई । यह भी नया ही अनुभव था । एक कप में कागज की एक पुड़िया धागे में टंगी हुई, गर्म पानी में पड़ी हुई , जिसमें करीब एक चम्मच चाय का चूरा था । प्याले में चाय का रंग ऐसा था जैसे कि नीबू की एकाध बूंद पानी में घुल गई हो । कप में दूध और शक्कर मिलाकर पीने को पी गया लेकिन काम नहीं चला । कॉफी मांगी । कॉफी मेरी पसन्द की थी । चाय के पन्द्रह और काफी के सोलह सेण्ट चुका कर वापिस होटल पहुंचा । मैंने ऊपर लिखा है, डालर की कीमत यहां करीब एक रुपया हो जाती है । चाय - कॉफी की दर से इस वात का अन्दाज लगाया जा सकता है । मैंने और भी जानकारी की तो पता लगा कि नारंगी के रस का एक गिलास छत्तीस सेण्ट में , टमाटर का पच्चीस सेण्ट में मिलता था ।

नहा - धोकर परराष्ट्र विभाग में पहुंचा । मेरे पास पत्र था । स्वागत कार्यालय ने तुरन्त ही सम्बन्धित अधिकारी मर्था वर्न्स को खवर दी । वे नीचे आकर मुझे लिवा ले गईं । कुशल मंगल और औपचारिक वातचीत के वाद मुझे एक अन्य अधिकारी के साथ सरकारी मामलों के दूसरे दफ्तर में भेज दिया गया और मेरे कार्यक्रम के लिए जिम्मेदार एक युवक अधिकारी फर्दीनान्द थार के पास पहुंचा दिया गया । उन्होंने वड़ी मुस्तैदी के साथ मुस्करा कर हाथ बढ़ाते हुये वताया कि उनका नाम थार के रेगिस्तान के साथ जुड़ा हुआ है । इस तरह उन्होंने भिड़ते ही मेरे साथ वादरायण सम्वन्ध स्थापित कर लिया और यह भी वताया कि वे जयपुर जा चुके हैं तथा जयपुर उनको बहुत पसन्द है ।

अपने कार्यालय में एक मेज पर कोने में रखी हुई पीतल की वड़ी भारी नक्काशीदार एक ट्रे भी दिखलाई, जो वे जयपुर से लाये थे । यह भी वताया कि उनकी मां के पास गांव में इससे भी वड़ी ट्रे है । जयपुर के एक मित्र का हवाला भी वे देना चाहते थे, जो उन्हें जवानी याद नहीं आ रहा था । इस तरह वे अपने इस उद्देश्य में पूरी तरह सफल हो गये कि उन्हें जयपुर से अलग नहीं समझा जाय, वातचीत के दौरान वे कभी 'अच्छा' कभी 'धन्यवाद' का भी प्रयोग कर लेते थे और आखिर में नमस्ते करना भी नहीं भूले । थार के स्वभाव में मिलनसारी और मानव प्रकृति की पहिचान की मैंने अद्भुत क्षमता देखी और अच्छी तरह जान लिया कि विदेशी मेहमानों से व्यवहार करने का दायित्व उन्हें क्यों सौंपा गया है । वे विभिन्न देशों के कोई पांच सौ मेहमानों की हर साल देखभाल करते हैं। जर्मनी और स्विटजरलेण्ड के दो मेहमानों से मेरा परिचय भी उन्होंने कराया । हंसमुख, सुदर्शन एवं सुविज्ञ अधिकारी थार के साथ मैं अपनी पहली भेंट में कोई साढ़े चार घण्टे रहा । इस बीच उन्होंने सिर्फ मेरा ही काम निपटाया और वातचीत भी जारी रखी । काम काज की सूची में मेरे दैनिक खर्च का भुगतान, वीमे के कागज, वाशिंग-

टन शहर के बारे में साहित्य सामग्री देना, बैंक जाकर चेक को ट्रेवलर्स चेक्स में बदलवाना, भोजन की व्यवस्था करना और मुझे भारतीय दूतावास तक पहुंचा देना भी शामिल था।

घूमने के कार्यक्रम को फिलहाल खुला छोड़ दिया गया और मुझे बता दिया गया कि एकाध दिन सोच विचार कर अपने सुझाव दूं। अपनी ओर से उन्होंने कोई निर्देश नहीं दिया। इन चार घण्टों में उन्होंने मेरे दिमाग, स्वभाव और व्यवहार को अच्छी तरह समझने परखने की कोशिश की, यह छाप मुझ पर पड़े बिना नहीं रही। शाम को उन्होंने मुझे एक टिकिट भी दे दिया जो वाशिंगटन शहर के दर्शनीय स्थानों को जाने वाली बस का था। शनिवार रविवार को यहां सार्वजनिक छुट्टी रहती है। बस का टिकिट शनिवार का था और मैं निर्द्वन्द घूमने के लिए स्वतन्त्र था।

— १२ मई, १९६८
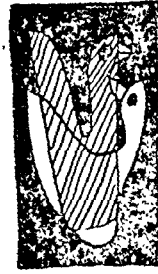
गोरों की राजधानी में कालों का बहुमत

शनिवार को वाशिंगटन शहर का ज्यादा अच्छी तरह दौरा किया। तीन डालर के टिकिट में एक बस माउण्ट वर्नन तक का दौरा करवाती है। मा. वर्नन, जो अमरीकी क्रान्ति के सूत्रधार व प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन का मूल निवास स्थान है, वर्जिनिया प्रदेश में स्थित है और वाशिंगटन से लगभग सत्तर मील दूर है। रास्ते में लिंकन मन्दिर और अर्लिंगटन की राष्ट्रीय समाधियां हैं, वाशिंगटन स्मारक है। बस वाशिंगटन अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र से रवाना हुई, जिसमें अलग-अलग देशों के प्रवासी बैठे हुए थे। एक अच्छा खासा संगम था। आसमान में सुबह से ही बादल छाये हुए थे और बूंदा-बांदी हो रही थी। बस के ड्राइवर ने यात्रा शुरू करते ही माइक्रोफोन हाथ में लिया और नगर भ्रमण के बारे में हिदायतें और जानकारी देना शुरू कर दिया। पूरे दौरे में ड्राइवर ने रनिंग कमेण्ट्री जारी रखी और रास्ते में पड़ने वाली करीब-

करीव हर खास-खास इमारत का ब्यौरा देता गया। नौं बजे से एक बजे तक वाशिंगटन को वस के जरिये एक नजर से देखा। लिंकन मन्दिर और अर्लिंगटन पर बस रुकी और उन स्थानों को घूम कर अच्छी तरह देखा। आखिर में मा वर्नन हम करीब एक घण्टे रहे। जॉर्ज वाशिंगटन के समसामयिक रहन-सहन को बारीकी से देखा। करीव पांच सौ एकड़ भूमि में इस स्मारक को सुरक्षित रखा गया है और इस बात की पूरी चेष्टा की गई है कि वाशिंगटन के समय का वातावरण ही बना रहे।

अमरीका का इतिहास कुल मिलाकर जयपुर[आमेर नहीं] से ज्यादा वड़ा नहीं है, इसलिए जो कुछ उसके पास बचा है, उसे जी जान से संजोकर रखा हुआ है और वाशिंगटन शहर इसका मुख्य संरक्षक है। शहर की आवादी भी ज्यादा नहीं है। करीव साढ़े आठ लाख है अर्थात जयपुर से कोई डेढ़ गुना। शहर में और चारों ओर सघन हरियाली है। सड़क - सड़क पर स्मारक वने हुए हैं और हर जगह तरह तरह के संग्रहालय हैं। मकान वहुत ऊंचे नहीं हैं। आमद-रफ्त नई दिल्ली से वहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन नियन्त्रित है। शोरगुल भी वहुत नहीं है। मुख्यतः सरकारी दफ्तरों और सरकारी नौकरशाही की आवादी है। नीग्रो नर-नारी भारी संख्या में हैं, और ज्यादातर मजदूर पेशा हैं। सड़कों पर जगह - जगह न्यूज स्टेण्ड और लेटर बॉक्स रखे हुए हैं। न्यूज स्टेण्ड पर अखबारों को बेचने के लिए कोई नहीं रहता। डिब्बे में सिक्के डालो और अखवार उठालो। इसी तरह ड्रग स्टोरों में अख़बार दरवाजे के पास रखे रहते हैं और लोग अपने आप खरीद कर ले जाते हैं। पुलिस के सिपाही वहुत कम नजर आते हैं। उनको आफिसर कह कर पुकारा जाता है। सड़कों पर, हालांकि कचरा नहीं होता, लेकिन सफाई का काम मुंह-अंधेरे ही हो जाता है। कचरे के नाम पर होटलों में सबसे ज्यादा भार अखवारों और किताबी कागजों का होता है। केफीटेरिया में सबसे ज्यादा रद्दी-कागज की गिलासों, थैलों व अखवारों आदि की होती है। अख-

वार आम तौर पर तीस से चालीस पृष्ठ के होते हैं, जिनको देखकर या पढ़कर फेंक देने के सिवाय कोई चारा नहीं, क्योंकि रखने को जगह नहीं और ढोने में भी बड़ी कठिनाई है। अक्सर यह भी देखने में आया कि लोग अखबार खरीदने के बाद उसके अनावश्यक पृष्ठों को फाड़कर फेंक देते हैं, जिनमें ज्यादातर विज्ञापन होते हैं। पढ़ने लायक पृष्ठों को दिन भर के लिए पास में रख लिया जाता है। फिर भी पूरा अखबार एक दिन के समय में पढ़ा नहीं जा सकता। अखबारों का ज्यादातर काम टेलीविजन पूरा कर देता है। अखबार की दैनिक कीमत आम तौर पर दस सेण्ट और रविवार को पच्चीस सेण्ट होती है। रविवार को एक अखबार में कई-कई संस्करण जुड़े होते हैं और उनकी पृष्ठ संख्या की भी अलग शृंखला होती है। अखबार और टेलीविजन कार्यक्रम विज्ञापनों से भरे पड़े रहते हैं।

राजनैतिक दृष्टि से वाशिंगटन का वातावरण आजकल बहुत अशान्त समझा जाता है। वियतनाम वार्ता का समय और स्थान तय हो जाने पर अब आगे की चिन्ता सता रही है। २५-२६ मई को गरीबों का कूच होने जा रहा है, जिसकी तैयारियों के लिए क्रिश्चियन् नेता यहां पड़ाव डाले हुए हैं। सरकार इस प्रस्तावित कूच से काफी चिन्तित है। तीन मई को प्रेसीडेन्ट जॉन्सन ने अपनी ३१ मार्च की घोषणा के बाद पहला प्रेस सम्मेलन बुलाया था, जिसमें उन्होंने गरीबों के कूच के प्रति चिन्ता प्रकट की थी। इधर काले-गोरे का सवाल पहिले ही उग्र हो रहा है। मार्टिन लूथर किंग की हत्या के बाद हुए दंगों की कटुता अभी पूरी तरह शान्त नहीं हुई है। शनिवार को ही मेरे होटल से थोड़ी दूर पन्द्रहवीं गली में एक स्टोर को फिर जला दिया गया है। मेरा होटल सत्रहवीं गली में है। शराब के दूकानदार अपेक्षाकृत ज्यादा चिन्तित हैं। उनको भय है कि उनको खास तौर पर निशाना बनाया जायेगा। उन्होंने सम्बन्धित अधिकारियों से प्रार्थना की है कि उनको थोक दूकानदारों के पास अपना माल वापस भेज देने की अनुमति प्रदान की जाय। इस तरह की

अनुमति देने पर विचार भी सहानुभूतिपूर्वक किया जा रहा है। अप्रेल के दंगों में करीब डेढ़ सौ शराब की दूकानें जला दी गई थीं या लूट ली गई थीं। शहर में कुल दूकानें साढ़े तीन सौ से भी ज्यादा हैं। करीब दर्जन भर दूकानें फिर से चलने लगी हैं। शेष दूकानदारों ने गोदाम किराये पर लेकर अपना माल वन्द कर दिया है। दूसरी प्रवृत्ति आज-कल बैंकों में लूटपाट की भी वढ़ी हुई है। हर रोज दो-तीन वारदातें बैंकों में लूटपाट की हो जाती हैं। नीग्रो बस्तियों में छुटपुट वारदातें ज्यादा बढ़ी हुई हैं। नीग्रो बस्तियों में शाम के वाद अकेले घूमते फिरना आजकल खतरे से खाली नहीं समझा जाता। आम तौर पर शाम को नीग्रो लोग शराब पीकर घूमते रहते हैं। या पार्कों में जमा रहते हैं। वे कव क्या कर बैठें, कहा नहीं जा सकता। इस तरह के इलाके प्राय: सातवीं गली से पूर्व की ओर केपीटल के आस-पास तक फैले हुए हैं। शनिवार और रविवार की इन छुट्टियों में नीग्रो बहुल इलाकों में काफी तनाव वना हुआ है।

इसके वावजूद शहर के शेष भाग में ऐसा लगता है जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं। छुट्टियों में वही चहल पहल, सैर सपाटे और रौनक है। सार्वजनिक स्थानों में इकट्ठे होने वाले लोगों में सामयिक विषयों की कोई चर्चा नहीं। शनिवार को स्मारकों को देखने गया तो क्या लिंकन मन्दिर और क्या अर्लिंगटन की समाधियों पर, वही भीड़। उससे भी ज्यादा भीड़ माउण्ट वर्नन के वाशिंगटन स्मारक पर। इन स्मारकों का वातावरण भी सचमुच कमाल का है, जो दर्शक को दूसरी ही दुनिया में ले जाता है। लिंकन मन्दिर में पहुंच कर दर्शक जैसे रोजमर्रा की दुनिया से वहुत ऊपर उठ जाता है। अर्लिंगटन की समाधियों में नितान्त शान्ति का वातावरण मिलेगा। प्रेसीडेण्ट केनेडी के समाधिस्थल पर शिलालेख खुदे हुए हैं, उनको पढ़कर जैसे दैन्य भाव विल्कुल समाप्त हो जाता है। हजारों की संख्या में लोग मनो-योग से इन वाणियों को पढ़ते हैं। विभिन्न युद्धों में मारे गये ज्ञात-अज्ञात सिपाहियों की याद में हजारों की तादाद में वड़े करीने के

साथ सफेद पत्थर गड़े हुए हैं। अज्ञात सिपाही की समाधि पर हर घण्टे गार्ड बदलती है, जिसे देखने के लिए उत्सुक भीड़ पहिले से जमा हो जाती है।

शहर में मुद्दत से काले-गोरों का उग्र विवाद छिड़ा हुआ है, लेकिन उनको साथ काम करते हुए या घूमते फिरते देखकर कोई नहीं कह सकता कि वे आपस में लड़ भी सकते हैं। केफीटेरिया आम तौर पर यहां दिन रात चलते हैं और उनमें ज्यादातर औरतें काम करती हैं। मैं कई केफीटेरियाओं में गया और देखा कि काली और गोरी लड़कियां बहुत घुलमिल कर काम कर रही हैं। आपस में खुलकर बातें करती रहती हैं, बराबर हंसी मसखरी चलती रहती है। नीग्रो पुरुषों के चेहरे पर आम तौर पर गम्भीरता देखने में आती है, लेकिन गोरे चेहरों पर भी कुछ कम मात्रा में वैसी ही गम्भीरता देखने में आती है। नीग्रो युवक बहुत खुले हुए हैं। छोटे छोकरे-छोकरी तो दिन भर हो-हल्ला ही करते रहते हैं और गोरों के साथ खेलकूद करते रहते हैं। इसके अलावा मैंने कई बार यह भी देखा है कि गोरी लड़की नीग्रो लड़के के साथ हाथ पकड़ कर घूम रही है। ऐसे दृश्य एकाध नहीं, कई देखने को मिल जाते हैं। रविवार को आज जब मैं नीग्रो इलाकों में घूमने निकला तो वापिस आते समय एक केफीटेरिया में यह भी देखा कि नीग्रो लड़की को देखकर एक गोरा लड़का अपनी जगह छोड़कर उसके पास जा बैठा और दोनों ने साथ साथ खाना खाया। यह अमरीका का रिवाज है कि खाने का बिल हरएक अपना अलग चुकाता है। यह तेरहवीं गली का उदाहरण है।

रविवार को मैंने यह तय किया कि नीग्रो बहुल इलाकों में घूमा जाय। सवेरे ही वाशिंगटन पोस्ट में पढ़ा था कि पन्द्रहवीं गली के एक स्टोर में आग लगा दी गई है। मुझे वैसे भी यह चेतावनी दी गई थी कि छुट्टी के दिन व शाम के समय नीग्रो वस्तियों में अकेले न घूमा जाय तो ठीक रहेगा, लेकिन न जाने क्यों मैं अपनी प्रेरणा दबा नहीं पाया। मुझे यह बताया गया था कि सातवीं गली में दर्जनों

जले हुए मकान अभी तक मलवे के रूप में पड़े हुए हैं। मैं उनको देखना ही चाहता था। करीव ग्यारह बजे होटल से निकल पड़ा। करीव दो मील की दूरी निकली। मैं पैदल ही था। सातवीं गली के जिस चौराहे पर मैं सबसे पहिले पहुंचा, पहिला ही मकान जला हुआ मिला।

ईंटों और मलवे के ढेर के सिवाय कुछ भी नहीं, जैसे वम गिराया गया हो। इस गली में मुड़कर मैं काफी देर तक घूमा और कई जले हुए मकानों को आंखों देखा। सचमुच इलाका वेढ़व था। एक भी गोरा चेहरा इतनी देर में सड़क पर नहीं आया। मोटरों में भले ही लोगों को आते जाते देखा। झुण्ड के झुण्ड नीग्रो स्त्री-पुरुष-वच्चे एक गली से दूसरी गली में चले जा रहे थे। आठवीं गली के चौराहे पर माउण्ट वर्नन प्लेस चर्च था। उसके आस पास तक गोरों को जरूर देखा। उसके पास ही सातवीं गली की तरफ एक पार्क में एक भी गोरा नहीं था। कुछ नीग्रो जहां तहां बैठे या घूम रहे थे। उनके आवाजें कसने के ढंग से लगता था कि काफी शराव पीये हुए थे। सातवीं गली में घूमते समय मुझे भी एक दीवाने नीग्रो का सामना करना पड़ा, जो कि मेरे लिए अप्रत्याशित नहीं था। वह अचानक मेरे सामने आकर खड़ा हुआ और मेरा हाथ खींच कर दवाने लगा। मैं उसका व्यवहार नहीं समझ सका, लेकिन बड़ी मुस्तैदी के साथ गुडमॉर्निंग करके मैं भी 'हो' 'हो' करके हंसने लगा। न जाने क्या समझ, वह मेरा हाथ छोड़कर आंखें फाड़ता हुआ आगे चला गया। मैंने भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इसी तरह का एक अनुभव मुझे शनिवार को एक गोरे के साथ हो चुका था। मैं लेटर वॉक्स में चिट्ठी छोड़ने की अपनी अन-भिज्ञता के कारण कुछ देर की परेशानी का शिकार हुआ। आम तौर पर चिट्ठियां लिखकर मैं होटल के दफ्तर में डाल देता था। उस दिन क्या हुआ कि मेरे पास टिकिट नहीं थे, अतः टिकिट लेने के लिए ड्रग स्टोर में जाना पड़ा। ड्रग स्टोर में आम तौर पर

मशीनें होती हैं, जो अलग अलग दर की टिकिट देती हैं। सिक्का डालो,बटन दबावो और टिकिट हाजिर। जिस स्टोर में गया था उसकी मशीन खराब थी। मैंने टिकिट लिये और लिफाफे पर लगा दिये। लेटर बॉक्स पर जाकर देखा तो मुझे उसका मुंह नजर नहीं आया। चारों तरफ हाथ लगाकर भी टटोला, लेकिन कहीं कोई परदा उठता गिरता भी नजर नहीं आया। अजीब दुविधा में पड़ गया। सोचा कि कोई चिट्ठी छोड़ने के लिए आए, तो उसी की देखा देखी अपनी चिट्ठी डाल दूं लेकिन तीन चार मिनट तक कोई नहीं आया। इतने ही में एक आदमी पर मेरी नजर पड़ी; जो पास ही एक आलीशान इमारत के दरवाजे पर खड़ा था। मैंने उससे मदद मांगी और उसने फोरन ही मेरी मदद भी कर दी। उसने लेटर बॉक्स के ढक्कन के नीचे लगे एक कुन्दे को एक हाथ से अपनी ओर खींचा और दूसरे हाथ से चिट्ठी अन्दर डाल दी। अभी टी. वी. पर लेटर बॉक्स का चित्र आया था। जिसके साथ बताया गया था कि अमरीका में एक ही काम है जो मशीन से नहीं हो सकता वह है, चिट्ठी डालना।

मेरे मुंह से 'थेंक्यू वैरी मच' निकलना था कि वह सीधा मेरे सामने आकर तन गया। हाथ पकड़कर जोर से दबाना शुरू किया। पहिले तो मैंने समझा कि वह बड़ा खुश है, लेकिन उसकी सांस में शराब की जो बदबू निकली, उससे मैं संभल गया। एक झपाटे में मैंने भी जोर से हाथ दबाया और पहिले से भी ज्यादा जोर से थेंक्यू कहकर आगे निकल गया। वह शायद कुछ पैसों के लिए इशारा कर रहा था। अब तक मैं रास्ते की भीड़ में मिल गया था। इन दो वारदातों के बाद मैं इसी नतीजे पर पहुंचा कि मेरी 'देशी' पोशाक ही इसका कारण थी। मैं बंद गले का कोट और जयपुरी जूती जैसे कि जयपुर में पहनता हूं, यहां भी पहने था। यह पोशाक यहां की पोशाक से मेल नहीं खाती और सहज ही यह भी जता देती है कि मैं हिन्दुस्तानी हूं, अजनबी हूं। पालम हवाई अड्डे पर जब मैं विमान के लिए जा रहा था, तब तक बूढ़े अमरीकी महानुभाव ने यह सवाल अचानक

ही पूछ लिया था कि मैं कोई हिन्दुस्तानी पादरी तो नहीं हूं।

इसी तरह लन्दन में जब एक रात को कुछ दोस्तों के साथ पिकेडिली सर्कस के पास एक पब में बैठा था तो अजनबी समझकर एक औरत भी हमारे बीच सिगरेट सुलगाने आ बैठी। सुलगाकर उसने सामयिक राजनीति का प्रसंग छेड़ दिया और बाद में बियर तक पहुंच गई। असली बात तब मालूम पड़ी जब कि वह बार-बार एक क्लब में चलने का आग्रह करने लगी। उसकी एक मात्र दलील यही थी कि उस क्लब में बहुत से भारतीय लोग आते हैं। आखिर में हमने पंचवटी के प्रसंग को दुहराया और छुट्टी पाई। मैंने दोस्तों के बहाने आनाकानी कर दी और दोस्तों ने मेरे बहाने और सीधे उठकर चल देने में ही अपनी खैरियत समझी। एक विदेशी शहर में यह नैतिक भीरुता बड़ी काम आई।

वाशिंगटन शहर में एक चहल पहल वाली जगह है — ड्यूपन सर्किल। जयपुर के स्टैच्यू सर्किल के आकार का है और माणक चौक चौपड़ की तरह व्यस्त इलाका है। इस सर्किल पर या तो दिन में लंच के वक्त लोग जमा होते हैं या शाम को हवा-खोरी के लिए आ बैठते हैं। आजकल शहर के हिप्पियों ने इसको अपना हैडक्वार्टर बना रखा है। दिन भर उनका जमाव बना रहता है, लेकिन गिनती में ५, २५ ५०, १०० तक घट बढ़ होती रहती है। पूछताछ करने पर पता चला कि शुरू शुरू में हिप्पियों को देखकर लोग बड़ा कौतुक करते थे, लेकिन अब एक आम बात हो गई है। आते जाते हुए लोग एक नजर उन पर डाल लेते हैं या बैंचों पर बैठे रहते हैं। हिप्पियों के लिए जैसे यह सर्किल ही पूरी सृष्टि है। उसी सर्किल में वे कभी फव्वारे पर, कभी बैंचों पर और कभी लॉन पर उठते बैठते अपनी दिनचर्या पूरी कर देते हैं। उनकी आगे पीछे की दिनचर्या क्या है, यह तो नहीं मालूम, लेकिन सर्किल पर उनके कार्य-कलाप को एक बार करीब आधे घण्टे तक मैंने देखा है।

मोटे तौर पर हिप्पियों के बारे में सारी दुनिया में चर्चा है।

जवान लड़के लड़की इस टोले में ज्यादा हैं। काले भी हैं और गोरे भी। सर्किल के लॉन पर दुपहर को एक टोले में आठ-दस लड़के लड़की गिटार पर झूम रहे थे। कोई कुर्सी पर तो कोई लॉन पर बैठा है। कोई खड़ा है। कोई गा रहा है, तो कोई बजा रहा है और बाकी झूम रहे हैं। पूरी शिवजी की बरात है, जिसमें नाना रूप-रंग और आकृतियां हैं। एक लड़की ने अपना पेंट और कमीज खोल कर कन्धे पर डाल लिया है और वह बनियान और अण्डर-वियर में इधर उधर मटक रही है। गाने बजाने वाले अचानक ही रुक जाते है और दो चार कदम इधर उधर होकर फिर जम जाते हैं। गाते गाते ही कोई बीच ही में बोल पड़ता है, तो दूसरा गाने लग जाता है। कार्य कलाप में कोई तारतम्य ही नहीं। उनके हाव-भाव से लगता है, सभी नशे में धुत्त हैं। क्या नशा करते हैं, इसका भी कोई ठिकाना नहीं, लेकिन उत्पात नहीं करते। अपने आप में ही खोये रहते हैं। कोई कोई बहुत ही शान्त हैं। एक जोड़ा लॉन पर एक ओर पड़ा है। दोनों की पलकें बेहद भारी हो रही हैं। बालों से यह पता नहीं चलता कि लड़की कौन है और लड़का कौन। लेकिन दाढ़ी मूंछ को लड़का छिपा नहीं पाता। वे एक दूसरे को कभी सहलाते हैं तो कभी बहुत ही होले से चूमते हैं। कभी लेट जाते हैं और फिर उठ बैठते हैं। कभी कभी एक दूसरे को इस तरह चाटने लगते हैं, जैसे कि गाय अपने नये नये बछड़े को चाटती है। एक मिनट भी एक स्थिति में नहीं रहते और अपने से बाहर वे कुछ देखना भी नहीं चाहते। दूसरे झुण्ड में अचानक ही हलचल पैदा होती है और कुछ लोग लॉन से उठकर फव्वारे पर जा बैठते हैं। फव्वारे से कुछ लोग उठकर बैंच पर जा बैठते हैं और कुछ-एक लान पर। उनके बाहरी आचरण को देख कर कहा जा सकता है कि वे मध्ययुग के अघोरियों से या कुंडापन्थियों से मिलते जुलते समुदाय के सदस्य हैं।

कहते हैं ज्यादातर हिप्पी धनवान परिवारों से निकले हुए हैं। सच है या झूठ, यह तो कौन जाने, पर फिर भी सवाल उठता है

कि अमरीका के समाज में बालिग लड़कों का दायित्व मां-बाप क्यों-कर उठाते हैं, जब कि ज्यादातर बालिग लड़के लड़की अलग रह कर अपना जीवन बिताते हैं। हिप्पियों को न तो यहां धिक्कार है, न उनका जय जय-कार है। बात चीत में यों ही उनकी चर्चा मात्र हो जाती है। हिप्पियों का अपना आन्दोलन यह है कि वे किसी तरह का सामाजिक नियन्त्रण या बन्धन नहीं चाहते। वे पूरे समाज को अपने जैसा ही देखना चाहते हैं अर्थात समाज समाज न रहे। कुछ भी हो हिप्पी अमरीका की विभिन्नताओं का एक नवीनतम संस्करण है। अमरीकी समाज के कर्णधार हिप्पियों के बारे में अपनी कोई राय नहीं रखते। वे उन्हें मान्यता पाने के योग्य वर्ग ही नहीं मानते।

— १४ मई, १९६८

१ मई को बी. बी. सी. ने मेरा एक इन्टरव्यू रेकॉर्ड किया था। इन्टरव्यू के लिए मैं निश्चित समय पर चला गया। बुश हाउस में भारतीय प्रसारण सम्बन्धी विभाग में पहुंचते ही मेरे जयपुर के मित्र रत्नाकर भारतीय मुझे स्टुडियो में ले गये। तुरन्त ही रेकार्डिंग हो गया। इन्टरव्यू के बाद मुझे वहीं पर एक लिफाफा दिया गया, जिसमें पांच पौण्ड और कुछ शिलिंग थे। इस कार्यक्रम के लिए आकाशवाणी की तरह मुझसे कोई कॉन्ट्रेक्ट फार्म नहीं भरवाया गया और रकम के लिए कोई रसीद नहीं ली गई। बी. बी. सी. आकाशवाणी की तरह पूर्णतः सरकारी तो नहीं है लेकिन अमरीकी प्रसारण कम्पनियों की तरह पूर्णतः गैरसरकारी भी नहीं है बल्कि यह एक निगम है जिसके काम काज के तरीके में लाल फीताशाही का या नौकर-शाही का नामोनिशान भी नहीं है। ०

एक घरेलू गोलमेज सभा

वाशिंगटन में सरकारी मामलात का एक अलग दफ्तर मेसाचुसेट्स एवेन्यू पर स्थित है। यही दफ्तर शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत अमरीका आने वाले विदेशियों की देखभाल करता है और विदेश विभाग के अन्तर्गत काम करता है। इस दफ्तर में वैठे वैठे यों ही चर्चा चल पड़ी, भारत की वर्तमान समस्याओं के वारे में। चर्चा ने थोड़ी देर में अच्छी खासी वहस का रूप ले लिया जो अन्ततः स्थगित करनी पड़ी, क्योंकि दफ्तर में और भी काम-काज होता है। तय हुआ कि एक अधिकारी महोदय के घर शाम को मिला जाय और विस्तार से वात-चीत की जाय। शाम को करीव साढ़े-पांच वजे स्थगित वहस फिर चली। एक जर्मन, एक स्विस और मेरे अलावा एक अमरीकी महिला व दो दम्पति थे, जिनमें हमारे मेज़वान भी शामिल थे। मैं पहुंचा, तव तक सब लोग कॉकटेल शुरू कर चुके थे। मैंने पहिले ही कह दिया था कि एक मित्र के यहां सन्देश देकर पहुंचूंगा, अतः कुछ देर हो सकती है। मित्र से मेरा

आशय भवानी मल जी से है, मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि साढ़े-पांच बजे कॉकटेल में शामिल होना मेरे वश की बात नहीं है, अतः मैं चाय पीऊंगा। मैं वैसे भी देर में शाम की चाय पीता हूं और अमरीका में वह कॉकटेल का समय हो जाता है और उसके बाद खाने पर जब पहुंचा, जर्मन महानुभाव अपनी अमरीका यात्रा की कुछ झलकियां सुना रहे थे और स्विस युवक उनके दुभाषिये का काम कर रहे थे। मैंने उनकी बातें सुनना शुरू किया। इसी बीच एक महानु-भाव ने मेरे साथ भारत के मामलों में बातचीत शुरू करदी और एक गोलमेज परिषद में दूसरा मोर्चा खुल गया।

मुझसे पूछा गया था कि भारत की मुख्य समस्याएं क्या हैं और सामान्यतः राजनैतिक स्थिति कैसी है? मैंने भारत की मुख्य समस्या को अर्थ-व्यवस्था पर केन्द्रित किया और अन्य सब समस्याओं को गौण माना। इस प्रसंग में जब जाति-प्रथा की बात आई तो मैंने उसका भी निदान गरीबी या आर्थिक गिरावट बताया। यहां आकर ज्यादा श्रोताओं की दिलचस्पी बढ़ गई और अन्य सज्जन भी हमारी ओर मुखातिब हुए, तभी मेरे सामने चाय आ गई। और फिर वही सफेद किस्म या दूधिया किस्म की चाय। मैंने बड़े ही आदर-भाव से उसे ग्रहण किया और मेज़बान से विनती की कि एक कप और बना दें लेकिन इसमें कुछ पत्ती ज्यादा डाल दें। बेचारी बहुत अस्त-व्यस्त सी लगीं, लेकिन मैंने यह कह कर सफाई दी कि मैं दो तरह के स्वाद लेना चाहता हूं, क्योंकि कॉकटेल में शामिल नहीं हूं। इसका अच्छा असर पड़ा और वह तनिक आश्वस्त हो गईं। चाय की तैयारी में जुट गईं। हमारी बात चीत में भी वह शामिल होना चाहती थीं। तुरन्त लौट आईं, गृहणी-धर्म पूरा करके। पति महोदय दूसरे मोर्चे को सम्भाले हुए थे कि रसद की कमी न रह जाय।

मैंने जाति-प्रथा की शुरुआत पर तनिक प्रकाश डाला और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जाति-प्रथा काम धन्धों पर आधा-रित थी, जो कालान्तर में रूढ़ि बन गई। मैंने शब्दानुवाद करके

अंग्रेजी में समझाया कि चमड़े का काम करने वाला चमार और लोहे का काम करने वाला लुहार ही कहलाता है, लेकिन रूढ़ि वन जाने के बाद चमड़े का काम या कारोबार किये बिना भी चमड़िया बन गये और लोहे का काम किये विना, लोहिया बन गये। मैंने डॉ. राम मनोहर लोहिया का नाम भी इस प्रसंग में लिया जो इस अवसर पर बहुत काम आया। मैंने बताया कि हमारे देश में जातियां ट्रेड या धन्धे के साथ जुड़ी हुई थीं जैसे कि आज कल डाक बांटने वाला डाकिया। मैंने एक उदाहरण यह भी दिया कि एक आदमी पटवारी के रूप में रिटायर हो गया तो उसका वंश ही आगे पटवारी के नाम से जाना जाने लगा। इसी तरह मोदी, कानूनगो, भण्डारी, कोठारी, चौधरी हुए। यह व्याख्या मेरे श्रोताओं को बहुत अच्छी लगी और एक ने तपाक से मेरा समर्थन करते हुए कहा कि अमरीका में स्मिथ इसी तरह का नाम है जो गोल्ड स्मिथ और ब्लेक स्मिथ की तरह ही काम धन्धे से जुड़ा हुआ है। एक अन्य सज्जन ने बताया कि वे जाति-प्रथा का सम्बन्ध धर्म से मानते थे। अब उन्हें कोई शक नहीं रहा कि जाति-प्रथा समाज व्यवस्था की देन है।

प्रश्न — अब यह बताइए कि जाति-प्रथा भारत की आर्थिक प्रगति में किस तरह बाधक है और अर्थ-व्यवस्था को सुधारने से किस तरह दूर हो सकती है ?

मैंने यहां विस्तार में जाना ठीक समझा और उन्हें समझाया कि जाति-प्रथा के कारण हमारे अवसर की समानता का सिद्धान्त व्यर्थ हो गया। जाति-प्रथा के कारण तरक्की करने का दायरा सीमित हो गया और ऐसे लोगों की संख्या भारत में ज्यादा है जो गरीब जातियों के हैं, अछूत हैं अथवा तिरस्कृत हैं। इतने बड़े देश में एक विशाल जन शक्ति कुण्ठित है, क्योंकि तरक्की के सभी अवसर ऊंची जाति के मुट्ठी भर लोगों के हाथ में हैं। राजनैतिक समर्थन के कारण आजादी के बाद हरिजन मन्त्री तो बन गये, लेकिन उनमें मिल मालिक एक भी नहीं है, कुलपति कोई नहीं है, धर्म गुरु होने

का तो सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि धार्मिक संस्थाएं सवर्णों की मुट्ठी में हैं ।

मैंने फिर कहा—अगर तेजी से औद्योगीकरण हो जाय तो जाति प्रथा का उन्मूलन हो सकता है। औद्योगीकरण के कारण लोगों के काम धन्धे बदल जायेंगे और नवीन समान हितों के आधार पर श्रम-संगठन खड़े हो जायेंगे । मैंने उदाहरण दिया कि बड़े बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूर खान-पान में जाति का कोई विचार नहीं रखते और उनमें नये तरीके के सम्बन्ध कायम होते जाते हैं । श्रम कानूनों के जरिये उन्हें कुछ किस्म के अधिकार भी मिल जाते हैं, जो घरेलू या परम्परागत या जातिगत काम करने वाले श्रमिकों को नहीं हैं। मेरे अमरीकी श्रोताओं को यह बात नयी-सी लगी, और युक्ति संगत भी, लेकिन वे विश्वास नहीं कर रहे थे कि इस तरह जाति प्रथा दूर हो सकती है।

मैंने भी यह मंजूर किया कि समाज के गठन में शूद्र वर्ग को निम्न माना गया था। किन्तु इसके निराकरण के लिए मैंने यह स्थिति रखी कि उद्योगों में सभी कौमों के मजदूरों को काम करते हुए प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। एक दलील मैंने यह भी दी कि मेडिकल कॉलेज में स्थान पाने के लिए एक सवर्ण छात्र हरिजन बनने में नहीं हिचकता, यदि पिछड़ेपन की सुविधाएं और रियायतें आर्थिक स्थिति के अनुसार दी जाएं तो भारी संख्या में लोग पिछड़े वर्ग में शामिल होना पसन्द करेंगे। यह दलील शत प्रतिशत समझ में आ गई और सभी मानने लगे कि आर्थिक स्थिति में सुधार होने पर जाति प्रथा दूर हो सकती है, लेकिन फिर समस्या ने एक नया मोड़ लिया।

मैंने कहा कि आर्थिक ढांचे को वहुत जल्दी सुधारने की जरूरत है, क्योंकि पिछड़े हुए लोग वर्तमान प्रगति से संतुष्ट नहीं हैं और वे वरसों तक इन्तजार भी नहीं करेंगे। अगर हालात जल्दी या तेजी से नहीं सुधरेंगे तो भारत पर कम्यूनिज्म का हावी हो जाना असम्भव नहीं है। मेरा इतना कहना था कि सभी अकचका गये । मैंने इसी

वात को पूरे जोर के साथ फिर दुहराया तो एक प्रश्न मेरे सामने रखा गया। क्या आप मंजूर करते हैं कि औद्योगिक विकास गैर-सरकारी क्षेत्र में होना चाहिये ? मैंने तपाक से जवाब दिया कि जरूर होना चाहिये और गैर-सरकारी क्षेत्र में ही होना चाहिये ; लेकिन मैं भी एक सवाल किये विना न रहा। मैंने उलट कर पूछा—अगर व्यापारी वर्ग ईमानदारी से पेश न आये तो परिणाम क्या होगा ? मेरे इस सवाल का जवाब आज तक नहीं मिला ; मुझ ही से जवावी सवाल पूछा गया कि ऐसी स्थिति में क्या होना चाहिये ? मैंने भी कोई जवाव नहीं दिया और सवाल को खुला ही रखा। मैंने कहा कि इस तरह के सवालों का कोई पेटेण्ट इलाज नहीं है वल्कि समय और स्थान के अनुसार जो उचित लगे किया जाना चाहिये। भारत ने मिश्रित अर्थ व्यवस्था का सहारा लिया है और वह आज भी दिशा खोज रहा है। देखें क्या होता है। उस दिन बातचीत का सिलसिला यहीं रुक गया और मैं घूमता फिरता अपने होटल पहुंच गया।

इससे पूर्व दुपहर को परराष्ट्र विभाग के एक कार्यालय में भी कुछ देर चर्चा हुई, जिसका विषय वियतनाम और फसल को वनाया गया। फसल के मामले में मुझसे वी. वी. सी. के संवाददाता ने भी सवाल किया था और अमरीका में भी कई लोगों ने पिछले चार-पांच दिनों में गहरी दिलचस्पी दिखलाई। विदेश विभाग के कार्यालय में भी इस तरह की उत्सुकता थी और कृषि के भविष्य के वारे में भारतीय प्रवासियों से पूरी जानकारी चाहते थे। वी. वी. सी. में भी और यहां भी मैंने कृषि उन्नति के प्रति आस्था प्रकट की। मैं वाशिंगटन के लिए उन्तीस अप्रेल को सुवह रवाना हुआ था और अट्ठाइस अप्रेल की दुपहर को पूसा इन्स्टीट्यूट देखकर आया था। मैंने अमरीकी भेंट-कर्ताओं को वताया कि पूसा ने पिछले कुछ समय से देश के किसान को आकर्षित करना शुरू किया है और ऐसी उपलब्धियां प्राप्त की हैं जिनसे किसान को प्रत्यक्ष लाभ होने लगा है और किसान उसकी तरफ आशा भरी नजर से देखने लगा है। मैंने वताया कि उत्तम वीज को

मात्रा सुरक्षित करवाने के लिए किसान ऊपरतली पड़े रहते हैं। रासायनिक खाद का उत्पादन और उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और फसल के वक्त मांग पूरी नहीं हो पाती। मैंने यह भी बताया कि इस रबी की फसल की बुवाई के समय गेहूं का बीज किसी भाव नहीं मिल रहा था और पंजाब में कहीं कहीं एक रुपये का एक दाना बिका है। मैं कहना चाहूंगा कि अमरीकी अफसर यह जानकर बहुत खुश हुए। वियतनाम के प्रसंग में मैंने ज्यादा चर्चा नहीं सुनी। मुझसे बहुत कम सवाल किये गये और मैंने भी समस्या को राजनैतिक आधार पर सुलझाने की बात कही जिस पर आजकल ज्यादा विवाद नहीं किया जाता।

लन्दन से वाशिंगटन तक के सप्ताह के समय में अब तक मैं करीब सौ व्यक्तियों से अच्छी तरह बात कर चुका हूं और वे सभी मध्यम वर्ग के थे लेकिन एक बात मैंने हमेशा महसूस की है कि भारत के बारे में इंगलेण्ड या अमरीकावासी बहुत ही कम जानकारी रखते हैं। इन देशों या अन्य देशों के बारे में जितनी जानकारी भारत के मध्यम-वर्गीय शिक्षित लोगों को है, उसकी तुलना में यहां के लोग हमारे बारे में कुछ नहीं जानते। इंगलेण्ड में मुझे यह कहा गया कि भारत का विदेशों में जन-सम्पर्क कार्य संतोष जनक नहीं है। बात ठीक ही होगी, क्योंकि तभी तो हमको लोग नहीं जानते, लेकिन मुझे कुछ और भी कहना है और वह यह कि कोई देश या समाज अपने अज्ञान के लिए भी दूसरे को दोष दे, यह क्या शोभा की बात है? मेरी राय में भारत के प्रति विदेशों में अनभिज्ञता का एक मात्र कारण यही नहीं है कि हम उनको जता नहीं पाये, बल्कि मुझे यह लगा कि जो लोग जनमत या जानकारी के माध्यमों का, शासन का संचालन करते हैं, वे लोग चाहते ही नहीं कि भारत का नाम फैले। जो चीज वे जानना चाहते हैं, उसकी तो बाल की खाल ही निकाल लेते हैं, लेकिन न जानना चाहें तो राई की ओट पहाड़ छिपा देते हैं।

मुझे लगता है कि लोकतन्त्रीय देश भारत को अपने सामने

एक चुनौती के रूप में देखते हैं। अमरीका का आम आदमी भारत के विभिन्न पहलुओं को जानना चाहता है। वह जानना चाहता है भारत का खान पान, वेश भूषा, कला कौशल, इतिहास, समाजतन्त्र और जीवन दर्शन और वताया जाता है अकाल, अभाव और अज्ञान। इस धरती पर भारत और अमरीका दोनों ही देशों की सरकारें समान हैं। भारत के दूतावास आम तौर पर सरकारी फाईलों के रूटीन तक सीमित रहते हैं। भारत क्या है, यह बताने का दृष्टिकोण उनके सामने नहीं रहता। भारत के सम्बन्ध में कुछ प्रवासियों ने दूतावास से एक फिल्म लेकर एक अमरीकी शिक्षण संस्था में दिखाई, जिसे देख कर स्वयं उन्हीं को शर्म आने लगी। एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के लिए दूतावास से राष्ट्रीय ध्वज मांगा गया था, जो अभी एक महीने तक जुटाया नहीं जा सका है। कई भारतीय प्रवासी दूतावास में समाचार पत्र [भारतीय] पढ़ने जाते हैं लेकिन वे यह जानकर निराश होते हैं कि समाचार पत्र आते ही पहिले दूतावास के अधिकारियों के घर पहुंच जाते हैं। मैं वाशिंगटन में पहुंचते ही जब दूतावास के सांस्कृतिक मामलों के प्रथम सचिव से मिलने गया तो भिड़ते ही उन्होंने जो रूटीन डिस्पोजल किया, वह था कि मुझे सूचना-अधिकारियों के पास जाना चाहिए, जो अन्य किसी इलाके में अपने कार्यालय में बैठते हैं। मैंने जब बताया कि मुझे कोई मदद या जानकारी नहीं चाहिए, बल्कि शिष्टाचार-वश आया हूं और व्यक्तिशः कोई मार्ग दर्शन करें तो आभारी हूंगा, तो तनिक आश्वस्त हुए। शायद इसीलिए कि मैं कोई मदद मांगने नहीं आया था।

अपने वाशिंगटन दौरे के पहले सप्ताह में घूम फिर कर और लोगों से मिलजुल कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अमरीकी जनता भारत के बारे में बहुत कुछ जानना चाहती है और उसके निकट सम्पर्क में आना चाहती है। अमरीकी लोगों में प्राच्य सभ्यता और इतिहास के प्रति गहन रुचि है, जिसे केवल भारत ही संतुष्ट कर सकता है। प्राच्य देशों में भारत का एक मात्र प्रतिद्वन्दी चीन है,

जिसका अभी अमरीका से विशेष वास्ता नहीं है। मध्य-पूर्व में मिश्र देश है, जो भी अमरीका के निकट नहीं है। भारत के सामने यह अपूर्व अवसर है, जिसका वह बेहद लाभ उठा सकता है। अमरीका साधन-सम्पन्न है, परन्तु सभ्यता एवं इतिहास के मामले में भारत उससे ज्यादा धनी है और अमरीका की आत्मिक क्षुधा इससे मिट सकती है। यह काम बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्वामी विवेकानन्द ने किया था। उनके बाद किसी एक महापुरुष का प्रभाव अमरीकी मानस पर नहीं है। यह काम केवल सरकार या नौकरशाही पर नहीं छोड़ा जा सकता। कुछ समाज-सेवी संस्थाओं को आगे आना होगा। एक बार अमरीकी जनता के सामने भारत का ठीक ठीक चित्र प्रस्तुत कर देने के बाद वह भारत के लिए कई क्षेत्रों में सहायक हो सकता है और उन व्यवधानों को तोड़ भी सकता है जो मौजूद हैं। मेरी राय में व्यवधान राजनीतिक हैं, जो भारत की गुरुता को दबे ही रहने देना चाहते हैं। अमरीका और ब्रिटेन की कश्मीर नीति शायद इसी राज-नीति का एक अंग है। मैंने कश्मीर के मामले में ऐसी कोई चर्चा नहीं की। इस मामले में अमरीकी सरकार व समाचार पत्रों की एक निश्चित राय है, जिसे हम लोग अच्छी तरह जानते हैं। इस राय को तभी बदला जा सकता है, जब कि सतत व्यक्तिगत उद्यम एवं अध्यवसाय द्वारा बड़े पैमाने पर अमरीकी जनता के मानस को जीता जाय और उसे भारत की सभ्यता के आधारभूत मूल्यों से अव-गत कराया जाय, वरना यह राय नहीं बदलेगी, नहीं बदलेगी।

— १६ मई, १९६८

विलियम्सबर्ग : अतीत से सबक

भविष्य भूतकाल से सवक ले सकता है, यह अमरीका की ऐतिहासिक वस्ती विलियम्सवर्ग का सन्देश है; लेकिन यहां मुझे यह कहना पड़ता है कि भविष्य तभी सवक ले सकता है जव कि वह भूतकाल की रक्षा कर सके या उसे जीवित रख सके। सचमुच विलियम्सवर्ग अमरीका का जीवित अतीत है। अगर अठारहवीं सदी के विलियम्सवर्ग के अंग्रेज शासक और स्वाधीनता संग्राम के शूरवीर आज जीवित होकर देखें तो दोनों ही वेहद खुश होंगे या अगर परलोक जैसी कोई चीज है तो वे वहां वैठे हुए भी विलियम्सवर्ग की ओर खुशी से देख रहे होंगे। कुछ भी तो नहीं, हमारे आमेर के वरावर की आवादी का एक कस्वा है लेकिन अठारहवीं सदी में रहते हुए भी वीसवीं सदी की समस्त सुविधाओं से सम्पन्न एवं समृद्ध है। पर्यटन ही एकमात्र उद्योग है और वह भी मुनाफाखोरी का साधन नहीं है, वल्कि उसकी आय विलियम्सवर्ग की सार्वजनिक सेवाओं एवं सुविधाओं पर खर्च की जाती है।

वि. बर्ग अमरीका के औपनिवेशिक काल का एक महत्वपूर्ण कस्बा है जो अंग्रेजी काल में वर्जिनिया प्रदेश की राजधानी था। यहीं जार्ज वाशिंगटन, टॉमस जेफर्सन, पेट्रिक हेनरी आदि ने अपनी मन्त्रणाएं कीं और ब्रिटेन के चर्च से स्वाधीनता की घोषणा की, जैसे कि हमने २६ जनवरी, १९३० को लाहौर के रावी तट पर की थी। १९२६ की बात है कि एक धनवान नागरिक जॉन डी. राकीफेलर ने इच्छा प्रकट की थी कि विलियम्सबर्ग का पुनः उद्धार किया जाय और उसे अठारहवीं सदी के औपनिवेशिक काल का प्रतीक बनाया जाय। काम शुरू हो गया और १९६० में राकीफेलर के निधन तक इस काम पर उस परिवार का सैंतालीस लाख डालर धन खर्च हो गया था। उसकी कल्पना के अनुसार कस्बे को बनाने पर अब तक कुल साढ़े सात करोड़ से भी ज्यादा डालर खर्च हो चुके हैं। इस संदर्भ में यदि हम अपनी बात सोचें तो रोना आयेगा। यहां के सबसे बड़े धनी परिवार बिड़ला बन्धुओं ने महात्मा गांधी के मृत्यु-स्थल को भी इसलिए राष्ट्रीय स्मारक नहीं बनने दिया कि उसके साथ उनके परिवार की स्मृतियां जुड़ी हुई हैं ! सरकार ने भी ऐसा कोई कदम नहीं उठाया।

पाठक यह जानकर चकित होंगे कि विलियम्सबर्ग आज भी अठारहवीं सदी में रह रहा है। एक मील लम्बा क्षेत्र जिसके सभी पुराने मकानों को अवाप्त कर लिया गया है और टीपटाप करके स्मारक बना दिया गया है। दस्तावेजों और पुरानी तस्वीरों के सहारे उसकी ऐतिहासिक प्रकृति को पूर्णतः सुरक्षित रखा गया है और उसे सजीव कर दिया गया है। इन सब मकानों में काम करने वाले गाइड, कोचवान, पहरेदार आदि सभी अठारहवीं सदी की वेशभूषा में सज-धजकर रहते हैं। सड़कों पर उसी सदी की घोड़ा गाड़ियां चलती हैं।

पुराना ही फर्नीचर, मकानों में वही चिमनियां, झाड़ फानूस, गलीचे और बर्तन, बगीचे और फूलपत्तियां ! होटलों के बेरे और वहां की भोजन सूची [मीनू भी] अठारहवीं सदी की अंग्रेजी में छपे हुए

मिलेंगे। होटलों में कॉलिज के लड़के उसी सदी की ही पोशाक में काम करते हुए मिलेंगे। खान-पान का वही तरीका होगा। एक मील लम्बा यह एक सुरक्षित क्षेत्र है, जहां पर्यटकों को ले जाने वाली बस के सिवाय कोई दूसरी सवारी नहीं जा सकती, केवल घोड़े गाड़ियां ही अपनी पुरानी सजधज के साथ चलती फिरती नजर आती हैं। पुराने तरीके के काम करने वाले खाती, मोची, लुहार और उनके पुराने ही औजार नजर आयेंगे और वे पुराने ही तरीके की दस्तकारी की चीजें बनाते मिलेंगे। इस बस्ती के आसपास सघन हरियाली है। मकानों के बराबर की ऊंचाई के सघन वृक्षों की सघन हरियाली से विलयम्सबर्ग घिरा हुआ हैं। ऐतिहासिक बस्ती के चारों ओर यहां के नागरिक रहते हैं, लेकिन उन्होंने भी अपने छोटे-छोटे मकान पुराने ही ढर्रे के बना रखे हैं। बेशक वे भी आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न हैं और समृद्ध हैं। हरियाली बनाये रखने के लिए नगर निगम ने हरएक मकान के लिए आधा एकड़ जमीन दी है, जिस पर दूब और फुलवाड़ियां लगी हुई मिलेंगी। पर्यटकों को इस ऐतिहासिक बस्ती की पृष्ठभूमि समझाने के लिए सूचना केन्द्र की ओर से मुफ्त में रंगीन फिल्म दिखलाई जाती है, जिसके लिए खास तौर पर एक शानदार सिनेमाघर बना हुआ है। फिल्म भी कमाल की बनी हुई, जिसे देखते ही बनता है। फिल्म दिन भर चलती रहती है और उसे हजारों लोग देखते हैं, ऐतिहासिक बस्ती में घूमने के लिए मुफ्त में वातानुकूलित बसें चलती हैं, जिनमें आप दिन भर घूमते रहें तो कोई एतराज नहीं करेगा। तत्कालीन गवर्नर के महल और उसके आस-पास के मकानों को शाही तरीके से सजाकर रखा गया है।

कला और स्थापत्य की दृष्टि से विलियम्सबर्ग ऐसा कोई चमत्कारी नगर नहीं है, लेकिन उसकी ऐतिहासिकता को बनाये रखने में इतना श्रम किया गया है कि अठारहवीं सदी का एक फानूस चीन से आयात किया गया है। इस संदर्भ में अगर हम अजन्ता व एलोरा को रख कर देखें और यह सोचें कि वे कहीं अमरीका में

होते तो ! कल्पना नहीं की जा सकती कि उनका कायाकल्प करने में यह देश क्या कर डालता । विलियम्सवर्ग का पुनः उद्धार करने का यह उद्देश्य रखा गया था कि 'भविष्य भूतकाल से सबक ले सके' लेकिन यह बात यहां आकर ही समझ में आ सकती है कि अतीत को भी जीवित रखना पड़ता है अगर उससे सबक सीखना हो । हमको अजन्ता के गुफा मन्दिरों का पता भी १८५७ में लगा जब कि कुछ गडरिये उनमें रहते पाये गये । उनके चूल्हों से मन्दिर और चित्र काले पड़े हुए मिले । राजस्थान का भी इतिहास लिख कर कर्नल टॉड ने दुनिया के सामने पेश किया है, जिसने मेवाड़ के चप्पे चप्पे को थर्मापोली बना दिया ।

विलियम्सबर्ग को देखने के वाद जयपुर शहर की दुर्दशा हजारों गुनी होकर खलती है । इस शहर को नगर-रचना के एक उत्कृष्ट प्राचीन प्रतीक की तरह वनाये रखने की कितनी जरूरत है, यह समझने की वात है । शहर अपने सम्पूर्ण क्रिया-कलापों को यथावत चलाये रख कर भी दुनिया के लाखों लोगों को आकर्षित करने में समर्थ है, यह बात जयपुर में रहते हुए उतनी साफ समझ में नहीं आती थी, जितनी की अब महसूस हो रही है । जयपुर के महाराजा और महारानी भी वहुत वार जयपुर की दुर्दशा की बात करते हैं, लेकिन राकीफेलर की तरह वे स्वयं ही कुछ करने को आगे वढ़ें तो शहर की कायापलट होने में देर नहीं लगेगी । विलियम्सवर्ग में तो जमीन जायदाद भारी तादाद में अवाप्त की गई थी लेकिन जयपुर में तो वह भी नहीं करना पड़ेगा । मुख्य काम नगर की सफाई का है और यदि गटर लाइनें डालने का कार्य हाथ में ले लिया जाय तो शहर वहुत कुछ सुधर सकता है । अन्य कामों पर उतना खर्च नहीं होगा और जो होगा वह वापिस भी मिल सकता है । सवाल है कर गुजरने का । कुछ समर्थ लोगों के आगे आये विना यह काम नहीं हो सकता । सरकार से फिलहाल कोई उम्मीद नहीं की जा सकती । वह अपने अस्तित्व और मान-सम्मान के फेर में पड़ी रहती है, वरना सरकार

भी जयपुर को जीवित करके लाभान्वित हो सकती है।

यहां इतने लोग वाहर से आते हैं कि उनसे सारे होटल-रेस्तरां खचाखच भरे रहते है। आने वालों को अठारहवीं सदी का वातावरण देख कर ही अचम्भा सा लगता है और वे ऐसा महसूस करते हैं मानो उन्हें किसी ताजा हवा का झोंका लगा हो। पर्यटकों की भीड़-भाड़ के कारण यह छोटी सी आबादी भी वड़े शहर की तरह मालूम पड़ती है। एकदम शांत शहर है। कल-कारखानों को यहां कायम नहीं होने दिया गया है। मोटरकारों को विलियम्सवर्ग से बाहर ही रखा गया है। केवल उन्हीं की वसें चलती हैं। खाने पीने और घूमने की सम्पूर्ण व्यवस्था सूचना-केन्द्र से की जा सकती है। केन्द्र के कर्मचारी आपको महमान से भी ज्यादा सिर आंखों पर उठाये रहेंगे। विदेशीपन यहां बिल्कुल महसूस नहीं होगा। किसी भी तरह की मदद मांगिये, आपको मिलेगी। राज्य सेवकों में यहां और सारे ही अमरीका में सुस्ती, झुंझलाहट, चिड़चिड़ाहट, कामचोरी जैसी बुराइयां बिल्कुल ही नजर नहीं आयेंगी। यह बात लन्दन में भी मैंने देखी और यहां भी देख रहा हूं। विनम्रता एवं शिष्टता यहां के नागरिकों के चरित्र के अनिवार्य अंग बन गये हैं। सब अपने काम से काम रखते हैं, जिनमें लापरवाही या गैर-जिम्मेदारी नहीं हो सकती। भूल होने पर पश्चाताप या स्पष्टीकरण का भी कोई अन्त नहीं है।

अपने अमरीका के दौरे की शुरुआत मैंने खास तौर से विलियम्सवर्ग से की है और होनोलूलू में उसकी समाप्ति करूंगा। वाशिंगटन का अपना एक अलग प्रयोजन था, जिसके साथ कुछ घूमना फिरना और देखना भी हो गया। यही मेरा विस्तृत कार्यक्रम बना है। विलियम्सवर्ग की अठारहवी सदी से निकलकर एकदम इक्कीसवीं सदी के न्यूयार्क में पहुंचना है। इस जगह यह उल्लेख करना मैं नहीं भूलूंगा कि विलियम्सवर्ग का उद्धार मेरे जन्म के साथ ही मार्च १९२६ में हुआ था। यह एक सुखद व्यक्तिगत संयोग है।

——१९ मई, १९६८
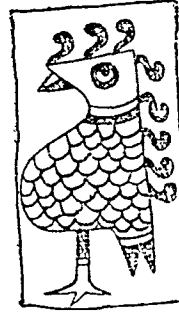
प्रेसीडेण्ट्स प्राइमरी : उम्मीदवार का चुनाव

सात मई मंगलवार को वाशिंगटन डी. सी. में प्रेसीडेन्ट के चुनाव के सिलसिले में प्राइमरी चुनाव हुए। आप लोगों ने अखबारों में चुनाव परिणाम देख लिए होंगे। वोटों की गिनती या चुनाव परिणाम मेरा विषय नहीं है। मैं इन चुनावों के दूसरे पहलुओं पर चर्चा करना चाहूंगा। अमरीका में प्राइमरी चुनावों का बड़ा महत्व और उपयोग है। इन चुनावों की तुलना हम प्रदेश कांग्रेस कमेटियों और स्थानीय चुनावों से कर सकते हैं। अमरीका में इन चुनावों में विभिन्न स्तर की प्रतिनिधि संस्थाओं के लिए सदस्य चुने जाते हैं और राजनीतिक दलों की तुलनात्मक क्षमता का इससे पता लगता है। भारत की तरह ही चुनावों के पहिले मतदान सूचियां तैयार की जाती हैं। यह कार्य राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में है और केन्द्र का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। प्राइमरी चुनावों का खर्च भी सरकार उठाती है जब कि चुनाव राजनीतिक दलों के

लिए होते हैं । केवल दो मुख्य राजनीतिक दलों के लिए मत-पत्र जारी किये जाते हैं । जो मतदाता मत नहीं देना चाहते हैं वे निर्दलीय रह सकते हैं । चुनाव प्रक्रिया वहुत पेचीदा है और मत-पत्र अपने आप में एक पेचीदा दस्तावेज है जिसका उपयोग समझाने के लिए दल के सदस्य काफी प्रचार करते हैं ।

वाशिंगटन दिल्ली की तरह एक केन्द्र-शासित प्रदेश है और राष्ट्रीय सभा में इसके तीन प्रतिनिधि जाते हैं । मैंने वाशिंगटन में प्राइमरी चुनावों का मोटे तौर पर निरीक्षण [अध्ययन नहीं] किया । सात मार्च को मतदान था और उसके पहिले प्रत्येक उम्मीदवार के लिए उसके समर्थकों ने चुनाव कार्यालय खोल लिए थे । सीनेटर केनेडी का कार्यालय अठारहवीं और सीनेटर हम्फ्री का सतरहवीं गली [स्ट्रीट] में था । हर एक उम्मीदवार ने शहर का दौरा किया, आम सभाएं कीं, पोस्टर और छोटे छोटे इश्तिहार चिपकाये । इन चुनावों में एक बात खास तौर पर सामने आई कि अमरीका के राजनैतिक नेता खर्च की वहुलता और अनिवार्यता को ज्यादा से ज्यादा मानने लगे हैं । हम्फ्री के प्रचारकों का मनोवल खासतौर पर इसलिए ऊंचा था कि सीनेटर केनेडी की तरह वे भी एक हवाई जहाज चार्टर करके एक जगह से दूसरी जगह घूम रहे हैं । वृहस्पतिवार को नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी के टेलीविजन पर अमरीका के एक भू. पू. पोस्ट मास्टर जनरल ने अपनी विशेष भेंट-वार्ता में यह स्वीकार किया कि आज के चुनाव पिछले सभी चुनावों के मुकावले ज्यादा खर्चीले हो गये हैं और उनका खर्च उठाना साधारण राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के बूते की बात नहीं रह गई है, अतः सेठ लोगों के सहयोग की जरूरत होती है या वे स्वयं मदद पर आ जाते हैं । अमरीकी चुनावों पर इस धन का प्रभाव अनिवार्य वन गया है । ये पोस्ट मास्टर जनरल १६६० में प्रेसीडेण्ट केनेडी के मुख्य प्रचारक और समर्थक थे । धन की अनिवार्यता व उपयोगिता खास तौर पर इसलिए वढ़ गई है कि प्रचार, प्रसार, संचार और परिवहन के साधन वहुत वढ़ गये हैं । अगर एक उम्मीदवार

इन साधनों का उपयोग करता है तो दूसरे के लिए भी वही मार्ग अपनाना लाजिमी हो जाता है, वरना वह दौड़ में पिछड़ जायेगा।

केवल मात्र व्यक्तिगत गुणों या व्यक्तित्व के कारण कोई उम्मीदवार सफल नहीं हो सकता। इस तरह के उदाहरण हमारे देश में ही देखे जा सकते हैं या हमारी ही जैसी प्रारम्भिक अवस्था में अमरीका में भी देखे जा सकते थे, लेकिन आजकल नहीं। वैसे यहां भी चुनावों में नैतिक मूल्यों पर काफी जोर दिया जाता है और वे भी अपना महत्व रखते हैं। १९६४ के चुनावों में न्यूयार्क के गवर्नर रॉकीफेलर को इसलिए मतदाताओं का विरोध झेलना पड़ा था कि वे तलाक देकर दूसरी शादी करना चाहते थे। इन चुनावों में शायद यह बात पुरानी पड़ गई है या लोगों की याददाश्त से निकल चुकी है। इस बार चुनावों में सीनेटर केनेडी के प्रचार सम्बन्धी इश्तिहारों में भी यह उल्लेख किया गया है कि उनकी ईमानदारी या सच्चाई सन्देह से परे है और उनका परिवार अमरीका का एक आदर्श परिवार है।

वाशिंगटन के प्राइमरी चुनावों में कुछ मतदान केन्द्रों पर गया। इस कार्य में सरकारी अफसरों ने मेरी मदद की। मतदान केन्द्र पर हालांकि भीड़भाड़ नहीं होती थी, लेकिन मुझे हर जगह राजनैतिक दलों के प्रचारकों का सामना करना पड़ा। वे पहुंचते ही पूछने को दौड़ते थे—क्या मतदान करना चाहते हो? और तुरन्त ही कुछ कागज आगे बढ़ा देते थे। मतदान केन्द्रों के भीतर मैं काफी देर तक रहा और देखा कि नीग्रो मतदाता ज्यादा तादाद में और ज्यादा दिलचस्पी से मतदान करने आ रहे थे। नीग्रो मतदाता अधिकांशत: डेमोक्रेटिक पार्टी के समर्थक निकले और खास तौर पर सीनेटर केनेडी के। मतदान केन्द्र पर पूछने से एक अधिकारी ने बताया कि मतदाताओं को मोटर में बिठाकर लाया जा सकता है। मैंने उन्हें बताया कि भारतीय चुनाव कानून में यह वर्जित है।

प्राइमरी के चुनाव अभियान में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों के अलावा यहां स्थानीय मुद्दे भी उठाये जा रहे हैं जैसे कि वाशिंगटन डी. सी.

को एक सम्पूर्ण राज्य वनाया जाय और संविधान में तदनुसार संशोधन किया जाय । इस तरह की मांग राजस्थान में धौलपुर को अलग जिला वनाने के लिए की जा रही है। चुनाव अभियान में वियतनाम शान्ति वार्ता के अलावा दूसरा राष्ट्रीय मुद्दा गरीबों का जोर के साथ उठाया जा रहा है, जिससे नीग्रो लोगों की समस्या भी जुड़ी हुई है [इस सम्वन्ध में विस्तार से अलग चर्चा करना ठीक होगा] कुछ राजनैतिक या नैतिक मुद्दे भी चल रहे हैं जैसे कि प्रेसीडेण्ट जॉन्सन ने अपने मन्त्रीमण्डलीय साथियों को यह सलाह दी है कि वे यदि दलगत चुनाव प्रचार में सक्रिय रूप से भाग लें तो अपना इस्तीफा सौंप दें। यह भी चर्चा का विषय वना हुआ है कि वड़े पैमाने पर सरकारी नियुक्तियां राजनैतिक आधार पर न की जांय ।

अमरीका में प्रेसीडेण्ट का यह चुनाव पिछले अनेक चुनावों से ज्यादा दिलचस्प और महत्वपूर्ण समझा जा रहा है । प्रेसीडेण्ट जॉन्सन के मैदान से हट जाने के कारण वातावरण में असमंजस भी पैदा हो गया है। दोनों दलों के दो उम्मीदवार गवर्नर रॉकीफेलर और उपराष्ट्रपति हम्फ्री के देर से मैदान में आने के कारण चुनाव परिणाम के अनुमानों में भारी हेर फेर हो गया है।एक दिलचस्प बात यह है कि सभी उम्मीदवार, डेमोक्रेट और रिपब्लिकन, युद्ध के वजाय शान्ति पर जोर दे रहे हैं। शान्ति-कालीन उद्योगों की योजना तैयार करने के लिए गर्वनर रॉकीफेलर ने तो न्यूयार्क में एक पच्चीस सदस्यों की समिति भी नियुक्त करदी है। सीनेटर केनेडी कह रहे हैं कि अमरीका को दुनिया भर की चौकीदारी नहीं करनी है। इसी तरह गवर्नर रॉकीफेलर ने कन्सास विश्वविद्यालय के करीव सत्रह हजार छात्रों के सामने कहा है कि अपनी मर्जी से अगर दक्षिणी वियतनाम के लोग कम्यूनिस्ट राज भी कायम करना चाहें तो करलें। उनकी स्वतन्त्रता का यही मतलव होना चाहिए। रिपब्लिकन पार्टी के गवर्नर और उम्मीदवार के रवैये में यह नया ही परिवर्तन माना जा रहा है।

मंगलवार को मैंने सारा दिन प्राइमरी चुनावों में व्यतीत किया

और बुधवार आठ मई को व्हाइट हाउस और केपीटल [अमरीकी-संसद] में गया। मेरे दौरे के लिए पहिले से ही व्यवस्था कर दी गई थी। व्हाइट हाउस की, स्थापत्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्ता नहीं है बल्कि उसका संस्थागत महत्व ही अधिक है और इसे संस्था की तरह ही रखा जा रहा है। भारत का राष्ट्रपति भवन भी एक संस्था है, लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि उसे मुगल बादशाहों के किले की तरह रखा जा रहा है। भारत के आम नागरिकों को यह बताया ही नहीं जाता कि राष्ट्रपति भवन में क्या है, क्योंकि बताने के लिए उसमें स्थापत्य के सिवाय कुछ रखा ही नहीं गया है। व्हाइट हाउस में अमरीका का सारा इतिहास प्रति-चित्रित है और प्रेसीडेण्ट के शयनागार के अलावा सब कुछ जन-साधारण के लिए सदा खुला रहता है। लगभग बीस पच्चीस हजार लोग रोजाना व्हाइट हाउस देखने जाते हैं और उन्हें दलों में बांट कर बारी बारी से घुमाया जाता है। एक अधिकारी उनके आगे रहता है जो प्रत्येक कमरे और वस्तु का विशद विवरण देता है। लौटते समय द्वार पर व्हाइट हाउस व अम-रीका के राष्ट्रपतियों के संबंध में प्रकाशित साहित्य बिक्री के लिए मिल जाता है। अमरीकी नागरिक यह देख कर खुश होते हैं कि उनका राष्ट्रपति किस तरह रहता है। कहां महमानों की आवभगत करता है, कहां चाय पीता है, नाश्ता करता है और खाना खाता है या कहां प्रेस सम्मेलन बुलवाता है। यही बात केपीटल के सम्बन्ध में कही जा सकती है। केपीटल की विशेषता यह है कि वह स्थापत्य कला का भी विश्व में एक उत्कृष्ट नमूना है। उसकी सानी के भवन अमरीका में तो नहीं लेकिन यूरोप में अवश्य मिल सकेंगे, केपीटल के दोनों सदन दर्शकों के लिए खुले रहते हैं और उसी तरह उनको दिखाये जाते हैं, जिस तरह व्हाइट हाउस और अन्य भवन। स्मरण रहे कि हाउस ऑफ रिप्रजन्टेटिव में पहिले फोटो तक लेना वर्जित था लेकिन आजकल टेलीविजन केमरे लगे हुए हैं, जिनके जरिये उसकी कार्यवाही का प्रसारण किया जाता है। प्रवेश-पत्र साल भर के लिए

एक साथ वन जाता है। गर्मी की छुट्टियों में स्कूलों के वच्चे ढेर के ढेर इन स्थानों को देखने के लिए आते हैं और उन्हें वड़े तवज्जह के साथ दिखाया जाता है। सार्वजनिक ऐतिहासिक स्थानों को शिक्षण का एक जवर्दस्त माध्यम वनाया गया है, जो हमारे देश में फिलहाल नहीं है। लन्दन एक परम्परावादी शहर है लेकिन एक दिलचस्प वात वहां भी देखने में आई कि दर्शकों को हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रवेश-पत्र देने के वाद एक प्रश्न-पत्र भी दिया जाता है जिससे वह प्रश्नोत्तर काल की कार्यवाही अच्छी तरह समझ सकें।

केपीटल के साथ ही लगी हुई अमरीका कांग्रेस की लाइब्रेरी है। यह लाईब्रेरी कहने को ही कांग्रेस की सम्पत्ति है, वस्तुतः सार्वजनिक उपयोग के लिए खुली हुई है। लाइब्रेरी का मुख्य भवन भी केपीटल की ही तरह उच्च कोटि का है। इसके साथ एक और इमारत वना दी गई है लेकिन अव वह भी कम पड़ रही है और एक तीसरी इमारत के लिए धन की मंजूरी के लिए कोशिश चल रही है, जिस पर करीव पांच करोड़ डालर खर्च होने का अनुमान है। कांग्रेस लाइब्रेरी में दुनिया भर की भाषाओं की एक करोड़ चालीस लाख पुस्तकें हैं ओर यहां दो हजार समाचार पत्र रोज आते हैं, जिनको माइक्रो-फिल्म द्वारा उतार लिया जाता है और छः महीने वाद जला दिया जाता है। लाइब्रेरी में पुस्तकें मांगने और पहुंचाने के लिए सम्पूर्ण व्यवस्था यान्त्रिक है।

एक ही कंट्रोल रूम में पाठकों की सारी मांगों के कार्ड पहुंचते हैं जहां से नलिकाओं के द्वारा उन्हें अलग अलग मंजिलों में पहुंचा दिया जाता है। हर मंजिल पर ऐसी व्यवस्था है जहां लाइब्रेरियन पुस्तकें निकाल कर छोटी छोटी पेटियों में रख कर यन्त्रों द्वारा पुनः कंट्रोल रूम में पहुंचा देते हैं और वहां से पाठक की डेस्क पर पहुंचा दिया करते हैं। इन यान्त्रिक नलिकाओं की कुल लम्बाई दोनों भवनों में मिला कर लगभग पचास मील वताई जाती है, लेकिन पुस्तकों के संचार एवं परिवहन में कहीं कोई रुकावट नहीं आती। लाइब्रेरी

में कोई चार हजार मांग-पत्र रोजाना आते हैं। भारतीय भाषाओं की लगभग साठ हजार पुस्तकें इस लाइब्रेरी में हैं। पुस्तकों की खरीद या चयन के लिए संसार के सभी गैर-कम्यूनिस्ट देशों की राजधानियों व बड़े शहरों में कांग्रेस लाइब्रेरी के कार्यालय कायम हैं। अपने आप में यह बहुत बड़ा गोरखधन्धा दिखाई देता है किन्तु मानव मस्तिष्क के पोषण में इस लाइब्रेरी का कितना बड़ा उपयोग है, यह देख कर मस्तक श्रद्धानत हो जाता है। संस्थाओं को अमरीका ने जो महत्व दिया है उससे वहां का समाज कभी भी क्षीण नहीं होगा। अमरीकी समाज की संजीवनी इन्हीं संस्थाओं में निहित है।

— २० मई, १९६८

मैंने अमरीका के कई शहरों में देखा कि चीन के नेता माओ की जीवनी और उनकी लिखी हुई पुस्तकें काफी संख्या में बिकती हैं। एकाध जगह पर मैंने माओ के बड़े बड़े पोस्टर और फोटो भी देखे हैं!

भारतीय साहित्य में आजकल योग पर सबसे ज्यादा पुस्तकें बिक रही हैं। योग को कोई दर्शन के रूप में तो कोई व्यायाम के रूप में देखते हैं। कभी कभी टेलीविजन पर योगासन का प्रसारण भी किया जाता है जिसे देख कर आमतौर पर स्त्रियां अपना बदन चुस्त रखने के लिए अभ्यास किया करती हैं।

सोने के संसार में गरीबों का कूच

गरीबी मानव जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है और गरीब ही मानव जाति का सबसे बड़ा अंग है। हर देश के गरीब की एक कहानी है, लेकिन जब अमरीका में भी गरीब की हाय उभर कर आये तो गरीब की कहानी का महत्व बढ़ जाता है, रंग बदल जाता है और लगता है कि मनुष्य ने अब तक जो उन्नति की है वह व्यर्थ ही गई। आजकल अमरीका के कोने कोने में गरीबों का कूच हो रहा है। हर कोने से गरीब अपना प्रदर्शन करते हुए राजधानी वाशिंगटन की ओर कूच कर रहे हैं। चारों ओर एक ही नारा है—वाशिंगटन चलो! काफिले के काफिले टूटी-फूटी पुरानी बसों में या खच्चरों पर लदकर कूच कर रहे हैं। इधर वाशिंगटन में भी उनके स्वागत सत्कार की तैयारियां हो रही हैं। पुलिस वाले अपने हथियार संभाल रहे हैं। सरकारी अफसर सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति की रक्षा की चिन्ता कर रहे हैं। दूसरी ओर वाशिंगटन

के गरीब अपने बिरादरी की पांत में शामिल होने की राह देख रहे हैं। सरकार ने बहुत सोच विचार कर पोटोमेक नदी और लिंकन मन्दिर के बीच पन्द्रह एकड़ जमीन गरीबों के पड़ाव के लिए निकाली है। उनको हिदायत दे दी गई है कि यहीं पर अपना पड़ाव डाले और सफाई की जिम्मेदारी खुद उठावे। शहर की बसों के पिछवाड़े पर मैंने अनेक बोर्ड लगे देखे जिन पर लिखा हुआ था कि बस कम्पनी गरीबों के नेताओं का वाशिंगटन में स्वागत करती है।

इस कूच का नेतृत्व दक्षिण ईसाई सम्मेलन के नेता कर रहे हैं, जिनके अगुवा स्व. मार्टिन लूथर किंग के उत्तराधिकारी पादरी राल्फ एबर्नाती हैं। श्रीमती किंग भी कूच में शामिल होने वालों की देख-भाल कर रही हैं। अन्य कई ईसाई नेता जगह जगह धन एकत्र कर रहे हैं और इस कूच को आगे बढ़ा रहे हैं। कई दिनों से यह कूच चल रहा है। गरीब लोग गाते-बजाते, हंसी-मसखरी करते और रास्ते के कष्टों को भुलाते हुए चले जा रहे हैं। गरीबों का कारवां चला जा रहा है। कई लोगों के पैर सूज गये हैं। कई को पेचिस हो गई है और पेट खराब हो गये हैं। इन व्याधियों के कारण कई बार कूच के कार्यक्रम में व्यतिक्रम भी हुआ है। फिर भी कदम पीछे नहीं पड़ना चाहते। कारवां आगे बढ़ रहा है। गरीब चल पड़े हैं उत्तरी सीमान्त प्रदेश मेन से, वेट्स विले से, बर्मिंघम से, अलबामा से, अटलान्टा से, मिलवाकी से, नासविले से, टेनिसी से, नाक्स विले से, इंडियानोपिल से, लूइ विले से, मिसीसिपी और मिशीगन से और न जाने कहां कहां से। सारे अमरीका में गरीबों के इस कूच की चर्चा है। अखबारों में, टेलीविजन पर, सभा-सोसाइटियों में गरीबी पर विचार विमर्श हो रहा है। गरीब की जबान पर धन की चर्चा है और धनवान की जबान पर गरीब की।

यह गरीबी क्या बला है? भारत में समाजवादी नेता स्व. लोहिया ने एक बार बड़ा उग्र आन्दोलन छेड़ा था, गरीबी को लेकर, जिसने देश भर में एक खलबली मचा दी थी। उनकी शिकायत थी

कि भारत में एक आदमी की औसत आमदनी तीन आने रोज है। इसके जवाव में स्व. जवाहर लाल नेहरू ने अपने हुक्कामों की सलाह पर दावा किया था कि प्रति व्यक्ति औसत आय चौदह आने है; किंतु लोहिया जी के निरन्तर आक्रमणों के बाद तत्कालीन गृहमंत्री नन्दा ने दस आने रोज तक की आय होना मंजूर कर लिया था। लोहिया जी चल ही बसे लेकिन वे भारत के गरीव की रोजाना आमदनी तीन आने से चार आने या दस आने से ग्यारह आने नहीं करवा सके। इस पृष्ठभूमि में जरा अमरीका की गरीवी को भी रख कर देखें। अमरीका में गरीव की परिभाषा है पति-पत्नी और दो वच्चों के परिवार की सालाना आमदनी तीन हजार डालर या ढाई सौ डालर प्रति माह से कम होना। इसी तरह की परिभाषा हमारे देश में पंजाव के मुख्यमन्त्री स्व. प्रताप सिंह कैरों ने की थी, जिनका कहना था कि ढाई सौ रुपये मासिक से कम आय वाले एक परिवार को पिछड़े वर्ग में रख दिया जाय और उसे पिछड़े वर्ग की सभी सुविधायें प्रदान की जांय। ढाई सौ डालर तक की आय वाला अमरीकी गरीव आज उन सुविधाओं का उपयोग कर रहा है जो गरीव की परिभाषा के अन्तर्गत दी जा रही हैं, और निरन्तर वढ़ाई जा रही हैं; किन्तु उसका संघर्ष इन सुविधाओं को पाने के लिए नहीं है, वल्कि उन्हें समाप्त करने के लिए है, ताकि वह औसत मध्यम श्रेणी में शामिल होने की स्थिति में आ जाये। छः हजार डालर सालाना अर्थात पांच सौ डालर महीना कमाने वाले परिवार को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इस न्यूनतम स्तर के लिए अमरीकी गरीव लड़ रहा है और उसकी आवाज को भरपूर वजन भी मिल रहा है।

गरीवों का कूच काले-गोरे के संघर्ष का ही रूपान्तर कहा जा सकता है, जिसमें कम आमदनी वाले गोरे भी शामिल हैं। यह रंग-भेद विरोधी आन्दोलन के आधार का विस्तार मात्र है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस कूच के अनुयायियों में अधिकांश या नव्वे प्रतिशत तक काले ही हैं, क्योंकि वास्तव में आर्थिक

शोषण के शिकार यही लोग हैं। काली गरीबी के मुकाबले गोरी गरीबी नाम मात्र को ही है। यह आन्दोलन अब इस स्थिति में पहुंच गया है कि गोरे शासक उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। यह भी कहना असंगत नहीं होगा कि यह आन्दोलन उतना भीषण भी नहीं है जितना कि भारत में बैठकर अखबार पढ़ने से लगता है। यह अमरीका के समाचार पत्रों का श्रेय है कि उन्होंने काले-गोरे या गरीबों के संघर्ष को अमरीका के जीवन-मरण का प्रश्न बना दिया और उसके पक्ष में हवा बनादी। भारत में बैठकर जब अखबारों में काली माई [ब्लेक पावर] का जयकार सुनते हैं, तो लगता कि अमरीका के टुकड़े-टुकड़े होने वाले हैं, लेकिन नजदीक से इस समस्या का अध्ययन करने पर साफ दिखाई देने लगता है कि इस समस्या का बिल्कुल निपटारा हो जायेगा और शायद एक ही पीढ़ी में काले-गोरे का भेद भी समाप्त हो जायेगा। इसका एक मुख्य कारण भी है कि कालों ने अब स्वयं अपने उद्धार का संकल्प कर लिया है और वे अपनी ताकत को पहिचान गये हैं। मार्टिन लूथर किंग का बलिदान शायद इस यज्ञ की पूर्णाहुति सिद्ध हो जाय।

अगर तनिक पीछे मुड़कर देखें तो पता चलेगा कि आज के पच्चीस साल पहिले काले लोगों को गोरे अपने पास भी फटकने नहीं देते थे। चुनाव में भाग न ले सकें इसलिए मतदान पर टेक्स लगा देते थे, मतदान के लिए योग्यताएं निर्धारित कर देते थे जो कि कालों के पास नहीं होती थीं। बसों में आगे की सीटों पर काले नहीं बैठ सकते थे आदि आदि। यह दूसरे महायुद्ध की बात है जब कि कालों की पूछ हुई। अमरीका को इस बीच सवा करोड़ आदमी अपनी सेना में भर्ती करने पड़े जिससे लाखों नौकरियां खाली हो गईं। उन नौकरियों पर कालों की खपत हो गई, कुछ लोग सेना में भी भरती हो गये। तब से कालों का दौर बाकायदा शुरू हो गया और आज ऐसा कोई काम नहीं है जहां गोरों के साथ काले काम नहीं करते हैं। हालांकि आज भी ऊंचे पदों पर कालों की संख्या नाम मात्र की ही

है और, बड़े व्यवसाय उनके हाथ में नहीं आए हैं, लेकिन जहां तक रंग का सवाल है आज अमरीका में यह भेद नही है। अब असली लड़ाई काले या गोरे की नहीं है। इस लड़ाई को काला आदमी जीत चुका है। अब उसके सामने सवाल है आर्थिक क्षेत्र में अनुपातिक शक्ति प्राप्त करने का। अमरीका के बाहर आज भी इस समस्या को रंग भेद के रूप में जाना जा रहा है जो सही नहीं है। अब तो लड़ाई हैसियत की है। इस लड़ाई को जीतने के लिए कालों को दो मोर्चों पर लड़ना होगा। एक तो यह है कि उन्हें अपने आप को तेजी के साथ शिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाना होगा और दूसरे अपनी आवाज को बराबर ऊंचा किये रखना होगा—जैसा कि अभी हो रहा है।

आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ने में कालों के सामने सबसे बड़ी बाधा यही है कि वे अमरीकी आर्थिक तन्त्र में खपने में असमर्थ हैं अर्थात आज जो काले बेरोजगार हैं वे वही हैं जो पढ़े-लिखे नहीं हैं या कोई हुनर नहीं जानते। अमरीकी समाज व्यवस्था आज इस तरह की हो गई है कि उसमें छोटा से छोटा काम करने के लिए लिखा-पढ़ा होना जरूरी बन गया है। ज्यादातर काले लोग अनपढ़ व अशिक्षित रह गये; इसके भी ऐतिहासिक कारण हैं, जो किसी से छिपे नहीं हैं। बेरोजगार भी इसलिए हो गये कि अब तक उनके पास कोई आर्थिक साधन ही नहीं थे। ज्यादातर लोग दक्षिण के खेतों से हटकर शहरों में आ बसे हैं। अमरीका ने जब दक्षिण में खेती का यन्त्रीकरण फैलाया तो लाखों खेतीहर बेरोजगार हो गये। यह इसी दशक की बात है। उन बेरोजगारों की अपनी जमीन भी नहीं थी और शिक्षा में भी वे पुरानी गुलामी के कारण पिछड़ गये। यन्त्रीकरण ने कोढ़ में खाज पैदा करदी। आज ज्यादातर काले लोग बड़े शहरों में जमे हुए हैं। जो लोग पहिले से शहरों में रह रहे हैं वे बेरोजगार भी नहीं हैं और गरीब भी नहीं हैं लेकिन नये नीग्रो अभी तक पूरी तरह जम नहीं पाये हैं। मैंने कई नीग्रो लोगों से बातचीत करके यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी बेरोजगारी और गरीबी में कुछ उनके संस्कार भी जिम्मे-

दार हो रहे हैं। उदाहरण के तौर पर वाशिंगटन को ही लीजिए। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि अमरीका की राजधानी में गरीबों का अर्थात कालों का बहुमत है और उनमें बेकारी है। वाशिंगटन मूलतः नीग्रो बहुल शहर नहीं था, अब हुआ है। इसका एक कारण यह है कि बेरोजगारी के कारण मिलने वाली सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए ज्यादातर लोग वाशिंगटन में रहते हैं। वाशिंगटन केन्द्र शासित क्षेत्र है अतः यहां बेरोजगारों का जो भत्ता मिलता है वह संघीय दरों पर मिलता है। पास के ही वर्जिनिया प्रदेश में यह दर सौ से घटकर पिचत्तर डालर रह जाती है।

घर बैठे बेरोजगारी का भत्ता मिलते रहना बेकार कालों के लिए वरदान के बजाय अभिशाप सिद्ध हो रहा है और नैतिक दृष्टि से उनके लिए हानिकारक भी बन रहा है। वे अपनी खेतीहर प्रकृति को भी नहीं बदलते और सीख-पढ़ लेने के बजाय जो कुछ मिलता है उसी में गुजारा कर लेना पसंद करते हैं। संघीय सरकार ने अभी अभी एक काम-सिखाऊ कार्यक्रम भी शुरू किया है। इस तरह के एक केन्द्र को मैंने स्वयं देखा है। इस केन्द्र के प्रबन्धक भी नीग्रो थे, जिनका कहना था कि काले लोग टिक कर काम नहीं सीखते। दूसरी समस्या काले और गोरों में सांस्कृतिक एकीकरण की भी है। काले लोग जो बेरोजगार हैं, रहन-सहन में भी गोरों से मेल नहीं खाते। हालांकि यह उनका कसूर नहीं है, लेकिन एक ओर सीख-पढ़ लेने में रुचि न लेना तथा दूसरी ओर उनका गोरे समाज से कट जाना सांस्कृतिक एकीकरण में बाधक है। उपनिवेश काल की इस दीनता और हीनता की विरासत को संभवतया इन्हें कुछ काल तक ढोना ही पड़ेगा। इस स्थिति में एक ही आशा प्रदलक्षण दिखाई पड़ता है कि कालों के बच्चे, स्कूलों में ठीक गोरों की ही तरह पढ़ रहे हैं और परिणाम-स्वरूप अगली पीढ़ी के काले और गोरे अलग अलग नहीं रहे पायेंगे।

दक्षिण के ईसाई नेताओं को यह श्रेय दिया जाना चाहिये और डॉ० मार्टिन लूथर किंग के उत्तराधिकारियों को भी, जिन्होंने किंग के

वलिदान को सार्थक करने का संकल्प पूरा करने की ठान ली और अपने नेता के चल वसने से वे हतोत्साहित न होकर अधिक सक्रिय हो गये। श्रीमती लूथर के धैर्य व साहस की भी सराहना करनी पड़ेगी कि वे अपने पति का शोक भुला कर गरीबों के कूच को सफल बनाने में लग गई हैं। इन सभी नेताओं की नीति-परता की सराहना खास-तौर पर इसलिए करनी पड़ेगी कि उन्होंने रंग-भेद विरोधी मंच का विस्तार करके उसे आर्थिक धरातल पर ला दिया। किंग के वलिदान को आग को उन्होंने ठण्डा नहीं पड़ने दिया और अमरीका में भड़क उठने वाली हिंसात्मक प्रवृत्ति को नया मोड़ दे दिया। परिस्थिति उनके अनुकूल है। अमरीका का शासन-सूत्र इस समय प्रेसीडेण्ट लिंडन जॉन्सन के हाथ में है, जिनका चुनावों में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं रह गया है। चुनावों में भाग लेने वाले सभी उम्मीदवार इस समय अपने स्वार्थ-युद्ध के तकाजे के कारण गरीवों के कूच का समर्थन कर रहे हैं और वियतनाम युद्ध के खर्चे को आर्थिक कल्याण में लगाने की रट लगा रहे हैं। प्रेसीडेण्ट जॉन्सन इस समय वन रहे जनमत को ध्यान में रखकर नागरिक अधिकारों सम्वन्धी नया कार्यक्रम मंजूर करवा सकते हैं, जिसको अमल में लाने का भार आने वाले राष्ट्रपति पर उसकी इच्छा के अनुसार छोड़ दे सकते हैं। स्वयं अमल की जिम्मेदारी से मुक्त हो जायेंगे। अमरीका की यह परिस्थिति आज सोलह आने गरीवों के हक में है और अन्ततः कालों के हक में है। इन्हीं सव वातों को ध्यान में रखते हुए मैंने यह आशा प्रगट की थी कि काले-गोरों की समस्या का निपटारा जल्दी ही हो जायेगा। कहना न होगा कि अमरीकी समाचार पत्र इस विषय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं और विश्व जनमत को एक नया मोड़ दे रहे हैं। भारत का हरिजन अमरीका के गरीवों या कालों से वहुत कुछ सीख सकता है। काश! हमारी आठ करोड़ की जनशक्ति भी देश के निर्माण में उपयोगी भूमिका अदा कर सके।

— २१ मई, १९६८

न्यूयार्क टाइम्स : पढ़ें तो कैसे ?

मैं इस लेख में अमरीका के सबसे बड़े अखबार न्यूयार्क टाइम्स की चर्चा करना चाहता हूं। विलियम्सबर्ग से ग्यारह मई शनिवार के दिन के साढ़े बारह बजे हवाई जहाज से रवाना होकर सवा बजे न्यूयार्क पहुंचा। एक घण्टा मुझे केनेडी हवाई अड्डे से हवाई कम्पनियों के न्यूयार्क अड्डे पर पहुंचने में लगा और टेक्सी करके करीब तीन बजे उस होटल में पहुंचा, जहां मेरे लिए कमरा तय किया गया था। यह होटल शहर के बीचोंबीच है और चारों तरफ गगनचुम्बी इमारतों से घिरा हुआ है। होटल का नाम है 'ऐबी विक्टोरिया' जो खुद करीब पच्चीस मंजिल का है और न्यूयार्क के मापदण्ड से भी अच्छा माना जाता है। नई दिल्ली के अशोक होटल या अन्य किसी होटल से छोटा या हल्का नहीं है बल्कि किन्हीं मामलों में बढ़कर है। आज रविवार है और बारिश हो रही है। पैदल घूमना चाहूं तो बरसाती नहीं

है और छुट्टी के कारण खरीद भी मुश्किल है। हो सकता है कुछ दूकानें खुली हुई हों, लेकिन दूर होंगी और मैं वहां पहुंच नहीं पाऊंगा। न्यूयार्क वेहद मंहगा है, इसलिए मैं यह भी चाहता हूं कि वरसाती जैसी चीजों पर खर्च न करना पड़े तो सुविधा ही रहेगी। अगर काम नहीं चला तो छाता खरीद लूंगा, लेकिन उसे ढोये फिरने की मुसीवत लगी रहेगी। यह सोच कर अभी दोनों ही चीजों की खरीद टाले जा रहा हूं।

मुझे पच्चीस डालर रोजाना मिलते हैं लेकिन न्यूयार्क में उनका कोई मूल्य ही नहीं है। यहां पहुंच कर डालर की कीमत रुपये से भी कम हो गई है। नई जगह पर कुछ खर्च तो वैसे भी आवश्यक हो जाता है जैसे वसों के रूट और कार्यक्रम न मालूम होने के कारण कई वार टेक्सी करनी पड़ती है। कई वार इसलिए भी कि आपको समय पर पहुंचना है और वस मिलना सम्भव न हो। मुझे घुमाने के लिए आज एक अलग से व्यवस्था की गई थी जो शायद असफल हो गई, व्यवस्थापकों में से कोई पहुंच नहीं पाया। मैं सुवह सुवह वैसे कुछ देर के लिए निकल पड़ा था। अटकल से और कुछ पूछताछ करके संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यालय तक गया हूं। इस वीच वारिश वन्द थी। वारिश का रंग वनते ही वापिस आ गया। करीव दो मील की दूरी थी। इससे ज्यादा घूमना सम्भव नहीं था। विना किसी जानकार साथी के अकेले घूमने के लिए जाने में खर्च ज्यादा होने का खतरा था इसलिए मैंने न्यूयार्क शहर देखने का काम आज के लिए स्थगित ही रखा। मैं पिछले दिनों में कुछ वचा नहीं पाया, वरना यह दिक्कत भी नहीं आती। इस वक्त मेरी हालत वैसी ही है जैसी कि द्वारिकापुरी में सुदामा की थी। मैं उधार मांगे हुए चावलों को अपनी वगल में कस कर दवाये हुए हूं, जो किसी कृष्ण के लिए नहीं हैं वल्कि अपने ही लिए हैं, लेकिन राशन की छोटी-सी मात्रा में हैं।

हां, तो मैं न्यूयार्क टाइम्स की चर्चा करना चाहता था। इस-

लिए कि न्यूयार्क टाइम्स अपने आप में एक निवन्ध का विषय है और अमरीकी समाज का सांगोपांग प्रतीक है। न्यूयार्क टाइम्स सारी दुनिया में जाना-माना अखबार है। यहां के शासन व समाज पर इसका अच्छा खासा असर है। क्यों, इसकी चर्चा मैं बाद में करूंगा। अभी सिर्फ अखबार के कलेवर और उसके स्तम्भों [कालमों] की वात करना ठीक होगा। मैं न्यूयार्क टाइम्स प्रेस और कार्यालय को देखकर ही आगे की वात करना चाहूंगा। मैंने आज ही न्यूयार्क टाइम्स का रविवारीय अंक खरीदा—चार सेण्ट अर्थात आधे डालर में। चाय पीकर रेस्तरां से आ रहा था कि न्यूज स्टेण्ड पर ठहर गया। मांगते ही एक प्रति न्यूयार्क टाइम्स की मेरे समाने रख दी गई। मुझे ख्याल भी नहीं था कि अखवार इतना बड़ा होगा अतः मैंने उसमें से एक प्रति निकालने के उपक्रम में हाथ बढ़ाया और न्यूज स्टेण्ड वाले हॉकर या मालिक ने पूरा बण्डल मेरे हाथों में थमा दिया और मुझे फौरन होश आया कि शायद पूरा वण्डल ही एक प्रति होगी। मैं चुपचाप उठाकर अपने कमरे में आ गया।

कमरे की मेज पर रखते ही महसूस हुआ मानो काफी भार उतर गया हो। मैंने न्यूयार्क टाइम्स के वारे में खूब पढ़ा था और सुना था लेकिन मुझे कभी ऐसी कल्पना नहीं हुई थी कि इतना वड़ा भी कोई अखवार हो सकता है। राजस्थान पत्रिका की पूरी तीन महीने की फाइल हो सकती है। वजन का अनुमान लगायें तो तीन किलो से कम नहीं होगा। न्यूयार्क टाइम्स का साप्ताहिक समीक्षा वाला परिशिष्टांक प्रति सप्ताह हमारे कार्यालय में आता है उसे मैं पढ़ता भी हूं। मैंने ज्यादातर यही सोच रखा था कि न्यूयार्क टाइम्स भी लन्दन टाइम्स व वाशिंगटन पोस्ट की तरफ ही या उनसे कुछ ही वड़ा होगा। लन्दन टाइम्स देखा था, रविवार को करीव साठ पृष्ठों का, वाशिंगटन पोस्ट कुछ ज्यादा वड़ा, लेकिन न्यूयार्क टाइम्स के पृष्ठ गिने तो पूरे पांच सौ इठियासी निकले थे। इनमें तीन सौ छप्पन पृष्ठ पूरे आकार के थे और दो सौ वत्तीस साप्ताहिक अखबारों के जैसे।

पूरा अखवार वारह भागों में विभाजित है, इठियासी पृष्ठों के दो खण्ड सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और व्यक्तिगत समाचारों के, साप्ताहिक समीक्षा अठारह पृष्ठों में, खेल-कूद तीस पृष्ठों में, यात्रा व सैर सपाटे सम्वन्धी अड़तालिस पृष्ठ, कला व आमोद-प्रमोद के तीस पृष्ठ, वर्गीकृत विज्ञापन दो खण्डों में साठ पृष्ठ, वित्त-व्यापार छत्तीस पृष्ठ, जिनमें चोईस पृष्ठों में विशेष वर्गीकृत विज्ञापन, जमीन–जायदाद सम्वन्धी वत्तीस पृष्ठ, पुस्तक-समीक्षा के छप्पन पृष्ठ, मेगजीन अर्थात् आम रुचि का साप्ताहिक एक सौ अट्ठाइस पृष्ठ, एक रंगीन विज्ञापन-विशेषांक चोईस पृष्ठ, और रोडे द्वीप पर एक विज्ञापन-समाचार विशेषांक चोईस पृष्ठों में है।

हो सकता है मेरे पाठकों को न्यूयार्क टाइम्स के वारे में ज्यादा अच्छी जानकारी रही हो, लेकिन मैं उनके समाने अपने अज्ञान को छिपाना नहीं चाहूंगा। इसलिए फिर यह कहना चाहूंगा कि न्यूयार्क टाइम्स के भीम कलेवर को देख कर मैं एक वारगी ठीक नहीं कर सका कि मैं उसका क्या करूं। जिज्ञासा के कारण पूरे छः घण्टे इस अखवार को उलट पुलट कर देखने में लगाये। आज के ताजा समाचार पढ़ डाले। कुछ कालम पढ़े। मेगजीन से एक नमूने का लेख भी पढ़ा। विज्ञापन देखे। खेल-कूद में मेरा दखल नहीं लेकिन वह खण्ड भी देखा, कला व आमोद-प्रमोद के पृष्ठों पर एक नजर डाली। वित्त-व्यापार वाले पृष्ठों से कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा।

सब कुछ देख पढ़कर मैंने उसके वारे में सोचना शुरू किया। न्यूयार्क टाइम्स का दावा है कि उसका रविवारीय अंक करीब दस लाख छपता है। जरूर ही छपते होंगे, उसे आधा डालर खर्च करने वाले दस लाख पाठक भी जरूर मिल जाते हैं, लेकिन वे उसे पढ़ते किस तरह हैं और उसमें पढ़ते क्या हैं? मैंने समाचारों सम्वन्धी पहले दो खण्ड देखे जिनके हर पृष्ठ पर एक कालम तो समाचार का और वाकी सात कालम विज्ञापनों से भरे पड़े थे। कुछ पृष्ठ ही ऐसे थे जिनमें तीन कालम तक का स्थान समाचारों को दिया गया था, लेकिन ये

पृष्ठ थे शादी के समाचारों और पारिवारिक चित्रों से भरे हुए या जन्म-मृत्यु की घोषणाओं वाले । इनमें भी ज्यादातर विज्ञापन या अर्द्ध विज्ञापन थे । अमरीका के अखबारों में आमतौर पर चालीस प्रतिशत स्थान समाचारों या विचारों या चित्रों को दिया जाता है और साठ प्रतिशत स्थान विज्ञापनों को । न्यूयार्क टाइम्स में शायद इस तरह की भी कोई सीमा नहीं है ।

मैंने वाशिंगटन के एक परिवार में पति पत्नी को यह चर्चा करते देखा था कि वे शनिवार को खरीददारी करने जाना चाहते हैं । खरीददारी के पहिले अखवार पढ़ना जरूरी था और इसलिये कि अखवार के जरिये वे दूकान और चीज का चुनाव कर सकते हैं। अमरीका के अखबारों में विज्ञापन के साथ हर चीज का दाम छपता है और खरीद में भाव ताव नहीं किये जाते । विज्ञापन-दाता तरह तरह की नई घोषणा भी करते रहते हैं । कभी वे नई चीज पेश करते हैं तो कभी रियायती माल बेचते हैं, तो किन्हीं चीजों को किश्तों पर देने की सूचना देते हैं । अमरीका के समाचार पत्रों में दूकानों के विज्ञापनों पर पाठक उसी तरह निर्भर रहते हैं जिस तरह जयपुर के पाठक सिनेमा देखने के लिए अखबारों पर निर्भर करते हैं । न्यूयार्क जैसे शहर में अगर किसी को घर का सामान खरीदना है तो सहज ही समझा जा सकता है कि विज्ञापनों का उसके लिए कितना महत्व है । जयपुर के अखबार में अगर विज्ञापन न भी हों तो पाठक को कोई असुविधा या शिकायत नहीं होती लेकिन विज्ञापन ज्यादा हो और समाचार कम हो तो वह समझता है कि ठगा गया है । दूसरा कारण यह है कि दूकानदार विज्ञापन के माध्यम से अपने ग्राहक को विश्वास में नहीं लेते और मूल्यों को अपनी सुविधा के अनुसार बदल लेते हैं । तीसरा कारण यह कि हमारी क्रय-शक्ति भी कम है और चीजों का कोई स्टेण्डर्ड नहीं है, इसलिए विज्ञापन पढ़ने के बावजूद ग्राहक को दूकान दूकान भटकना पड़ेगा । अगर ग्राहक को स्टेण्डर्ड और कीमत का भरोसा हो जाय तो वह रिक्शा, तांगा या मोटर पर घूमने में

पैसा और वक्त खराव करने के वजाय एक निश्चित चीज के लिए निश्चित दूकान पर पहुंच जाय। वड़े शहरों में हमारे यहां भी कुछ कुछ इस तरह के विज्ञापन आने लगे हैं लेकिन उनकी संख्या अभी नाम मात्र ही है।

न्यूयार्क टाइम्स के पाठकों की दूसरी श्रेणी खेलकूद और सैलानियों की है और उन्हीं के लिए वह अलग से अड़तालीस व तीस पृष्ठ निकालता है। दैनिक अंक में भी खेलकूद के लिए एक अलग खण्ड होता है। करीव चोईस पृष्ठ होते हैं। वित्त व्यापार का एक पृष्ठ भारत के वड़े अखवारों में भी होता है। अमरीका में इस अंक में करीव चोईस पृष्ठ होते हैं। आज छत्तीस हैं। यह अखबार के आकार पर निर्भर करता है। न्यूयार्क टाइम्स में विज्ञापन की मात्रा सभी अखवारों से ज्यादा है जिसका कारण उसका व्यापारिक ढांचा या संगठन है। इस कारण उसका कलेवर भी ज्यादा है। न्यूयार्क के अर्थतन्त्र को देखते हुए न्यूयार्क टाइम्स जैसा अखवार ही उसकी आवश्यकता को पूरा कर सकता है। इस शहर में कोई छोटा मोटा अखवार ठहर नहीं सकता। अखवार चलते जरूर हैं लेकिन इस वरगद के पेड़ के नीचे पनप नहीं सकते। दूसरे अखवार पढ़ने वाले भी न्यूयार्क टाइम्स को पढ़ते हैं। इस अखवार का एक निश्चित पाठक वर्ग है। कुछ वर्ष पहिले जव न्यूयार्क टाइम्स में तीन महीने की हड़ताल हुई तो हड़ताल के वाद पहिला ही अंक एक सौ नौ पौण्ड वजन का निकला था। यह वात मैंने भारत में सुनी थी किन्तु अव समझ में आ गया कि न्यूयार्क टाइम्स इतना वड़ा अंक निकाल सकता है और उसे निकालना पड़ा होगा।

अखवार के कलेवर के अलावा उसके स्तम्भों को पढ़कर मैंने यह जरूर महसूस किया कि न्यूयार्क टाइम्स में पत्रकारिता की दृष्टि से ऐसी कोई विशेषता नहीं है जो हमारे देश के अखवारों से उसे श्रेष्ठ सिद्ध कर सके। सिर्फ साधन की माया है और वहुत वड़ी है।

— २२ मई; १९६८
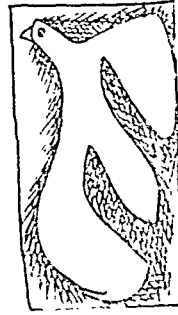
न्यूयार्क : लंका में सब बावन गज के

न्यूयार्क को मैं बहुत कम देख पाया और यह शहर ऐसा है भी नहीं कि इसे रास्ते चलते देखा और समझा जा सके। न्यूयार्क की एक झलक ली जा सकती है। अगर न्यूयार्क को अच्छी तरह जानना हो तो यहां की जिन्दगी बिताकर ही जाना जा सकता है, वरना एक तस्वीर के अलावा कुछ भी नजर नहीं आ सकता। यहां के नर-नारी कहां काम करते हैं, कहां रहते हैं और कहां अपना निःशेष समय बिताते हैं। इन तीनों क्षेत्रों में कोई तारतम्य नहीं है। कर्म-क्षेत्र में न्यूयार्क के आदमी का जो रूप दिखाई देता है वही उसका रूप नहीं है। वह एक मशीन के पुर्जे का रूप है। कर्म-क्षेत्र में आकर उसका व्यक्तित्व गौण हो जाता है। अगर वह किसी बाहरी आदमी को देखकर हंसता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह उसे देख कर खुश हुआ है। उसने अपने आपको इस तरह साध रखा है कि वह दिन भर मुस्कराता रह सकता है

और उस मुस्कान के अन्तरंग अनुभव से विलग या अछूता भी रह सकता है। उसे विदेह भी कह सकते हैं और खण्डित व्यक्तित्व भी। खैर।

न्यूयार्क की मैंने झलक-मात्र पाई है, लेकिन कहना चाहूंगा कि यह झलक भी वहुत कुछ है और इसके जरिये वहुत कुछ का अनुमान लगाया जा सकता है। अपने चांदनी या अंधेरे के चार दिन मैंने न्यूयार्क के मुख्य शहर में विताए, जहां संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्यालय है, एम्पायर स्टेट विल्डिंग है, ब्रॉड-वे थियेटर है, न्यूयार्क सिटी-हॉल, ढेर सारे म्यूजियम हैं, बड़े वड़े होटल हैं, रॉकीफेलर सेण्टर और प्लाजा हैं, विशाल अस्पताल और विश्व-विद्यालय हैं, धन कुवेरों के दफ्तर हैं और वह वॉल स्ट्रीट है जो आधी से ज्यादा दुनिया के अर्थ-चक्र की धुरी का काम करती है। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी कि अमरीकी जोवन-चक्र को गति इसी वॉल स्ट्रीट की धुरी पर केन्द्रित है। अमरीका के पास दुनिया की पैंतीस प्रतिशत जो सैन्य शक्ति है, उसका निर्वाह इसी वॉल स्ट्रीट के बूते पर होता है। मशीन ने न्यूयार्क या अमरीका के जीवन को जो गति और क्षमता प्रदान की है, वह इसी वॉल स्ट्रीट के नियन्त्रण में हैं। मैंने न्यूयार्क के इसी मुख्य भाग को देखा है और नगर की एक समुद्री परिक्रमा की है।

न्यूयार्क अहर्निश जागता है और चलता ही रहता है। वह कभी नहीं सोता अर्थात न्यूयार्क शहर के केफीटेरिया और ट्रैफिक सिगनल कभी वन्द नहीं होते। दफ्तर वंद हो जाते है, लेकिन कारखाने और क्लव चलते रहते हैं। सुवह सात से शाम को सात वजे तक जीवन की गति इतनी तेज हो जाती है कि मानव एक वूंद की तरह नहीं, वल्कि वहती धारा की तरह नजर आता है। न्यूयार्क की सड़कें मोटरों की कतारों के नीचे छिप जाती हैं। केवल गति ही नजर आती है, मोटर या मानव नहीं। गति है, तीव्र है लेकिन उस पर जवर्दस्त अंकुश है। गली गली पर लाल सिगनल है, सिगनल की

अवहेलना करने पर और कहीं बचत भले ही हो जाय, न्यूयार्क में खैरियत नहीं है। यह सिगनल जीवन के हर क्षेत्र में काम करता है।

पिच्यासी लाख की आबादी का शहर है और दुनिया के बड़े शहरों में तीसरा स्थान रखता है। दो बड़े शहरों में से एक लन्दन को मैं देख चुका हूं और सबसे बड़े शहर टोकियो को अब देखूंगा। लन्दन के मुकाबले में न्यूयार्क कहीं अधिक व्यस्त है और कहीं अधिक जनसंकुल व कर्मरत है। न्यूयार्क अमरीका नहीं है क्योंकि यहां लोग ज्यादातर बाहरी या विदेशी हैं लेकिन न्यूयार्क ही वास्तविक अमरीका है, जो अमरीका के शासन और समाज का नेतृत्व एवं नियन्त्रण करता है। अमरीका की वास्तविक धुरी वाशिंगटन नहीं है, न्यूयार्क है। वाशिंगटन में निर्णय होते हैं और बयान जारी होते है और न्यूयार्क में उनकी भूमिका बनती है, मसविदे तैयार होते हैं। वाशिंगटन के रंगमंच का नेपथ्य न्यूयार्क है। यह सम्पूर्ण अमरीका की सत्ता, समृद्धि एवं संस्कृति का केन्द्र कहा जा सकता है। सत्ता और समृद्धि के अतिरिक्त अमरीका के कलात्मक एवं सांस्कृतिक जीवन में जो कुछ भी तत्व है, उनका चरम विकास न्यूयार्क में हुआ है। उदाहरण के तौर पर लिंकन सेण्टर, रेडियो सिटी हाल, मेट्रोपोलिटन म्यूजियम और ब्राड-वे के नाम गिनाये जा सकते हैं, जो अमरीका के सांस्कृतिक जीवन के प्रतीक हैं तथा विश्व विख्यात हैं। इसी तरह अमरीका की सबसे ज्यादा विकसित पत्रिकाएं लाइफ, टाइम, न्यूज वीक, लुक आदि यहीं से प्रकाशित होती हैं। फेशन के तरह तरह के आविष्कार न्यूयार्क में होते हैं जो आज कल पेरिस से होड़ करने पर तुला हुआ है।

न्यूयार्क देखने या जानने के लिए बहुत समय चाहिये। लेकिन एक नजर देखने का सबसे अच्छा तरीका मुझे यह लगा कि एक समुद्री परिक्रमा करली जाय। मैंने तीन घण्टे और तीन डालर खर्च किये और सर्किल लाइन के एक पोत पर सवार होकर न्यूयार्क शहर की पैंतीस मील की समुद्री परिक्रमा की। इस शहर के विकसित क्षेत्रों का चित्र मेरे सामने आया और एक बार एम्पायर स्टेट बिल्डिंग की चोटी

पर चढ़कर शहर को देख लिया, जिससे उसकी विशालता का अनुमान हो सका। एम्पायर स्टेट विल्डिग की एक सौ दो मंजिल तक ही मैं जा सका। इसके ऊपर की दस मंजिल टेलीविजन के लिए सुरक्षित रखी गई हैं, जिनमें जाया जा सकता हैं, लेकिन उसके लिए मैंने कोई विशेप उद्यम करने की जरूरत नहीं समझी। एक सौ दो मंजिल भी करीव एक हजार दो सौ फीट ऊंची थी। जहां से न्यूयार्क और आस पास की एक सौ मिल दूरी तक के दृश्य साफ नजर आते थे। मैंने दुनिया की सवसे ऊंची इस इमारत पर रात को भी चढ़कर वाहर को रोशनी में देखा। यह कहने की जरूरत नहीं हैं कि यह अनुभव अपने आप में रोमांचकारी था। एक दिलचस्प तथा एम्पायर स्टेट विल्डिग के वारे में यह मालूम हुआ कि इसे साल में करीव अस्सी लाख आदमी देखते हैं और एक वार के एक टिकिट का एक डालर वसूल किया जाता है इस तरह से यह इमारत अपने आप में एक व्यवसाय है, जिसकी आय का एक वहुत वड़ा जरिया उसके दर्शक हैं। इमारत में कुल एक हजार किरायेदार भी हैं, जहां व्यवसायी दफ्तर हैं। इमारत १९३३ में वनी थी और उसके वाद पैंतीस सालों में इससे ऊंची दूसरी इमारत नहीं वनी। यह भी एक रहस्यमय वात है। इन पैंतीस सालों में कई नई इमारतें वनी हैं, और आज की कला भी वहुत आगे वढ़ गई है, लेकिन एम्पायर स्टेट विल्डिग से वड़ी कोई इमारत नहीं वनी। क्या इसके मालिकों का न्यूयार्क पर इतना दवदवा है कि वे इससे वड़ी इमारत वनने ही न दें? यह प्रश्न मेरे अपने ही दिमाग की उपज है, क्योंकि अमरीकी समाज व्यवस्था में यह संभव भी लगता है।

न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यालय को मैंने खास तौर पर देखा। संयोग से उस दिन महासभा की और सुरक्षा परिषद् की भी वैठकें थीं। मैंने प्रेस दीर्घा से दोनों की कार्यवाही भी देखी। एक नया ही अनुभव था। महासभा में दक्षिण अफ्रीका की समस्या पर विचार हो रहा था और सुरक्षा परिषद् में मध्यपूर्व की समस्या पर।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य श्री वृजेश [द्वारिका प्रसाद मिश्र के पुत्र] से भी एक सरसरी भेंट हुई, जिसका श्रेय पी. टी. आई. के विशेष प्रतिनिधि श्री राघवन को था। संयुक्त राष्ट्र संघ कार्यालय में आगन्तुकों को घुमाने और दिखाने का बड़ा ही अच्छा प्रवन्ध है। गाइड का काम महिलाएं करती हैं और संघ कार्यालय के प्रत्येक भाग का भली भांति परिचय देती हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ को देखने के लिए चार-पांच हजार लोग रोजाना आते हैं, जिनमें आजकल ज्यादा-तर स्कूलों के वच्चे होते हैं।

इस भवन के विभिन्न दालानों में देश देश की कलाकृतियां सजी हुई हैं, परन्तु मुझे यह देखकर खेद हुआ कि भारत की एक भी कलाकृति नहीं थी। भारत जैसे देश का कलात्मक प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र संघ के भवन में न होना, हमारी सरकार के सोचने का विषय है। न जाने हमारे प्रतिनिधियों को यह वात अखरती क्यों नहीं और इस पहलू की तरफ अभी तक उनका ध्यान क्यों नहीं गया ? अव तक हमारी ओर से वहां सैकड़ों प्रतिनिधि आ चुके हैं। यहां पर नीचे के तल्ले में एक ओर विभिन्न देशों की सौगातें विकती हैं। जापान इस वात में सवसे आगे नजर आया, लेकिन सौगातों में भारत की कोई लोकप्रिय वस्तु मैंने वहां नहीं देखी। इन सौगातों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के ध्वज या भवन का अंकन होता है।

न्यूयार्क का नवीनतम आकर्षण लिंकन सेण्टर है, जहां ऑपेरा-हाउस, वैले सेण्टर और थियेटर व सिम्फोनी के लिए अलग अलग इमारतें वनाई गई हैं और संगीत शिक्षा के लिए जुलियार्ड के नाम पर एक स्कूल भवन तैयार हो रहा है। एक भवन संगीत, नाटक एवं नृत्य सम्बन्धी पुस्तकों के लिए है। आजकल सीजन निकल चुका है अतः यहां कोई प्रदर्शन तो नहीं होते, लेकिन रिहर्सल वरावर होते रहते हैं, जिन्हें मैं देख सका। सीजन में दो महीने पहिले ही इन प्रदर्शनों के टिकिट बिक जाते हैं। वैले सेण्टर की गेलरी में टेलीविजन सेट भी लगे हुए हैं, जो उन लोगों की सुविधा के लिए हैं, जो देर

से पहुंचे हों या टिकिट न खरीद सके हों— वे टेलिविजन पर भीतर होने वाले प्रदर्शनों को देख सकते हैं। ऑपेरा हाउस में एक सुविधा यह देखने में आई कि दर्शकों के आने जाने के लिए विभिन्न दरवाजों की अलग अलग चावियां हैं। जो दर्शक अपने लिए अलग चावी रखना चाहें और प्रदर्शन के वीच में आवागमन चाहें, वे दरवाजे के भीतर ही वने हुए ताले में मुद्रा डाल दें। सिक्का भीतर पहुंचते ही चावी वाहर निकलेगी। संगीत नृत्यादि के इन प्रदर्शनों में प्रवेश के लिए साढ़े तीन से पन्द्रह डालर तक के टिकिट होते हैं। जिनको यहां काफी सस्ता समझा जाता है, क्योंकि लिंकन सेण्टर व्यवसायिक आधार पर नहीं चलाया जाता, बल्कि कला को प्रोत्साहन देने के लिए जन सहयोग पर चलाया जाता है। यहां देश की उच्चतम कोटि की कला-कृतियों का प्रदर्शन होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये कृतियां विश्व की उच्चतम कोटि की कला कृतियों में गिनी जाती हैं। मुझे गाइड ने वताया कि लिंकन सेण्टर का वैले विश्व के तीन वैले प्रदर्शनों में एक गिना जाता है। अन्य दो वड़ी कृतियां सोवियत रूस और नीदरलेण्ड की मानी जाती हैं। लिंकन सेण्टर पूर्णतः जन सहयोग के द्वारा वनाया गया है, जिसके घेरे में साढ़े चौदह एकड़ जमीन है और कोई टुकड़ा खाली नहीं है। इसके लिए सैकड़ों लोगों ने चन्दा दिया है, जिनमें सबसे ज्यादा फोर्ड मोटर कम्पनी का है और वह ढाई करोड़ डालर है।

रेडियो सिटी म्यूजिक हाल एवं रॉकीफेलर प्लाजा शहर के बीचोंवीच वड़े आकर्षण के केन्द्र है। रेडियो सिटी हाल में सिनेमा, थियेटर, साज, संगीत, गायन, नृत्यादि सभी तरह के प्रदर्शनों की व्यवस्था है। इस हाल की विशेपता इसकी विशालता है, जिसमें छः हजार दर्शकों के वैठने की व्यवस्था है। इस तरह न्यूयार्क में एक से एक हैरतअंगेज चीजें देखने को मिलती हैं।

लेकिन एक वात मेरी समझ में विल्कुल ही नहीं आई कि अमरीका में विजली की तेज रोशनी के नीचे अंधेरा क्यों है? हर

बड़े शहर में भिखमंगे मौजूद हैं। भारत में तो हम इसलिए परेशान हैं कि कहीं भिखमंगों की भीड़ से विदेशी मेहमान परेशान न हो जाय। भिखमंगी का कारण भी देश-व्यापी गरीबी कहा जा सकता है, लेकिन न्यूयार्क और वाशिंगटन के पास इसकी कोई सफाई नहीं हो सकती। मैंने बहुत सुना है कि बेरोजगार को घर बैठे वेतन दिया जाता है। मैंने बहुत सुना है कि बड़ी उम्र के लोगों के लिए अलग से मकान बने हुए हैं जहां उन्हें सारी सुविधाएं मिलती हैं। मैंने बहुत सुना है कि अमरीका में अवसर की समानता है लेकिन यह भिखमंगी क्यों? रास्ते चलते ही आपके कान के पास मुंह लगाकर कोई घिघियाने लगता है और बस के लिए किराया मांग बैठता है। कोई कॉफी का प्याला चाहता है और किसी किसी को जो मिल जाय वही बहुत है। इन भिखमंगों में काले भी हैं, गोरे भी हैं, जवान छोकरे-छोकरी भी हैं और अधेड़ व बूढ़े भी हैं। न्यूयार्क में भारत सरकार के ब़जट से ज्यादा बड़े बजट वाला कारपोरेशन, फोर्ड फाउण्डेशन, वाल स्ट्रीट, एम्पायर स्टेट बिल्डिंग, संयुक्त राष्ट्र संघ कार्यालय, रॉकीफेलर सेण्टर, न्यूयार्क टाइम्स और सब कुछ हैं, लेकिन उन्हीं की छाया में भिखमंगे भी पल रहे हैं। पता नहीं किसी अमरीकी को यह बात खलती भी क्यों नहीं? इस तरफ मैंने किसी अमरीकी समाज-सेवी, धन कुबेर, राजनीतिक नेता और अखबारों का ध्यान भी जाते हुए नहीं देखा। मंगलवार चौदह मई की ही बात है। मैं सतावनवीं स्ट्रीट पर विदेश विभाग के स्वागत केन्द्र में अपने आगामी कार्यक्रम की बात करने जा रहा था। एक गोरा जवान पट्ठा मेरे पास फुटपाथ पर आया। कुछ पैसा चाहता था। क्वार्टर, डायम, निकल कुछ भी, अर्थात् पच्चीस, दस, पांच सेण्ट। मैंने उसे एक क्वार्टर दे तो दिया लेकिन उसके जाते ही न्यूयार्क शहर ही मुझे भूतों की बस्ती जैसा लगने लगा।

— २३ मई, १९६८
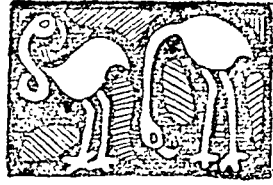
स्वयं सेविकाएं : पर-दुख-कातर

वोस्टन, करीव पन्द्रह लाख की आवादी का औद्योगिक एवं ऐतिहासिक अमरीकी नगर। विश्व विख्यात शैक्षणिक संस्थाओं का केन्द्र। नये और पुराने का संगम। न्यूयार्क से अमरीकन एयरवेज के विमान से उतर कर होटल में पहुंचते ही एक पत्र मेरे नाम पर लिखा हुआ मिला है, जिसमें मेरे दो दिन का पूरा कार्यक्रम, जैसा मैंने चाहा, वैसा ही तैयार मिलता है। भारत के प्रसिद्ध पत्रकार व संसद सदस्य वावूराव पटेल ने पत्नी की भानजी से मिलकर आने को कहा था। वह वोस्टन से करीव पचास मील दूर वूर्स्टर [वूर्चेस्टर का अमरीकी उच्चारण] में रसायन शास्त्र में उच्चतर अध्ययन कर रही है। उनको भी पहिले ही सूचना दे दी गई है। वूर्स्टर पहुंचने का साधन व समय सव कुछ निर्धारित है। वहां पहुंचने पर और क्या करना होगा, किस से मिलना होगा, कहां खाना होगा और कहां जाना होगा, वह भी निर्धारित। अन्य सभी शहरों में भी ऐसा हुआ था, और पूर्णतः सरकारी अफसरों के माध्यम से।

बोस्टन में मेरे सामने अमरीकी सामाजिक-जीवन का एक नया ही पहलू सामने आया। कार्यक्रम का जिम्मा लिया एक गैर सरकारी संस्था ने। मैं सरकारी अतिथि था और बेशक सरकारी सूत्रों ने ही गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम को अपनाया था, लेकिन गैर सरकारी सस्थायें इस तरह का काम पूरी जिम्मेदारी से करती हैं और सरकारी कार्यालयों से भी ज्यादा अच्छी तरह करती हैं, यह उल्लेखनीय है। निर्देशन के अनुसार मेरे पास सवेरे ही संस्था की एक महिला का टेलीफोन आया, जिसके द्वारा मेरे आगमन एवं कार्यक्रम की पुष्टि की गई। मैं नौ बज कर पैंतालीस मिनट पर रवाना होकर बस से ग्यारह बजे वूर्स्टर पहुंच गया। बस के अड्डे पर ही वूर्स्टर की एक 'स्वयं सेविका' मोटर लिए मुझे लिवाने को तैयार मिली। स्वयं-सेविका नामक परिचित पात्र से अमरीका में मेरा पहली मुलाकात थी। भारत में मैंने शान्ति सेना के स्वयं-सेवकों व स्वयं-सेविकाओं को देखा और यह भी देखा था कि उनको कई बार विवादों का सामना करना पड़ता है, लेकिन अमरीका में स्वैच्छिक सेवा का रूप अभी देखा। उक्त महिला के साथ परिचय करने पर, मोटर रवाना होते ही मैंने जानकारी करली कि वे वूर्स्टर के एक वरिष्ठ डॉक्टर की पत्नी थीं। डॉक्टर मिलर जब अपनी नौकरी पर होते हैं, तब वे सामाजिक कार्यों में ही अपना समय लगाती हैं। कभी विदेशी अतिथियों को शहर घुमाना, कभी अस्पताल में तो कभी स्कूल में अपना समय विभिन्न कामों में लगाना उनका सेवा कार्य है। स्कूलों में वे विदेशियों को अंग्रेजी पढ़ाती हैं। मुझे बारह बजे रोटरी क्लब के लंच पर जाना था और बाद में वूर्स्टर के एकमात्र दैनिक पत्र के कार्यालय में पूरा समय लगाना था, अतः एक घण्टे के समय में उन्होंने मुझे पूरा शहर दिखा दिया और यह भी बता दिया कि शहर में हाउस ऑफ इंडिया नाम की एक भारतीय वस्तुओं की दुकान भी है। मोटर में घुमाते - घुमाते ही उन्होंने यह भी बताया कि वे भारत भ्रमण कर चुकी हैं; लेकिन जयपुर तक न जाने का उन्हें आज तक

खेद है। उन्होंने अपना अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि केन्द्र भी दिखाया, जिसके माध्यम से वे काम करती हैं। ठीक वारह वजे वे रोटरी क्लव की बैठक में मुझे अपने पति डॉ. मिलर के हवाले कर गईं। इस वीच रामायण के कुछ प्रसंग भी सुना कर वता गईं कि भारत के इतिहास में उनकी गहरी रुचि है। काश ! वे जानने का अवसर पा सकतीं।

इसी तरह शाम को पीटर्सन दम्पत्ति के घर पर उक्त संस्थान ने वावूराव पटेल की रिश्तेदार छात्रा गीताराव को बुलवा दिया। दूसरे दिन वोस्टन में भी कार्यक्रम के अनुसार ठीक साढ़े नौ वजे श्रीमती रेन अपनी कार लिए मेरे होटल पर आ पहुंची। एक वजे तक उन्होंने मुझे वोस्टन शहर का पूरा दौरा करा दिया। उनके पति 'वेंकिग' का कारोवार करते हैं। पुत्र-पुत्री अपना अपना घर वसा कर अलग रहते हैं। वे दिन के समय सामाजिक कामों में लगी रहती हैं। उन्होंने मुझे वताया कि उन्होंने भी डिपार्टमेंटल स्टोरों में काम करने की शिक्षा जरूर पाई थी, लेकिन जरूरत महसूस न होने के कारण वहां काम नहीं करती हैं और सामाजिक कामों में अपना समय लगाती हैं। मैंने पूछा कि वे अस्पतालों में क्या काम करती हैं, तो उन्होंने वताया कि दवा लेने या डाक्टरों से सलाह लेने के लिए जाने वाले मरीजों की मदद करती हैं या उनके बच्चों की देखभाल करती हैं। उन्होंने मुझे वोस्टन की मुख्य-मुख्य संस्थाओं, विश्वविद्यालय, वाजार, संग्रहालय आदि दिखलाये और वे इलाके भी दिखलाये जिन्हें गन्दी वस्ती या गरीवों की वस्ती कहा जाता है।

शनिवार, अठारह मई को मैं बोस्टन से उड़कर वफेलो पहुंचा। करीव डेढ़ वज गया, होटल के कमरे में जाने तक। उसी तरह का पत्र और सारा व्योरा। तीन वजे मिसेज पोटर अपनी कार लेकर होटल पर पहुंच गईं। वरसात हो रही थी। प्रारम्भिक आदान-प्रदान के वाद उनके साथ हो लिया। विधवा हैं। वाल-वच्चे अपने अपने रास्ते लगे हुए हैं। पतिदेव काफी संपत्ति छोड़ गये हैं, अतः

जीवन निर्वाह की कोई चिन्ता नहीं है। तीन बजे से छह बजे तक बफेलो का पूरा भूगोल समझाया। एक कला प्रदर्शनी दिखलाई जिसमें अमरीका की चुनी हुई आधुनिक कृतियां रखी गई थीं और सचमुच ही लाजवाब थीं। छह बजे मुझे होटल में छोड़ गईं और सवा सात बजे फिर लिवाने आईं। अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र में जापानी भोज था। जापानी महिलाओं ने, जापानी भोजन बनाया और जापानी तरीके से [लकड़ी की तीलियों से] खिलाया। दस बजे मिसेज पोटर मुझे वापिस होटल हिल्टन में छोड़ कर दूसरे मुझे दिन न्यागरा प्रपात ले जाने का कार्यक्रम बता गईं।

मैं जापानी भोज से लौटकर लिखने बैठा हूं, केवल स्वयं-सेवकों की इस संस्था पर। इसलिए मैंने बोस्टन, वूर्स्टर और बफेलो में देखी-सुनी दूसरी बातों का कोई जिक्र इस लेख में नहीं किया। विदेशों में अमरीकी मिशनरी और शान्ति सेना के स्वयं-सेवक विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। अपने देश में वे महिलाएं, जिन्हें बाल बच्चों की और खाने-कमाने की चिन्ता नहीं है या जरूरत नहीं हैं, स्वेच्छा से सामाजिक कार्य में जुटी रहती हैं। यह अमरीकी समाज की एक संस्था है, जो इस समाज के यश और बल को बढ़ाती है। मैंने अपने देश में शान्ति सेना के स्वयं-सेवकों और ईसाई मिशनरियों की आलोचना तो बहुत सुनी है, लेकिन देशवासियों को इस तरह निजी स्वार्थ या आराम को छोड़ कर काम करते कम ही देखा है। वाशिंगटन में मुझे केरल के युवक मिल गए। उन्होंने ही नेशनल प्रेस क्लब के लंच में मुझे पकड़ा। रात को दस बजे तक मेरे होटल में पहुंचने की बाट देखते रहे और एक बजे रात तक मेरे साथ रहे, चार साल से अमरीका में हैं। पहिले पत्रकारिता सीखी और अब यू. पी. आई. में काम कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि उनके साथ ही मकान में शान्ति सेना के दो स्वयं सेवक भी रहते हैं, जो दक्षिणी अमरीका से लौट कर आये हुए हैं। उन्हें रात दिन वापिस जाने की धुन सवार रहती है, क्योंकि जो काम

उन्होंने हाथ में ले रखा है, वह अधूरा पड़ा है। वे कृषि क्षेत्र में काम कर रहे हैं और छुट्टी में आये हैं। मेरे कहने का अर्थ यही है कि समाज की असली शक्ति क्या है। माना कि धन दौलत अपने आप में बहुत बड़ी चीज है, नियामत है, लेकिन धन दौलत के जरिये इन्सान ऐशो-आराम भी तो करके अपनी जिन्दगी पूरी कर सकता है। यह कष्ट क्यों उठाये? अमरीका में दुनिया भर के युवक आकर काम धन्धा करते हैं और धन कमाते हैं। अमरीकी युवक जो शान्ति सेना में भर्ती होकर अन्य देशों में जाते हैं, कठिन जीवन [अमरीकी जीवन के मुकाबले में] बिताते हैं, वे भी तो स्वदेश में रहकर कमा सकते हैं?

वे अधेड़ महिलाएं जो स्वयं-सेविका बनकर काम करती फिरती हैं, घर बैठे आराम भी तो कर सकती हैं। वे ईसाई मिशनरी जो आदिवासियों में रोगियों और पशुतुल्य लोगों में जाकर कठोर कार्य करते हैं, गृहस्थ भी बन सकते हैं, लेकिन नहीं। उनको अपने देश धर्म, जाति व समाज का काम करने की धुन है। वे इसे ज्यादा महत्व देते हैं। मैं आज ही जिस कला प्रदर्शनी को देखने गया था, उसमें एक रोमांचकारी रहस्य मालूम पड़ा कि प्रदर्शनी में रखी गई भारी संख्या में प्राचीनतम कृतियां माइकेल रॉकीफेलर की जुटाई हुई हैं। और उन्हें जुटाने के दौरान में तेईस वर्षीय युवक रॉकी-फेलर ने अपनी जान दे डाली। माइकेल रॉकीफेलर न्यूयार्क के धन कुबेर गवर्नर रॉकीफेलर का पुत्र था। जो आदिम कलाकृतियों की खोज में भटकता हुआ न्यूगिनी की आदिम खूंखार जातियों में जा फंसा था। एक डच कलाकार के साथ दीर्घकाल तक फटे हालों घूमता फिरता रहा और न्यूगिनी के नर-भक्षी असभ्य लोगों की आदिम काष्ठ कला कृतियों का संग्रह करता रहा, उनके फोटो लेता रहा और एक बार एक द्वीप पार करते समय नाव उलट जाने के कारण १९६४ में डूब मरा। गर्वनर रॉकीफेलर खबर सुनते ही विशेष विमान लेकर वहां पहुंचे। उनको पुत्र का शव तो नहीं मिला,

किन्तु नाव में जो काष्ठ कृतियां इकट्ठी थीं वे इधर उधर तैरती हुई डच कलाकार की मदद से मिल गईं। यह १९६४ की बात है और उसके बाद न्यूगिनी पर हिन्देशिया का अधिकार हो गया। हिन्देशिया ने उक्त प्रकार की काष्ठ कृतियों पर बाद में पावन्दी लगा दी, क्योंकि उनका सम्बन्ध नर मुण्डों के उतार लेने की रस्म से था। आज स्व. माइकेल का चार साल पुराना वह संग्रह न्यूयार्क म्यूजियम का एक अद्वितीय आदिम कला-संग्रह माना जाता है जिसे गर्वनर रॉकी-फेलर ने भेंट कर दिया है। इस संग्रह पर आधारित एक प्रकाशन भी इसी महीने हुआ है, जिसका मूल्य तीस डालर है। बड़े बड़े विशेषज्ञों ने इस संग्रह को दुर्लभ बताया है।

माइकेल ने यह काम क्यों किया? हमारे देश के धनवानों के लड़के क्या करते हैं? अमरीका में शासन की सत्ता के अलावा वे कौन सी शक्तियां है, जिन्होंने इस समाज को इतना आगे बढ़ाया और ऊंचा उठाया, उनकी एक हल्की सी झलक इस लेख के माध्यम से मिल सकती है। लिखने का अभिप्राय भी इतना ही है कि हम भी कुछ सीख सकें—अंश दान या जीवन दान! ज्ञान-गौरव की हमारे पास भी कमी नहीं है।

— २६ मई, १९६८

फूलों से परहेज क्यों ?

वाशिंगटन के डलस हवाई अड्डे पर जब कस्टम अधिकारियों को हर यात्री से यह सवाल करते देखा कि वह फूल या फल तो नहीं लाया है, तो मुझे कुछ हैरानी सी हुई थी और मैंने अपनी हिन्दुस्तानी आदत के हिसाब से यह समझा था कि फल फूल शायद अमरीका की व्यापारिक नीति का विशेष अंग है, लेकिन बाद में पूछताछ करके मालूम किया कि फूलों और फलों के साथ छूत के कीड़े अमरीका में न आ जायें, इसी की रोकथाम के लिए कस्टम के नाके पर निगरानी रखी जाती है और यह इतनी कड़ी होती है कि फलों या सब्जियों के बीज भी अमरीका में कोई नहीं ला सकता। इसको उतना ही महत्व दिया जाता है, जितना कि यात्री के अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रमाण-पत्र को दिया जाता है। स्वास्थ्य एवं स्वच्छता अमरीकी जन जीवन का शायद सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण पक्ष हो। अगर कोई कम पढ़ा हुआ हो, कुछ

कम आमदनी वाला हो, अमरीका में उसे समान व्यवहार-वर्ताव मिल सकता है, लेकिन अगर वह गन्दा हो तो उसके उपचार के लिए समाज की बड़ी से बड़ी सुविधाएं उपलब्ध हो सकती हैं ।

स्वास्थ्य सम्बन्धी इस उन्नति पर बफेलों की उस वृद्धा की टिप्पणी मुझे याद है, जिसने दो दिन तक मुझे अपनी कार में घुमाया, अपना शहर दिखाया और न्यागरा प्रपात तक की सैर कराई । उसने अपनी एक संगिनी के जीवन के प्रसंग में ठण्डी सांस भरते हुए कहा था । 'हम वहुत जीते हैं, पता नहीं इतने वरसों तक क्यों जीते हैं' और फौरन ही मुझे ताक कर कहा 'इतने वरसों तक नहीं जीना चाहिए ?' उसकी अपनी आयु करीव सत्तर साल की थी और जिसके बारे में उसने टिप्पणी की थी, उसकी आयु कोई पिचियासी साल की थी । उसके कहने का निहित अभिप्राय यह था कि अमरीका वाले आम तौर पर वहुत लम्बी आयु वाले होते हैं । मैं इस संबंध में अपनी ओर से कोई राय नहीं देना चाहता, क्योंकि मुझे भारत के सिवाय किसी अन्य देश के स्वास्थ्य के बारे में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है और करीव करीव सभी उन्नत देश दीर्घ जीवन के बारे में अपने अपने दावे रखते हैं । मैं इन पंक्तियों में यह जरूर कहना चाहूंगा कि दैनिक जीवन में सफाई के वारे में अमरीकी लोगों का जो रवैया है, वह सचमुच अनुकरणीय है और उसके अनुकरण में कोई विचार-धारा वाधक नहीं है ।

इस देश में आये हुए तीन सप्ताह होने आये । इस बीच मैं पांच हजार की आवादी से लेकर एक करोड़ तक की आबादी के शहर में गया हूं । रेल, वस, जलयान और वायुयान पर चढ़ा हूं, होटलों में रहा, केफीटेरिया और रेस्तरां में खाया, घरों में गया, जिनको गरीवों की वस्तियां कहते हैं, उन इलाकों में भी गया, स्कूल, दफ्तर और कारखाने देखे, रेलवे स्टेशन और वस के अड्डे देखे । सड़कें और गलियां नापी । मैंने देखा कि स्वच्छता और शुद्धता का जो आदर्श एवं मापदण्ड हम अपने पुराने ग्रंथों में पढ़ते आये हैं, वे ग्रंथों में

ही रह गये और अमरीका उन्हें जीवन में उतार लाया। मेरे कहने का अर्थ यह कदापि न लगाया जाय कि दूसरे देशों में सफाई कम रहनी होगी, लेकिन मैं भारत के संदर्भ में अमरीका को देख रहा हूं और जीवन के परमावश्यक अंग [आरोग्य] का निरीक्षण कर रहा हूं। अमरीका की सफाई के कुछ नमूने और अहतियात के कुछ कायदे मैं अपने पाठकों के सामने रखना चाहूंगा। मैंने अपनी अब तक की यात्रा में खाने को कोई चीज सूखी या गीली, पकी या अनपकी, किसी दुकान या होटल में खुली रखी नहीं देखी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यहां वस्तियों की सड़कों पर कहीं धूल नजर नहीं आती और मच्छर मक्खी भिनभिनाते नहीं दिखाई देते, लेकिन अहतियात में कोई कमी नहीं रखी जायगी। खाद्य वस्तुओं सम्बन्धी नियम वहुत ही सख्त हैं। छोटे से छोटे केफीटेरिया में चाय काफी पीने के लिए जाइये, शक्कर खुली हुई नहीं मिल सकती। चाय भी एक कागज की छोटी-सी पुड़िया में वन्द होगी, प्याले में गर्म पानी के साथ डाल दी जायगी, जिसके साथ एक तागा लटका हुआ होगा और शक्कर भी या तो होटल के नाम की या कम्पनी के नाम की छपी हुई सुन्दर पुड़ियों में वन्द होगी जो काउण्टर पर एक वर्तन में पड़ी मिलेगी। एक टीन का डिव्वा, जिसमें कागज के टीश्यू लगे हुये होंगे। खाने पीने की हर चीज के साथ आपको एक टीश्यू दिया जायगा जो हाथ या मुंह पोंछने के काम आयेगा और नेपकिन की तरह आपके कपड़ों की रक्षा भी करेगा। अगर आपको कुछ ठण्डा रस पीना है, तो उसे पीने के लिए जो प्लास्टिक की नलिका दी जायगी, वह भी खुली हुई नहीं होगी। वह एक भीने कागज के पेकिंग में वन्द होगी और काउण्टर के ही एक वर्तन में रखी होगी। खाने पीने की आम जगहों पर काम करने वाले एक खास वर्दी पहिनते हैं और वहुत ही साफ रहते हैं। वे कभी खाद्य वस्तुओं को अपने हाथ से नहीं छूते।

आम रास्तों पर, दुकानों, दफ्तरों और स्टोर में, रेल्वे स्टेशन

या बस के अड्डे पर रद्दी डालने के लिए जगह जगह भारत के लेटर बॉक्सों की शक्ल के वम्बे रखे हुए मिलेंगे, लेकिन खुले हुए नहीं। रद्दी कागज वगैरह को चिट्ठी की तरह उनमें डालना होता है। अखबार और किताबें, जिन्हें पढ़ने के वाद आप घर न ले जाना चाहें, उनके लिए जगह जगह वड़े चौकोर वर्तन रखे मिलेंगे। समय समय पर सफाई विभाग की वन्द लारियां इन्हें खाली करती रहती हैं। इसी तरह रिहायशी मकानों के पिछवाड़े में हर मकान की रद्दी के लिए वड़े वड़े ढोल रखे रहते हैं। कागज की रद्दी के सिवाय दूसरी कोई चीज डालने की नौवत वहुत कम आती है। रसोई का कचरा आम तौर पर बर्तन साफ करने वाली मशीन के जरिये गला कर गटर में पहुंचा दिया जाता है। सफाई की मात्रा ज्यादा और तवालत कम करने के लिए, छूत से बचाने के लिए सार्वजनिक स्थानों में कपड़े के तौलिये कम से कम होते जा रहे हैं। या तो बटन दवाते ही तेज हवा के दबाव से आपके हाथ सुखा दिये जायेंगे या कागज के मोटे तौलिये से हाथ मुंह पौंछकर उन्हें वम्बे में डाल दीजिये। यह ऊंचे दर्जे की जगहों की बातें नहीं हैं, वल्कि आम आदमी के दैनिक जीवन की झांकी है। ऐसा भी नहीं है कि इस माप-दण्ड का अपवाद नहीं है, लेकिन यह एक आम स्तर है।

मैंने खाद्य वस्तुओं के वड़े स्टोरों को भी भीतर जाकर देखा है, जहां एक गृहस्थी की जरूरत की हर चीज एक भाव पर मिल जाती है। यह स्टोर अपने आप में एक छोटी-मोटी दुनिया होता है, लेकिन खाद्य-पदार्थों के अम्बार सामने होते हुए भी मुझे किसी पदार्थ की गन्ध नहीं आई। इन स्टोरों में दूध, दही, छाछ, मक्खन, पनीर, अचार, मुरब्बे, चटनी, सब्जी, फल, मांस, मच्छी, अण्डे, रोटी, केक, पेस्टरी, चॉकलेट, मेवे, मसाले याने सव कुछ मिलता है। जगह जगह पहियों वाली कुर्सीनुमा टोकरियां रखी रहती हैं, जिनको आप अपने साथ ले लीजिये। जिस जिस कोने से जो चीज चाहिये उठाकर इन टोकरियों में डालते जाइये। गोद में वच्चा हो तो कुर्सी

पर विठा कर साथ साथ घुमाते जाइये और अखीर में अपना विल चुकाते जाइये। इन स्टोरों में हर एक चीज प्लास्टिक की थैलियों में, टीन के डिव्बों में, कांच की वोतलों में या कागज के कार्टूनों में एयर-टाइट पैक की हुई होंगी, यहां तक कि गोभी, वेंगन, तरवूज, आलू प्याज, छाछ और दूध पैक्ड मिलेंगे, तोल में नहीं। मिलावट की इंच मात्र भी गुंजाइश नहीं और न कीमत में ऊंच नीच। ये भारत की तीनों ही विशेषताएं यहां देखने में नहीं आ सकतीं। इन चीजों को तैयार करने में सबसे ज्यादा योग मशीनों का होता है। सब्जी और फल मशीनों से तोड़े और साफ किये जाते हैं। सफाई और काट-छांट के वाद ही उन्हें वन्द किया जाता है। घर आकर आपको सब्जी धोने की जरूरत नहीं और चावल दाल वनाने की मुसीवत नहीं।

खाद्य पदार्थों के उत्पादन, वितरण आदि में व्यतिक्रम भी होते हैं, लेकिन फौरन सारे अखवार और टेलीविजन चीख पड़ते हैं। अभी टेलीविजन पर विल्ली के वरावर मोटा ताजा एक चूहा वेकरी का आटा खाता हुआ दिखलाया गया था। कहीं-कहीं नीग्रो इलाकों से या गरीवों की वस्ती से यह शिकायत आती है कि उन्हें मरे हुए मवेशी का मांस वेच दिया गया, लेकिन फौरन हाय-तोवा शुरू हो जाती है। एक शिकायत का नतीजा यह भी पाया गया कि शिकायत रंग-भेद सम्वन्धी पृष्ठभूमि में की गई थी। अमरीका में मांस का उत्पादन मशीनें करती हैं। किसी एक मवेशी का मांस, खास तौर पर वड़े शहरों में अलग से वेचना संभव नहीं। फिर भी यह वात पाई गई कि काली वस्तियों में कारोवार जहां केवल गोरों के कब्जे में है, वे वहुधा लापरवाही दिखाते हैं और कीमत भी ऊंची वसूल करते हैं। इसका खमियाजा गोरों को यह उठाना पड़ता है कि वे उसी वस्ती से अलग कहीं दूर जाकर रहते हैं। उन्हें कालों से वरावर खटका वना रहता है, अर्थात वे अपने पाप से डरते हैं और उन वस्तियों में वस नहीं सकते। सफाई के नियमों का व्यतिक्रम भी ज्यादातर काले लोगों में होता देखा गया है। किसी भी नीग्रो के लिए मोटर चलाते

चलाते सड़क पर थूक देना एक आम बात है । इस कार्य में न जाने उसके किस अवदमित अहंकार की अभिव्यक्ति होती है, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उसे अपना परिष्कार करने की वहुत जरूरत है। सड़क पर थूक कर या नाक साफ करके उसे अपनी हैसियत वढ़ाने में वहुत ज्यादा वक्त लगेगा और विद्रोह से तो वह बहुत ही दूर रह जायेगा ।

शहरों में सड़कों की सफाई मशीनें करती हैं । यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मैंने तीन सप्ताह में कोई मशीन आंख से नहीं देखी है । मैं भारत के मुकावले यहां वहुत जल्दी ही सोकर उठता हूं, और होटल से निकल कर आस पास के केफीटेरिया में चाय पीने जाया करता हूं । [होटल में चाय पीना अर्थात अपनी जेब पर नाश्ते का भार डाल देना है ।] मैंने सूरज उगने के समय तो किसी सड़क की सफाई होते नहीं देखी । सफाई का काम अन्धेरे में ही हो चुकता है । यह जानकारी भी मुझे मौखिक ही मिली है कि सफाई मशीनों से होती है ।

कपड़े धोने के लिए आम तौर पर घरों में व्यक्तिगत मशीनें होती हैं, लेकिन जो लोग मशीन नहीं खरीद सकते, उनके लिए यह सुविधा है कि वे आस पास गली की दुकानों में अपने कपड़े धो सकते हैं, सुखा सकते हैं और उस्तरी कर सकते हैं । उनको मशीन का किराया देना पड़ेगा । गरीब वस्तियों में यह सुविधा कहीं कहीं मुफ्त भी मिलती है । यही बात वर्तन साफ करने पर लागू होती है । हमारे देश की तरह यहां सड़कों पर पानी के नल कहीं नहीं दिखाई देते और पानी वहता हुआ भी नहीं । पानी की सफाई का स्तर यह है कि वगीचों में भी फिल्टर किया हुआ पानी दिया जाता है जिससे पेड़-पौधों में कीड़ा या रोग लगने की आशंका न रहे । एक घर से पानी के खर्च पर शिकागो में एक महीने का दो डालर वसूल किया जाता है । हर वंगले की एक ही दर है ।

पानी की सफाई को अमरीका में भी लन्दन की तरह नया

खतरा पैदा हो गया है, जो नई सभ्यता की देन है। नदियों का पानी कारखानों और गटरों के कारण गन्दा होता जा रहा है और इस गन्दगी से वचने के लिए अनेकानेक उद्यम एवं अनुसन्धान हो रहे हैं, वड़े शहर और उनके वड़े कारखाने ज्यादातर नदियों और भीलों के किनारों पर हैं। अमरीकी लोग नये खतरे से सचेत हो गये हैं। वोस्टन के वड़े प्रसिद्ध अखवार क्रिश्चियन साइन्स मोनीटर ने अभी १६ मई के अपने अंक में एक सम्पादकीय लिख कर सुझाव दिया है कि अमरीका के वड़े शहरों की आवादी को दूरस्थ देहाती क्षेत्रों में फैला दिया जाना चाहिये और उन्हें आवागमन की सुविधा प्रदान करने के लिए कोई विशेष व्यवस्था पर काम शुरू किया जाना चाहिये। देखना है कि शहरों का मुटापा कम होता है या वढ़ता है।

—३१ मई, १९६८

२२ जून की रात को करीव वारह वजे मैं जापान के पुराने शहर क्योटो के एक रेस्तरां से निकला कि फुट पाथ पर एक अमरीकी लड़के को खड़े देखा। उम्र होगी पंद्रह या सोलह साल। मैंने यों ही पूछ लिया कि वह वहां क्यों खड़ा है। लड़के ने वताया कि वह खड़ा खड़ा रेस्तरां के भीतर की हल-चल को देख रहा है, क्योंकि क्योटो में ज्यादातर रेस्तरां व नाइट क्लव निचली मंजिल पर ही हैं। मकान भी ज्यादातर दुमंजिले हैं। वह केलीफोर्निया राज्य के सान-फ्रान्सिस्को का रहने वाला था।

मैंने कौतूहल से फिर पूछा कि वह वाहर से खड़ा खड़ा क्या देख सका। इस वार उस लड़के ने सीधा जवाव नहीं दिया वल्कि दार्शनिकता का पुट दे दिया। वोला— 'वैसे तो कुछ भी नहीं। मैं अपने आपको ही देख रहा हूं। यहां मुझे कोई देखने वाला नहीं है।' एक अमरीकी लड़के के मुंह से यह जवाव सुन कर मैं विस्मित रह गया। मैं भी अपने आपसे पूछने लगा—कहां से मिली इस दुध-मुंहे लड़के को यह भाषा और कहां से आ गया उसमें दार्शनिकता का पुट?

समस्या कालों की नहीं गोरों की है

अमरीका का गरीब और काला आदमी निरंतर इतिहास से सबक ले रहा है और युग के तकाजे को अच्छी तरह समझ रहा है, इसलिए मैंने अपने एक पिछले लेख में यह संकेत भी दिया था कि अमरीका अपनी इस समस्या को हल कर लेगा; हो सकता है कुछ समय और लगे। मैं प्रस्तुत लेख में आपके सामने कुछ तथ्य रखना चाहता हूं, जिन्हें पढ़ कर आप स्वयं निर्णय करें कि मेरे कहने में कुछ सचाई है या नहीं। अमरीकी गरीब काले के पक्ष में सबसे बड़ा बल यह है कि उसने खुद अपने उद्धार के संकल्प का बीड़ा उठा लिया है और सम्पन्न गोरा समाज इस तथ्य से भली भांति अवगत हो चुका है। अमरीका का प्रसिद्ध लेखक जेम्स वाल्डविन [नीग्रो] ढोल बजा बजा कर कह रहा है कि इस देश में कालों की या गरीबों की कोई समस्या नहीं हैं, यदि कोई समस्या है तो वह गोरों की हैं।

इस नाटकीय ढंग से अपनी बात कह कर बाल्डविन अपनी कहानी का विस्तार करते हुए कहता है कि अमरीका में कालों को कौन लाया, उन्हें गुलाम किसने रखा, किसने उन्हें बेचा, फिर किसने उनको आजादी दे दी और अब कौन यह दावा करता है कि इस देश में सबको अवसर की समानता है ? इन सवालों की झड़ी लगा-कर लेखक कहता है—'यह सब गोरों का किया हुआ है और यह गोरों का ही सिर दर्द है कि अपनी कथनी को करनी करके दिखावें। हमारा क्या है, हम तो उठा कर ढेला मारेंगे—जिसको अपनी कांच की खिड़कियों को या खोपड़ी को बचाना हो वह बचावे। हम कहां घाटे में हैं।' एक प्रसिद्ध विद्यार्थी नेता कारमाइकेल कहता है—'ये ऊंचे ऊंचे महल हमारे बनाये हुए हैं और एक दिन हमीं उनमें आग लगा देंगे। एक दिन हम बन्दूकें तान कर खड़े हो जायेंगे और हमारी सारी बकाया वसूल कर लेंगे।' गांधीवादी नेता और दक्षिण ईसाई सम्मेलन के नेता व स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग के उत्तराधिकारी रेवरेन्ड एबर्नाती कहते हैं—हम अमरीका के नागरिक हैं। यह देश हमें प्यारा है। हम इस देश के लिए जिये और मर रहे हैं। हमें हक है कि हम खुशहाल रहें। हमें उम्मीद है कि इस बार कांग्रेस हमारी मांग को अनसुनी नहीं करेगी, वरना हम अपना धरना दिये बैठे हैं। अगर धरना सफल नहीं हुआ तो और कुछ करेंगे' [२६. ५. ६८ का टेलीविजन ब्राडकास्ट] इसी दिन केलीफोर्निया के रिपब्लिकन गवर्नर रेगन ने नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी के एक प्रेस इन्टरव्यू में बताया कि वियत-नाम युद्ध में होने वाले खर्च को गरीबों की हालत सुधारने में लगाया जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अम-रीका में कालों या गरीबों की आवाज में आज कितना फर्क आ गया है कि वह हर तरह से निपटने को तैयार है। यह लोग राजनैतिक दृष्टि से भी जागरूक हैं और राजनैतिक सत्ता का पूरा पूरा लाभ उठाने की युक्ति से चल रहे हैं। सीनेटर रॉबर्ट केनेडी ने मार्टिन लूथर किंग की

हत्या के बाद उनके शव को लाने के लिए एक विशेष विमान भेज दिया था, जिसका ऋण उतारने के लिए कालों ने अब तक प्राइमरी चुनावों में सबसे अधिक वोट केनेडी को दिये हैं। सीनेटर केनेडी उनकी हिमायत भी कर रहे हैं। हो सकता है यह चुनाव की हवा का असर हो, लेकिन नीग्रो मतदाता इस हवा का पूरा पूरा लाभ उठाना चाहते हैं और योजनाबद्ध रूप से। इधर तीन हजार गरीबों ने अपना डेरा वाशिंगटन में लिंकन मन्दिर के पास डाल रखा है। एक बार जोर की बरसात हो जाने के बावजूद उन्होंने पैर नहीं छोड़े। उनकी बस्ती में पिंडली तक गहरा पानी भर गया।

धरने के अलावा आजकल जगह जगह नीग्रो अपने अधिकार के लिए लड़ने मरने को तैयार रहते हैं। इन दिनों कई घटनायें अश्रु गैस व गोली चलने की हो चुकी हैं। एक नीग्रो पेन्थर [शेर] के पुलिस की गोली से मर जाने पर नीग्रो लोगों ने जबर्दस्त विवाद खड़ा कर दिया और पुलिस पर जान बूझ कर हत्या करने का कलह शुरू कर दिया था। अभी इसी सप्ताह शिकागो से करीब तीस मील दूर गेरी शहर में कालों ने वहां के दैनिक अखबार 'गेरी पोस्ट' का बहिष्कार कर दिया। इस शहर में अमरिकन स्टील कम्पनी नामक इस्पात का बहुत बड़ा कारखाना है और गोरों का बहुमत है। शहर की नगर-पालिका में नीग्रो मेयर है। गेरी पोस्ट पर कालों का यह आरोप है कि वह उनके समाचारों को ठीक तरह नहीं छापता। गेरी पोस्ट के प्रकाशक ने अपने सम्पादकीय विभाग की बैठक में कालों की शिकायत को सही नहीं बताया और कहा कि समाचारों का प्रकाशन ठीक ढंग से हो रहा है। बहिष्कार अभी जारी है और काले झुकने को तैयार नहीं हैं। कुछ दिन पहिले मिलवाकी में कालों ने गोरे दुकानदारों का बहिष्कार किया था और वे अपने बहिष्कार में सफल हुए।

शिकागो में पिछले कुछ महीनों से कालों ने कारखानों और बाजारों के बहिष्कार की धमकी दी है और अपना एक क्रय-कार्यक्रम

भी वना लिया, जिसका नतीजा यह निकला कि करीव तीन हजार नये नीग्रो लोगों को गोरों ने काम पर लगाया। नीग्रो यह जानता है कि अमरीकी वनिये की जान धन में हैं। वह कुछ भी सहन कर सकता है, लेकिन आर्थिक हानि उसे वर्दाश्त नहीं। करीव पांच साल पहिले नीग्रो लोगों ने अटलाण्टा में एक वस कम्पनी का वहिष्कार कर दिया था, जिसके फलस्वरूप कम्पनी का दिवाला पिट गया। कारण यह था कि कम्पनी की वसों में गोरों के साथ काले नहीं वैठ सकते थे। उन्हें वैठने के लिए अलग सीटें वतादी जाती थीं। वहिष्कार के वाद यह भेद-भाव समाप्त हो गया।

मार्टिन लूथर किंग की हत्या के वाद अमरीकी शहरों में अपराधों की भी वृद्धि हुई है। लूटपाट या मार-पीट एक आम वात हो चुकी है और कालों की वस्ती में गोरों का अकेले फिरना ठीक नहीं समझा जाता। नीग्रो आज हर तरह का दवाव डालने पर आमादा हैं। गोरे भी यह मानने लगे हैं कि कालों के साथ उन्होंने वरसों और सदियों तक ठीक वर्ताव नहीं किया। कुछ भी हो, कालों को गोरों के आश्वासनों पर इतना भरोसा नहीं रहा है जितना कि अपनी ताकत पर होता जा रहा है। एक वस में चन्द मिनटों की मुलाकात और चार-पांच मिनट की वातचीत में मुझे एक काले युवक ने वताया कि वह वातों में विश्वास नहीं करता, काम होते देखना चाहता है। मेरे उतरने का स्थान आते आते उसने जेव ने निकालकर एक वॉल-पेन भेंट कर दिया जो मेरे पास रखा हुआ है। इस पेन पर स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग का चित्र छपा है।

तात्कालिक कार्यवाही के अलावा नीग्रो लोग दीर्घ-सूत्रीय योजना पर भी चल रहे हैं। आजकल अमरीका के सभी वड़े शहरों में भी नीग्रो संख्या वढ़ती जा रही है और यह उद्देश्य लेकर वढ़ रही है कि शहर में कालों का वहुमत वने या मुकावले की जन-शक्ति जमा हो जाय। वे ज्यादातर एक ही जगह रहते हैं। उन्हें एकीकरण का नारा पसन्द नहीं है अतः अलग ही रहना पसन्द करते हैं।

उग्रपन्थी नेताओं का कहना है कि काले की रुचि गोरों के साथ मिल जाने में कतई नहीं है, बल्कि वह काला ही रह कर राजनीति व अर्थतन्त्र में अपना अधिकार प्राप्त करना चाहता है। अमरीकी 'उपद्रव आयोग' की रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि जिस तेजी से शहरों में नीग्रो जनसंख्या बढ़ती जा रही है, १९८५ में वह सवा करोड़ से बढ़ कर दो करोड़ हो जायेगी। जो कुल कालों की संख्या का बहत्तर प्रतिशत होगी [केवल शहरों में]। इसके मुकाबले गोरों की तादाद बहुत कम बढ़ेगी। आयोग का कहना है कि १९८५ तक अमरीका के तेरह बड़े शहरों में नीग्रो या तो बहुमत बना लेंगे या बराबरी में आ जायेंगे।

कालों के पक्ष में एक परिवर्तन यह भी आ रहा है कि उत्तर अमरीका में मजदूरी की दरें असहनीय हो गई हैं, इसलिए धीरे धीरे कारखाने दक्षिण की ओर जा रहे हैं। दक्षिण में कालों का ज्यादा जमाव है और उन्हीं की भर्ती नये कारखानों में होगी। जो लोग दक्षिण में बेकार या अर्ध बेकार बैठे हैं, उन्हें रोजगार भी मिलेगा और संगठित उद्योग भी। नीग्रो लोग फिलहाल सस्ती दरों पर काम करने को तैयार होंगे। क्योंकि उनको अपनी स्थिति मजबूत करनी है। सस्ती दर का मतलब एक घण्टे की मजदूरी एक डालर और साठ सेण्ट होती है, जो संघीय कानून के अन्तर्गत निर्धारित है, लेकिन उत्तर अमरीका में इस दर पर मजदूर नहीं मिलते। यहां आठ घण्टे काम का दिन होता है और सप्ताह में पांच ही दिन काम करना पड़ता है।

इधर नीग्रो लोगों ने शिक्षा पर भी ध्यान दिया है। बड़े शहरों की कुछ सार्वजनिक स्कूलों में इन दिनों इनका बहुमत भी है। सार्वजनिक स्कूल नगरपालिकाएं चलाती हैं, लेकिन उनका स्तर बहुत ऊंचा होता है, हमारे पब्लिक स्कूल के समान।

शिक्षा में उन्नति करने के बाद नीग्रो युवक युवतियों को काम मिलने की गुंजाइश भी बढ़ेगी और काम के लिए लड़ने की उनकी

क्षमता भी। कई राज्यों में इस समय मतदाताओं को परीक्षाएं देनी पड़ती हैं, जिसका उद्देश्य वयस्क मताधिकार से नीग्रो या अनपढ़ लोगों को वंचित रखने का है। शिक्षा प्राप्त करने के बाद नीग्रो अपने मताधिकार का भी उपयोग करने से वंचित नहीं रह सकेंगे। मतदाताओं की परीक्षा कई बार बड़ी कड़ी होती है जिसमें गोरे भी असफल रह जाते हैं। अमरीका में चुनाव कानून में एक-रूपता नहीं है, क्योंकि यह राज्यों का विषय है और हर राज्य अपनी सुविधानुसार कानून बनाता है। इन दिनों संघीय सरकार ने कुछ अधिकार अपने हाथ में लिए हैं। मैंने कई लोगों को बताया कि भारत के चुनाव कानून में सबको मतदान का समान अवसर व अधिकार है और उसमें एकरूपता है, इसलिए राज्यों में भेद करना सम्भव नहीं है। भारत के चुनाव में अनियमितता अथवा कानून के दुरुपयोग की शिकायतें जरूर सुनी हैं, लेकिन अमरीका जैसे उन्नत व सुदृढ़ लोकतन्त्र भी इस बुराई से बरी नहीं हैं। गेरी में जब नीग्रो मेयर चुन जाने की सम्भावनाएं बढ़ीं, तो गोरों ने झूठे वोट डालने की भी कोशिश की, जिसका भण्डाफोड़ हो जाने पर तुरन्त कार्यवाही की गई।

मैं शिकागो के नीग्रो इलाके में भी गया। उनकी बस्ती के भीतरी भागों में भी गया। मेरे भारतीय मेजबानों को जब यह पता चला तो कुछ चिन्तित भी हुए। उन्होंने बताया कि मैंने यह ठीक काम नहीं किया। उन्होंने बताया कि मैं जिस इलाके [सेंतालीसवीं स्ट्रीट–एल] में चला गया था, उसमें कई भारतवासियों की पिटाई हो चुकी है। नीग्रो लोग आज कल किसी का लिहाज नहीं रखते। उनकी यह चिंता ठीक थी क्योंकि इस स्थिति का भान मुझे वाशिंगटन में भी हो चुका था और शिकागो में भी हुआ, लेकिन मैंने यहां दूसरी युक्ति से काम लिया, जिससे मुझे बड़ा लाभ हुआ। भूमिगत रेलवे से मैं डाउन टाउन [केन्द्रीय शहर] से चढ़ा तो ट्रेन में ही कई नीग्रो यात्रियों से जान पहिचान करली और उनको बताया कि मैं उनकी

हालत को देखने के लिए आया हूं। मैंने उन्हें यह भी बताया कि मैं अमरीकी सरकार का मेहमान हूं लेकिन मुझे यह सलाह दी गई है कि मैं अच्छी तरह घूम फिर कर अमरीकी जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं को देखूं। मेरे नीग्रो सहयात्रियों पर इस बात का शायद ठीक असर पड़ा। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि इस ट्रेन में गोरा चेहरा मुझे सिर्फ एक ही दिखाई पड़ा। सभी स्त्री पुरुष यात्री नीग्रो थे। ट्रेन को देखकर भी मैं अंदाजा लगा सकता था कि गोरों के लिए सेंतालीसवीं स्ट्रीट के आस पास के इलाके में घूमना फिरना खतरे से खाली नहीं था। सेंतालीसवीं स्ट्रीट पर मैं ट्रेन से उतर गया और कालों के साथ ही एक कॉफी की दूकान में घुस गया। उसके बाद बस्ती में घूमा। कहना न होगा कि अमरीका की आम बस्तियों के मुकाबले यह बस्ती खस्ता हालत में थी।

ऐसी बस्तियों को यहां घेटो कहा जाता है। भारत के माप-दण्ड से या जयपुर के माप दण्ड से वे भी बहुत ऊंचे स्तर की थीं। चार-पांच मंजिले मकान लेकिन एक परिवार के रहने के लिए जो अपार्टमेण्ट होता है, उसमें कई कई लोग रहते हैं। इन मकानों को भी गर्म रखने के लिए गैस पाइप व हीटर लगे हुए हैं: मकान के नीचे कुछ कारें भी खड़ी मिलेंगी, लेकिन ज्यादातर बहुत पुरानी और खस्ता हालत में। कई मकानों में टेलीविजन हैं, लेकिन रहने वालों की हालत पतली है। हम लोग भारत में भी कई गांव वालों के पास ट्रांजिस्टर देख सकते हैं। मैंने दिल्ली में दरियागंज में एक पालिश वाले के पास ट्रांजिस्टर देखा था, शानदार जापानी ट्रांजि-स्टर, लेकिन वह इस बात की निशानी नहीं था कि उसकी हालत या रहन सहन का स्तर अच्छा है। घेटो में रहने वालों पर भी यही बात लागू होती है। उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति जरूर हो जाती है। वे काम करें तो भी और काम न करें तो भी सरकार उन्हें न्यूनतम भत्ता दे देती है, लेकिन जो लोग काम धन्धा करते हैं, वे मजदूर स्तर से ऊपर नहीं उठ पाते, क्योंकि रोजगार के बावजूद

उनके लिए अवसरों की बड़ी कमी है। कई नीग्रो अच्छे खाते-पीते धनी भी हैं, जैसे कि हमारे देश में ऊन और चमड़े का कारोबार करने वाले खटीक और रेगर हैं, लेकिन उनको गोरों की बस्तियों में मकान न मिलना एक बड़ी समस्या है। वे खरीदना चाहें तो भी नहीं खरीद सकते। गोरे नेता जब एकीकरण की बात करते हैं, तो वह समाज के ऊपरी स्तर पर ही रह जाती है, धरातल पर नहीं उतरती। यही कारण है कि उग्र पन्थी नीग्रो नेता ब्लेक पॉवर—जिसे मैं काली माई कहता हूं—का नारा देते हैं। वे कहते हैं कि हम काले ही रह कर अपना बराबरी का हक लेना चाहते हैं।

जिस तरह नीग्रो समाज में नर्म और गर्म दल बने हुए हैं, उसी तरह गोरों में भी दो विचार-धाराएं आज कल चल रही हैं। 'टाइम' और 'लुक' पत्रिकाएं इस नये दौर का प्रतिनिधित्व करती हैं। नई विचारधारा यह है कि कालों की मदद करने का भ्रम हमें छोड़ देना चाहिए। दूसरी तरफ पुरानी विचार-धारा के लोग हैं जो बहुमत में हैं, इनका कहना है कि कालों को रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा, आवास आदि सुविधाएं दी जानी चाहिए। इस वर्ग के नेता ज्यादातर पादरी और समाज-सुधारक हैं। नर्म दल वाले नीग्रो लोगों में बहुत से ऐसे हैं जो मदद नहीं चाहते, बल्कि अवसर चाहते हैं। वे दान पर जिन्दा रहना ठीक नहीं समझते, लेकिन दान को ग्रहण भी करते हैं। दान का अर्थ उस दान से है जो अमरीका में हर बेरोजगार, अपाहिज, निरीह या वृद्ध को सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त होता है।

इसमें काले गोरे का भेद नहीं होता। मुझसे कई गोरों ने भी यह शिकायत की है कि सामाजिक सुरक्षा वाली निधि का गलत प्रभाव भी पड़ता देखा गया है। शिकागो का एक वृद्ध केवल मदिरापान की अधिकता के कारण चल बसा, जो कुछ उसे सरकार से मिलता था, उसका अधिकांश भाग वह मदिरापान में उड़ा देता था। इसी

तरह कई युवक सामाजिक सुरक्षा निधि के सहारे मोज करने लगते हैं और प्रमादी हो जाते हैं। लेकिन यहां सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। जो कोई अपने आपको बेरोजगार कहता है, उसे काम करने के लिए भी बाध्य नहीं किया जा सकता। इस तरह कोई भी छः महीने का समय सरकारी रकम के सहारे विता सकता है। रकम की मात्रा उसके पुराने रोजगार की मात्रा के अनुसार तय की जाती हैं या न्यूनतम मजदूरी की दर पर। कुछ भी हो, यह रकम अच्छी खासी होती है, जिस पर एक आदमी मजे में जीवन बिता सकता है।

काले-गोरे या गरीबी की समस्या को समझने का मेरा यह दूसरा प्रयास है। मैं समझता हूं कि पाठकों को मोटे तौर पर इस समस्या की कुछ जानकारी हुई होगी। मेरे पास समय और स्थान का अभाव है वरना कुछ ज्यादा भी लिख सकता था। फिर भी मैंने यह कोशिश की है कि जितना बन पड़े जानकारी करूं और अपने पाठकों तक पहुंचाऊं। मुझे सरकार की ओर से भी यह प्रेरणा दी गई है कि खुलासा तौर पर अमरीका को देखूं और उस पर चर्चा करूं। अमरीका के सरकारी और गैर सरकारी सभी क्षेत्रों में मैंने यह जरूर देखा है कि वे साफ साफ दो टूक वात करना पसन्द करते हैं। स्वभावगत वाधा हो तो बात दूसरी है। मैंने इस समस्या पर भी वहुत लोगों से वात की है। और सभी यह मानते हैं कि कालों के साथ गोरों ने अमरीका में अच्छा वर्ताव नहीं किया। एक अस्सी वर्ष की बुढ़िया ने भी यह बात मंजूर की और कहा कि इस पाप का प्रायश्चित होना चाहिये। मैं स्वयं भी यह जानता हूं कि यह समस्या अधरझूल में लटकी नहीं रहेगी और समाधान के निकट पहुंचेगी क्योंकि कालों का यह अडिग संकल्प है और गोरों में वह दुराग्रह अव नहीं रहा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वक्त का तक़ाजा ही कुछ ऐसा है।

— ३ जून, १९६८
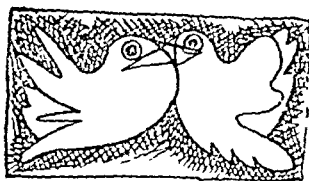
पत्रकारों में : आमने सामने

मैंने अपनी लेखमाला के शुरू शुरू में एक घरेलू गोलमेज परिषद् का जिक्र किया था और इन पंक्तियों द्वारा मैं एक प्रेस सम्मेलन का खुलासा विवरण प्रस्तुत करना चाहूंगा। बात सोलह मई की है। मैं बोस्टन से रवाना होकर वूर्स्टर पहुंचा। दुपहर बाद का सारा समय वहां के एकमात्र एवं एक सौ बीस साल पुराने दैनिक समाचार पत्र 'टेलीग्राफ एण्ड गजट' के प्रेस में बिताना था। वूर्स्टर लगभग एक लाख की आबादी का शहर है और शैक्षणिक संस्थाओं का केन्द्र है। इस शहर के आसपास तीन लाख की आबादी है, जिसके लिये यहां एक ही अखबार है, जो दो संस्करणों में रोजाना दो नामों से सुबह व शाम निकलता है। करीब पचास पृष्ठ का अखबार होता है जिसमें तीस से पैंतीस तक विज्ञापन होते हैं। करीब एक दर्जन स्टीरियो टाइप रोटरी मशीनें और दो सौ लाइनो मशीनें हैं। नौ सौ कर्मचारी काम करते हैं। अखबार का आलीशान वातानूकुलित भवन है। बांटने के लिए पन्द्रह ट्रक और छोटी मोटी कई गाड़ियां हैं।

विक्री है डेढ़ लाख प्रति दिन की। कीमत है दस सेण्ट।

सहायक प्रकाशक जॉन्सन से परिचय होते ही उन्होंने नम्रता-पूर्वक मुझे वताया कि उनका अखवार अमरीकी मापदण्ड से वहुत ही छोटा है, जिसमें दिखाने लायक कुछ भी नहीं है। मेरे विनम्र अनुरोध पर उन्होंने अनुग्रह करके वड़ी तवज्जह के साथ मुझे प्रेस और कार्यालय दिखलाया। करीव दो घण्टे तक मेरे साथ घूमे। तीसरे पहर के चार बज गये। हालांकि वूर्स्टर में सूरज करीव आठ बजे छिपता है, लेकिन दफ्तर साढ़े पांच बजे बन्द हो जाते हैं, अतः जॉन्सन महोदय ने संपादकीय विभाग के कर्मचारियों को सभा भवन में एकत्र होने का अनुरोध किया। मुझे वहां ले जाया गया। यह कार्यक्रम पहिले से ही तय कर लिया गया था, अतः मुझे आकस्मिक नहीं लगा। सभा भवन में एक एक संपादक से मेरा व्यक्तिगत परिचय करवाया गया। मुझे यह मानना पड़ेगा कि उन महानुभावों में से मुझे किसी एक का भी नाम आज याद नहीं है। सिर्फ इतना ही याद है कि वूर्स्टर के 'टेलीग्राफ एण्ड गजट' के संपादकीय विभाग के मेरे साथियों से मैं मिला था। समाचार संपादक अपनी कुर्सी पर वैठे थे। उन्होंने मुझे अपने पास बिठाया। जॉन्सन महोदय ने सिर्फ इतना ही कहा कि हम लोग आपस में वात करें और वे अपने दूसरे कामों को देखने चले गये। हमारे पास कॉफी पीने के वाद सिर्फ एक घण्टा वचा था। वात शुरू हुई। पहल मेरे साथियों ने की। वातचीत का सिलसिला इतना वढ़ गया कि मैं पूरे एक घण्टे तक कटघरे में ही रहा और अपने अमरीकी साथियों की जिरह का जवाव देता रहा। मैं कुछ भी पूछ नहीं पाया लेकिन मैं जो कुछ और जानना या पूछना चाहता था, वह अधिकांश उनके सवालों में ही मेरे सामने आ चुका था।

पहला सवाल आया—भारत में खेती का क्या हाल है और अनाज की पैदावार भविष्य में कैसी रहेगी?

मेरा जवाव था—भारत में अनाज की फसल वहुत अच्छी है

और बहुत ही अच्छी रहेगी !

सवाल—क्योंकि मानसून अच्छा है ?

मैंने कहा—यह बात सच है । मानसून अच्छा है और वह हमारे आशावाद का बहुत बड़ा आधार है, लेकिन आप लोगों से यह कहना चाहूंगा कि मानसून का आधार केवल वर्तमान फसल तक है। हम भविष्य में भी ज्यादा अनाज पैदा कर लेंगे और अपनी कमी को जल्दी ही पूरा कर लेंगे ।

प्रश्न—यह तो भारत का हर एक नेता कहता आया है , लेकिन आपका देश हमेशा मानसून पर ही निर्भर रहा करता है , यहां तक कि योजनाएं तैयार करने वाले भी । मैं इस बात से इन्कार नहीं कर सका , क्योंकि अमरीकी पत्रकार के सामने इधर उधर करना जोखिम से खाली भी नहीं था और यह मेरी आदत भी नहीं है । मैंने मंजूर किया कि अब तक हम जो कहते थे , करके नहीं दिखा सके लेकिन भविष्य में हम अपना पेट भर लेंगे । यह कहने के लिए मेरे पास ठोस आधार हैं । हमारे देश में रासायनिक खाद का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है और किसान उसे पसंद करने लगा है । खाद की एजेन्सी लेने के लिए आज लोग लाखों रुपया लगाने को तैयार हैं , लेकिन एजेन्सी मिलना मुश्किल है । बीज का भी यही हाल है । खाद और बीज के अलावा ट्रेक्टर हमारे देश में आजकल किसी भाव नहीं मिलता और संसद सदस्य आज कल फियेट कार के बजाय ट्रेक्टर को प्राथमिकता देने को ज्यादा आतुर हैं । खेती के प्रति जो अनुकूल वातावरण देश में बनता जा रहा है , उसमें बड़े बांधों के पानी की क्षमता का उपयोग भी बढ़ता जा रहा है , इसलिए मैं कह रहा हूं कि हम अनाज के लिए भविष्य में मानसून पर ही निर्भर नहीं रहेंगे ।

मेरी बात शायद मेरे साथियों को कुछ जंची , इसलिये मैंने अखीर में यह भी कहना ठीक समझा कि मानसून अपना असर कुछ सालों तक तो जरूर रखेगा , लेकिन हम सिर्फ उसकी दया पर नहीं रहेंगे । इस बात से अमरीकी पत्रकार और भी प्रभावित हुए ।

उनको लगा कि मैं डींग नहीं मार रहा हूं।

प्रश्न—जन संख्या के बारे में आपका क्या दृष्टिकोण है? भारत में जन संख्या को रोकने के लिए क्या किया जा रहा है?

मैंने सीधे-सादे शब्दों में कहा कि जन संख्या जिस मात्रा में बढ़ रही है, उस मात्रा में उसकी रोक-थाम नहीं हो रही है। परिवार नियोजन मन्त्री अपनी राजनीतिक और प्रशासनिक जिम्मेदारी को पूरी करने के लिये अपनी ओर से हाथ पांव मारने में सुस्ती नहीं कर रहे हैं लेकिन देश भी अपनी रफ्तार से चल रहा है। सारांश यह है कि कहने लायक कुछ नहीं हो रहा है।

कई पत्रकारों ने एक साथ पूछा—आपकी क्या राय है? आप जन संख्या को कम रखने या बढ़ते दिये जाने के पक्ष में हैं?

उत्तर— मैं कोई डिक्टेटर नहीं हूं और न यह मानता हूं कि मेरे पक्ष या विपक्ष में रहने से ही कुछ बनता बिगड़ता है। असली सवाल दूसरा है। हमारे देश के ज्यादातर लोग खेती करते हैं और गरीब हैं। जन संख्या कम करना उनको मंजूर नहीं है। वे लोग परिवार के हर एक बच्चे से काम लेते हैं और कमाते हैं तथा परिवार को छोटा करना नहीं चाहते। उनको सबसे पहिले शिक्षित बनाना होगा। फिर वे जन संख्या के सवाल पर शायद सोचना शुरू करेंगे।

प्रश्न — क्या रूढ़िवाद भी परिवार नियोजन संबंधी कार्यक्रम में बाधक है?

उत्तर — जी हां, एक हद तक बाधक है और दूसरी ओर धार्मिक अड़चन भी है। मुसलमान जन संख्या को कम करने का कार्यक्रम अधर्म समझता है और उसका असर हिन्दू धर्मावलम्बियों पर भी पड़ता है। रूढ़िवाद और धर्मान्धता इस कार्यक्रम में बाधक है।

अमरीकी पत्रकारों को यह बात नई-सी लगी और ऐसा लगा कि वे परिवार नियोजन के वैज्ञानिक पहलुओं को भूल गये। वे दूसरे विषय पर आ गये और पूछने लगे — पाकिस्तान के साथ भारत के संबंध अब कैसे हैं? 'कोई फर्क नहीं' मैंने सहज भाव से उत्तर दे दिया,

जिसे उन्होंने सहज रूप में नहीं लिया। एक ने कहा — क्या कश्मीर दोनों देशों के बीच दीवार बना हुआ है ? मैंने यहां मंजूर किया कि दोनों देश अभी तक विभाजन की कड़ुवाहट को भुला नहीं पाये हैं। भारत समझता है कि उसने बहुत कुछ खो दिया और पाकिस्तान समझता है कि उसका दो राष्ट्रों का सिद्धान्त व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतरा, अत: उसे कुछ और वसूल करना चाहिये। पश्चिमी गुट, जिसके नेता अमरीका और ब्रिटेन हैं, उसे शह देते रहे हैं। 'यह कैसे ?' कई लोगों ने एक साथ पूछा।

मैंने भी फौरन जवाब दिया — पाकिस्तान अमरीका प्रेरित सैनिक सन्धियों का सदस्य है। ये सन्धियां कम्यूनिस्ट विस्तारवाद को रोकने के लिये बनाई गई थीं, लेकिन भारत और पाकिस्तान के बीच शक्ति संतुलन कायम रखने के काम आईं। पाकिस्तान चीन के साथ सांठ-गांठ रखता है। मैंने न्यूयार्क टाइम्स के चौदह मई के अंक का एक उदाहरण पेश किया जिसमें विदेश मन्त्री बलीराम भगत का लोकसभा में दिया गया एक वक्तव्य छपा था। पाकिस्तान ने चीन को एक सड़क बनाने की अनुमति दी और सड़क करीब-करीब बन भी गई। पाकिस्तान को इस तरह का अधिकार 'आजाद कश्मीर' की भूमि के बारे में नहीं है, क्योंकि वह विवादास्पद क्षेत्र है। मैंने यह भी कहा कि १९६५ में पाकिस्तान ने अमरीकी हथियारों का खुल कर हमारे खिलाफ प्रयोग किया, चीनी हथियार भी काम में लिये। हमने सबूत भी पेश किये, लेकिन अमरीका ने एक नहीं सुनी, इसका क्या मतलब हो सकता है ?

टेलीग्राफ और गजट के संपादकों ने एक स्वर से कहा कि पाकिस्तान को अमरीका ने सैनिक सहायता देने से इन्कार कर दिया। पत्रकारों ने मेरी शिकायत को जरूर मंजूर किया। लेकिन कोई टिप्पणी नहीं की। सैनिक सहायता के विवाद को मैंने आगे नहीं बढ़ाया लेकिन मैंने इतना अवश्य कहा कि पाकिस्तान पर अमरीकी कार्यवाही का असर क्या हुआ ?

इसके बाद बातचीत का सिलसिला फिर बदला और पत्रकार भाषा के प्रश्न पर आ गये। एक सवाल किया गया कि भाषायी समस्या का भारत में क्या रूप है ?

मैंने पहिले तो यही कहा कि इस समस्या को दो टूक नहीं समझाया जा सकता, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि भारत की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये।

सवाल — आप किस भाषा के पक्ष में हैं ? भारतीय भाषा के पक्ष में अथवा हिन्दी के पक्ष में।

मैंने समझाने का प्रयत्न किया कि भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राजकाज एवं सामान्य व्यवहार की भाषा बन सकती है। मैं स्वयं सभी भारतीय भाषाओं के विकास की कामना करता हूं। हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं का प्रश्न अन्तर्विरोधी नहीं है; विभिन्न भाषायी राष्ट्रों को इसी रूप में समस्या का निदान खोजना पड़ेगा।

सवाल — क्या आपकी राय है कि अंग्रेजी को भारत में समाप्त कर दिया जाय ? मैंने कहा, नहीं। अंग्रेजी को समाप्त किये जाने की संभावना फिलहाल नहीं है। लेकिन भारतवासियों के आपसी व्यवहार में अंग्रेजी की कोई जरूरत नहीं है। उच्च शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार और व्यापार में उसका प्रयोग होता रहेगा, जिसके लिये किसी कानूनी व्यवस्था की जरूरत नहीं। अंग्रेजी के ज्ञान पर किसी तरह की रोकथाम नहीं हो, किन्तु उसे कानूनी तौर पर बनाये रखना बेमानी है।

मेरी इस बात को जैसे उन्होंने पसन्द नहीं किया। सभी आंखें फाड़कर आश्चर्य-सा व्यक्त करने लगे। यह बात एक अतिथि के मुंह से उन्हें अटपटी भी लगी हो, मैं नहीं जानता। इसी बीच एक साहब ने पूछा — आप इस समस्या का हल क्या सोचते हैं ? मैंने कहा कि हल करने का संकल्प चाहिये जो हमारी सरकार में नहीं है। दृढ़

संकल्प के अभाव में कोई विकल्प भी नहीं है।

एटम बम के बारे में आपकी क्या राय है ? क्या भारत को एटम बम बनाना चाहिये ? मैंने कहा, हां बनाना चाहिये। उलट कर सवाल किया गया कि एटम बम बनाने पर तो बहुत खर्च पड़ेगा। मुझे यह सवाल अप्रत्याशित नहीं लगा। मैंने जवाब दिया कि जो खर्च होता हो वह किया जाना चाहिये। वैसे भी अपनी रक्षा व्यवस्था पर हम अपने बजट का ज्यादा हिस्सा खर्च कर ही रहे हैं। हमारे सारे सीमान्त पर खतरा है।

भारत पर एटम बम कौन डालने जा रहा है ? यह सवाल भी किया गया, लेकिन मुझे बचकाना-सा लगा। मैं उसी तरह का जवाब नहीं देना चाहता था, वरना कह सकता था कि अमरीका पर एटम बम कौन डालने वाला था और किसने पहिले एटम बम डाला, लेकिन मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि अगर हम पर कोई एटम बम नहीं डालेगा तो हम चीन की तरह बनाकर ही रख लेंगे। किन्तु हमारे देश के जन-मानस पर इसका अच्छा असर पड़ेगा और यह अपने आप में बहुत बड़ी बात है।

क्या आपकी राय में अमरीका को वियतनाम में एटम बम डालना चाहिये ? मैंने एकदम कहा — मैं राय देने वाला कौन हूं, लेकिन मैं इस तरह की कार्यवाही को उचित नहीं समझूंगा। वियत-नाम के प्रश्न पर बातचीत के दरवाजे खुले हुए हैं, पहिले उनको खटखटाया जाय।

यह बात शायद उनको खटकी नहीं। उन्होंने बातचीत का सिलसिला बदला और पूछा कि क्या इन्दिरा गांधी की सरकार अगले चुनावों तक चलती रहेगी। मैंने अपनी राय दी कि अगले चार सालों तक कोई खतरा नजर नहीं आता।

'क्या आपकी राय में यह सरकार ठीक काम कर रही है ?' मेरी राय में इससे अच्छी सरकार हम नहीं चुन सकते थे। यह

सरकार कमजोर है, लेकिन देश की मौजूदा परिस्थितियों में इस सरकार की ताकत इसकी कमजोरी में ही है।

मुझसे कहा गया कि अपनी राय को कुछ विस्तार से कहूं। मैंने उन्हें बताया कि इन्दिरा गांधी समझौता करके चलना जानती हैं और अपने समर्थक बढ़ा सकती हैं, अतः वे जमी रहेंगी। ज्यादा मजबूत सरकार के गिरने का ज्यादा खतरा है।

१९७२ के बाद क्या होगा ? मैंने कहा—इतनी दूर की सोचने की ताकत मुझमें नहीं है। कौन कह सकता है १९७२ के बाद अमरीका में क्या होगा ?

बातचीत का सिलसिला यहीं खत्म हो गया। जॉन्सन महोदय ने आकर सूचना दी कि अब चलना चाहिये। वे अपने घर जा रहे थे और मुझे अपने मेजबान के घर छोड़ कर जाना चाहते थे। मैंने थेंक्यू कह कर गुड बाई किया और चलने को हुआ। अमरीकी मित्र खुश थे। यह उन्होंने छिपाया नहीं। कहने लगे बहुत ही बेतकल्लुफ और बेधड़क बातचीत रही। बड़ा मजा आया। मैंने भी उसी लहजे में कहा कि मैं भी अमरीकी ढंग का पत्रकार हूं। अपनी बात साफ साफ कहो और दूसरे की खरी खोटी सुनो। इससे वे लोग और भी खुश हुए और ठहाके लगाते हुए अपने अपने घर चल दिये। सभी मस्त-मौला थे। मेरी आय से शायद दस गुनी आय वाले होंगे। अखबार के लिहाज से हैसियत में भी कोई हल्का नहीं था, लेकिन थे सभी जानदार लोग, जिंदा दिल लोग।

— ५ जून, १९६८

एक छलांग में मेट्रिक से ग्रेजुएट

जैसा कि मैंने अपने पिछले एक लेख में लिखा था , अमरीकी राष्ट्र को अपनी संस्थाओं से बड़ा संवल मिला है। हर छोटे वड़े शहर में यहां कला भवन, संग्रहालय, पुस्तकालय, संगीत-नाट्य-शालाएं , क्रीड़ांगन , अनुसन्धान केन्द्र , प्रकाशन गृह , क्लव , गृह-शाला आदि का जाल विछा हुआ है । एक से एक ऊंची संस्थाएं आपस में होड़ किये हुए हैं । विलियम्सवर्ग का ऐतिहासिक क्षेत्र समूचा ही एक संस्था है । वाशिंगटन में मैंने स्मिथ सोनियन की संस्थाओं को देखा तो दंग ही रह गया । इस संस्था के अन्तर्गत लगभग एक दर्जन विशाल भवन हैं , जिनके भीतर की सामग्री को देखने के वाद यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि जो कुछ यहां नहीं है , वह इस सृष्टि में कहीं नहीं है या जो कुछ इस संस्था को सृष्टि के किसी कोने में मिल सकता था , उसे किसी भी कीमत पर लाकर खूवसूरती से सजा कर यहां रख दिया गया है । न्यूयार्क के लिंकन सेण्टर की चर्चा भी मैं कर चुका हूं । प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को यहां भोज भी दिया गया था ।

बफेलो वोस्टन आदि सभी शहरों में इस तरह की संस्थाएं भरी पड़ी हैं। यहां मैं शिकागो के उद्योग-विज्ञान संग्रहालय की विस्तार से चर्चा करना चाहूंगा।

इस बीच यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अमरीका में जितनी भी सस्थाएं हैं, उनका निर्माण सरकार ने नहीं बल्कि सेठ-साहूकारों ने किया है और वे ही उनको चलाने की व्यवस्था करते हैं। इन संस्थाओं में प्रवेश-शुल्क भी होता है, लेकिन बच्चों के लिये नहीं। संस्थाओं के निर्माण के लिये अमरीका की कर प्रणाली में विशेष व्यवस्था होती है, इसलिये सेठों को इस मद पर खर्च करना ही पड़ता है। इस खर्च पर सरकार कर वसूल नहीं करती और कम्पनियों की कमाई में से इस तरह हर साल अरबों रुपये संस्थाओं के निर्माण अथवा पोषण पर खर्च होते हैं।

शिकागो का उद्योग-विज्ञान संग्रहालय अमरीका भर की नाक कहा जाता है। यह उद्योगों के सामूहिक योगदान का फल है। इस संग्रहालय में आधुनिक औद्योगिक सभ्यता व वैज्ञानिक प्रगति का सजीव चित्र प्रस्तुत है, जिसे देखने के बाद मैं यह कह सकता हूं कि हाई स्कूल पास करके इसे एक बार ध्यान से देख लेने के बाद कोई भी विद्यार्थी बी. ए. की योग्यता प्राप्त कर सकता है। यह संग्रहालय बड़े ही रोचक ढंग से बताता है कि मोटर, रेल, वायुयान जलपोत, अणुबम, रॉकेट, बिजली, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर वगैरह का विकास किस तरह हुआ। मानव, पशु या पक्षी के शरीर की रचना कैसी है और जीव का विकास किस तरह होता है। यहां आकर यह जाना जा सकता है कि केन्सर एवं हृदय रोग किस तरह होता है और उनके निवारण के लिये क्या क्या हो रहा है।

संग्रहालय को समझाने का ढंग इतना रोचक है कि किसी की सहायता की जरूरत नहीं। हालांकि हर एक दर्शक-टोली के साथ महिला गाइड रहती है, लेकिन हर चीज के सामने कटघरे पर चार पांच टेलीफोन लगे रहते हैं। आप उठाकर कान पर लगाइये कि वस्तु का

विस्तृत विवरण सुनाई देने लगेगा । पूरा विवरण भीतर रखे हुए टेप-रेकार्ड पर चलता रहता है । कांच की स्लाइडों पर मोटी मोटी बातें लिखी भी मिलेंगी । बच्चे को साइकिल पर चढ़ा कर समझा दिया जाता है कि बिजली किस तरह बनती है । ज्यों ज्यों पैडल लगाता है उसकी शक्ति सामने के मीटर में अंकित होती रहती है । हर चीज के पास बटन लगे रहते हैं जिन्हें बच्चे दबाकर संचालन करने का मजा लेते हैं । इस संग्रहालय में आप अपनी आवाज को आंख से चलता हुआ देख सकते हैं । ऊंची नीची जैसी आवाज में आप बोलेंगे, ध्वनि तरंगों का उतार चढ़ाव बढ़ता-घटता जायेगा । आप रोशनी की रेखा की सहायता से संगीत के रेकार्ड सुन सकते हैं । अगर आप रोशनी के सामने आ गये तो संगीत बंद हो जायगा । आप जिससे टेलिफोन पर बात कर रहे हैं उसकी तस्वीर अपने टेलिफोन पर देख सकते हैं । दोनों तस्वीरें भी एक साथ आ सकती हैं । इस संग्रहालय में आप देखेंगे रेडियेशन का मानव जीवन में उपयोग । रेडियेशन के जरिये आप रेफ्रिजिरेशन के बिना भी कई दिनों तक अपने खाने की चीजों को ताजा रख सकते हैं । भविष्य के लिये क्या अनुसन्धान हो रहे हैं, उनकी झलक भी आप शिकागो के संग्रहालय में देख सकते हैं । उदाहरण के तौर पर यह बताया गया है कि निकट भविष्य में ही अमरीका में जेबी टेलीफोन बन जायेंगे जो डायरी या फाउण्टेन पेन में लगे रहेंगे । आप उनके जरिये आज कल के टेलीफोनों की तरह ही बात कर सकेंगे । पेट्रोलियम पदार्थों से हमारी खुराक बन सकती है । इस सम्बन्ध में जो प्रगति हुई है, उसका विवरण यहां दिया गया है । एक ऐसा ही खाद्य पदार्थ बना कर चूहों को खिलाया जा रहा है, जिसको यहां देखा जा सकता है । अनुसन्धान जारी है । इसके पूर्णतः सफल हो जाने पर भोजन के लिये संभवतया खेती पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा और उसे कारखानों में तैयार किया जा सकेगा । कम्प्यूटर हमारे जीवन के अनेक क्षेत्रों पर छा जायेगा । ट्रैफिक के नियन्त्रण में और अपराधों के अनुसन्धान में भी कम्प्यूटर

का उपयोग करने का कार्यक्रम बनाया जा रहा है। स्कूलों में कम्प्यूटर काम में आने लगे हैं।

गणित और भौतिक विज्ञान के अलग अलग विभाग इस संग्रहालय में हैं। गुरुत्वाकर्षण से परमाणु-भौतिकी तक मानव ने जो प्रगति की है उसका बहुत ही अच्छा प्रदर्शन है। गणित के सवाल का जवाब आपके बटन दबाने पर मिल जायगा। यह भी बताया गया है कि गणित के अंक भारत की ही संसार को देन है।

मोटर कम्पनियों ने अपनी प्रदर्शनी में यह तथ्य साबित किया है कि भले ही बीसवीं सदी में मंहगाई कई गुना बढ़ गई हो, लेकिन मोटर की कीमत बढ़ने के बजाय घटी है और उसके गुणों में अपार वृद्धि हुई है। सन् १९३५ मॉडल की एक फोर्ड कार यहां रखी है, जो उस समय ३५०० डालर की थी और आज अच्छी से अच्छी फोर्ड कार तीन हजार डालर में मिलती है। १९१८ की रोल्स रॉयस अठारह हजार डालर की है और आज उसकी कीमत दस हजार डालर है। मोटर में जमीन आसमान का फर्क है। यही बात यहां के उद्योगपति दूसरी चीजों के बारे में भी कहते हैं। उनका दावा है कि औद्योगिक सभ्यता के विकास के साथ रहन सहन बहुत उन्नत हो गया है। इस संग्रहालय में वे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं।

शिकागो का यह उद्योग-विज्ञान संग्रहालय अपने आप में अलग दुनिया है। मैंने इसे कुछ ही घण्टों में देखा इसलिए यही कहना चाहूंगा कि समझा नहीं हूं। इसे समझने के लिये एक महीना चाहिये। इस संग्रहालय को बीसवीं सदी का दर्पण और भविष्य का सिगनल कहा जा सकता है। जल, थल और गगन की त्रिलोकी आज किस अवस्था में है और कल कैसी होगी, उसकी एक झलक यहां देखी जा सकती है। यहां स्कूलों के बच्चे तो लाखों की तादाद में आते ही हैं लेकिन हजारों ही मेडिकल व भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी भी इसका अध्ययन करने पहुंचते हैं और कुछ सीख कर ही जाते हैं।

संग्रहालय के एक अधिकारी ने पूछने पर मुझे बताया कि इसे देखने के लिये हर रोज औसतन नौ हजार व्यक्ति आते हैं। १९६७ में एक दिन में कम से कम संख्या २२७ रही और ज्यादा से ज्यादा ४२ हजार से कुछ अधिक रही। संग्रहालय के अध्यक्ष ने मुझे अपने स्टाफ के साथ लन्च पर निमन्त्रित किया था। उन्होंने लन्च के समय बातचीत के दौरान में बताया कि प्रेसीडेन्ट केनेडी से मिलने के लिये जब नेहरूजी अमरीका आये तब वे शिकागो में संग्रहालय देखने आये थे। हल्की-फुल्की बातों में वे यह भी बताना नहीं भूले कि जिस कमरे में और जिस कुर्सी पर मैं बैठा था, उसी पर प्रधानमंत्री श्रीमती गान्धी भी लन्च खा चुकी हैं। लन्च के समय मुझे एक फोटोग्राफ भी लाकर दिया गया, जो मेरा ही था और लन्च के पहिले संग्रहालय देखते वक्त ले लिया गया था। संग्रहालय के अधिकारी विदेशी अतिथियों का स्वागत-सत्कार करके बहुत खुश होते हैं।

संग्रहालय के अधिकारियों ने एक दिलचस्प बात बताई जो उनके विषय से सम्बन्धित नहीं थी, परन्तु यह जान कर कि मैं जयपुर से आया हूं उन्होंने पोलो की चर्चा शुरू कर दी और बताया कि शिकागो में पोलो की सात टीमें हैं और पांच मैदान हैं। उन्होंने सेना के दो पुराने शस्त्रागारों को भी पोलो मैदान बना लिया है, जो जमीन के नीचे हैं। वहां जाड़े में बर्फ पड़ते समय या बरसात के मौसम में पोलो खेला जाता है। शिकागो के एक धन कुबेर ब्रुक को पोलो का बेहद शौक है और आज कल घुड़सवारी का शौक भी यहां बढ़ता जा रहा है। उन लोगों ने यह भी पूछा कि भारत में राजा लोग पोलो और शिकार ही खेलते हैं या राजनीति में भी भाग लेते हैं। मैंने उनको बताया कि राजा लोग राजनीति में भी आने लगे हैं। एक अधिकारी ने पूछा कि राजाओं की राजनीति कैसी होती है तो मैंने जवाब दिया 'राजाओं जैसी ही'। मेरे जवाब का मतलब वह क्या समझा यह मुझे नहीं मालूम लेकिन वह हंस दिया। मैंने भी इस चर्चा को आगे बढ़ाना अप्रासंगिक ही समझा।

शिकागो अमरीका का तीसरा बड़ा शहर है, जिसकी आवादी पचास लाख से ऊपर है और अनेक बड़े उद्योगों का केन्द्र है। खाद्य पदार्थों का यह सबसे बड़ा अमरीकी केन्द्र है। शिक्षा की दृष्टि से वहुत बढ़ा चढ़ा है। शहर में कम से कम दस हजार भारतीय प्रवासी रहते हैं, जिनमें से लगभग पांच हजार इन्जीनियर हैं। सैकड़ों भारतीय छात्र इवान्सटन व शिकागो के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं प्राविधिक केन्द्रों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। मैं कई छात्रों से मिला और यहां बसे हुए भारतीयों से भी। अधिकांश भारतीय यहां से भारत लौटने की इच्छा नहीं रखते, लेकिन एक तथ्य यह भी सामने आया कि दस दस साल से यहां बसे हुए भारतीय भी अमरीका की नागरिकता ग्रहण करना नहीं चाहते। यहां पांच वर्ष रहने के पश्चात् नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो जाता है और रोजगार के अवसर वहुत हैं। शिकागो के लिए अमरीका में यह कहावत मशहूर है कि जिसको यहां रोजगार नहीं मिल सकता उसे अमरीका में कहीं रोजगार नहीं मिल सकता। भारतीय प्रवासियों को रोजगार मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती।

आम भारतीय प्रवासी के बारे में यहां लोगों की राय बहुत अच्छी है। जिस कम्पनी में भारतीय कार्य करते हैं वह उनको अपनी कमाऊ सम्पत्ति समझती है और सही भी है कि औसत अमरीकी के मुकाबले एक भारतीय इन्जीनियर या शिक्षक की योग्यता-क्षमता अधिक होती है। यहां आम तौर पर उच्च शिक्षा के लिए भारतीय लोग आते हैं और अनेक यहीं बस जाते हैं। जो लोग शिकागो के शिक्षण केन्द्रों में प्रवेश पाते हैं, वैसे भी भारतीय संस्थाओं के उच्च कोटि के छात्र होते हैं, अतः यह स्वाभाविक ही है कि उनकी योग्यता अच्छी हो। इन दिनों यह भी शिकायत यहां सुनने को मिलती है कि कई विद्यार्थी अपने भारतीय अध्यापकों से अच्छे प्रमाण-पत्र ले आते हैं परन्तु उनके अनुकूल सिद्ध नहीं होते, अतः यहां यह नीति अपनाई जा रही है कि जिन भारतीय युवकों के पास किसी मान्यता प्राप्त

विश्वविद्यालय या शिक्षण-संस्था का प्रमाण पत्र नहीं होता, उन्हें आते ही सहायक का कार्य नहीं मिलता। उन्हें साढ़े चार महीने के सत्र तक अपनी योग्यता क़मानी पड़ती है या उम्मीदवारी करनी पड़ती है।

सहायक का पद पी. एच. डी. के लिए अध्ययन करने वालों को दिया जाता है, जिन्हें तीन हजार डालर सालाना की दर से छात्रवृत्ति दी जाती है। जो लोग डिग्री प्राप्त करने के बाद कम्पनियों में नौकरी करने लगते हैं, उन्हें बराबर प्रेरित किया जाता है कि अग्रेतर शिक्षा प्राप्त करते रहें और विभिन्न पाठ्यक्रमों में शामिल होते रहें। अग्रेतर शिक्षा का सारा खर्च कम्पनी उठाती है और छुट्टी की सुविधा भी देती है। जो कर्मचारी अग्रेतर शिक्षा प्राप्त नहीं करते या तरक्की पाने की चेष्टा नहीं करते उनको यहां निकम्मा समझा जाता है। तरक्की का ज्यादा से ज्यादा अवसर दिया जाता। औसत इन्जीनियर का वेतन यहां करीब दस हजार डालर सालाना है और खर्च इसका करीब आधा है। वेतन के अलावा अन्य कई सुविधाएं भी हैं।

यहां पढ़ने वाले छात्र भारत में इन्जीनियरों की बढ़ती हुई बेरोजगारी से काफी चिंतित हैं। भारतीय प्रवासियों के पास यहां अच्छी खासी बचत है और वे उसे भारत भेज भी सकते हैं किंतु भारत सरकार की नीतियों से वे संतुष्ट नहीं हैं और उन्हें अनुदार समझते हैं। १९६५ में जब भारत सरकार ने भारत में डालर भेजने के लिये प्रवासियों को कुछ रियायतें दी थीं, तो यहां से करोड़ों रुपये के डालर भारत भेजे गए थे। कुछ प्रवासी भारतीयों के मन में भारत की गतिविधियों के प्रति गहन रुचि है और ममता भी है। अनेक प्रवासी अपने यहां भारतीय समाचार पत्रों के विदेशी संस्करण मंगवाते हैं। किसी भारतीय को स्वदेश से आया जानकर बेहद खुश होते हैं।

शिकागो में फ्रेंड्स ऑफ इन्डिया नाम की एक भारतीयों की

संस्था भी है, जो मुख्यतः कृषि क्षेत्र में उन भारतीयों की कई तरह से मदद करती है, जो अपने देश में कुछ काम करना चाहते हैं। अधिकांश भारतीय यहां नौकरी पेशा हैं और इसका कारण भी समझ में आ सकता है। इन नौकरियों से न केवल भारतीय लोग खुश हैं, बल्कि मालिक-कम्पनियां भी खुश हैं। कम्पनियों को सीखे पढ़े युवकों की जरूरत है और वे अच्छी पगार देती हैं, इतनी अच्छी कि भारत के चोटी के आई. सी. एस. को भी उतनी नहीं मिलती जितनी यहां रहने वाला भारतीय इन्जीनियर बचत कर लेता है। भारतीय इन्जीनियरों को इस नारे में कोई वजन नजर नहीं आता कि उन्हें भारत में ही काम करना चाहिये। उनकी राय है कि भारत की सेवा करने के कई तरीके हो सकते हैं। अगर भारत अपने इन्जीनियरों को काम और अच्छा वेतन नहीं दे सकता तो वे विदेशों से मुद्रा कमा कर भी अपने देश की कमी पूरी कर सकते हैं। भारत सरकार अपने इन्जीनियरिंग कॉलेजों को विदेशी मुद्रा कमाने का साधन क्यों नहीं बना लेती? भारत की खपत के बाद बचे हुए इन्जीनियर विदेश जाकर काम कर सकते हैं। उनकी मुद्रा का उपयोग करके भी सर-कार अपने देश का निर्माण कर सकती है।

कुछ भारतीय यहां ऐसे भी हैं, जिन्होंने अमरीकी लड़कियों से शादी करली है। मैंने पूछताछ कर पता लगाया कि भारतीयों के साथ रह कर अमरीकी लड़कियां बहुत संतुष्ट हैं और अपने आपको भारतीय रंग में ढालने की कोशिश भी कर रही हैं। एक लड़की तो बेचारी अपने भारतीय बनने के प्रयत्न में हास्यास्पद भी बन जाती है, जिसने केरल के एक युवक से शादी करली है। वह एडी से चोटी तक केरल की वेशभूषा पहनती है। सिर पर चोटी भी गूंथती है, लेकिन उससे कुछ करते नहीं बनता। अनुकरण करने के लिये भी उसके सामने कोई नहीं होता। वह तस्वीरें देख देख कर अपना बनाव-सिंगार करती रहती है। मिलने वालों को वह कहती है कि भार-तीय पुरुष के साथ शादी करने के बाद उसके मन में स्थिरता या

सुरक्षा का भाव पैदा हुआ है। वह अपनी शादी को ज्यादा टिकाऊ मान रही है।

भारतीयों में यहां ज्यादा तादाद पंजाबियों की है और दूसरा स्थान आता है गुजरातियों का। गुजरातियों के बारे में यहां यह धारणा सुनने को मिली है कि एक गुजराती युवक की जेब में पांच-सात हजार डालर इकट्ठे होने के बाद वह अपने देश जाने की सोचने लगता है और कोई कारोबार करने की फिक्र करने लगता है। राजस्थान के लोग शिकागो में ज्यादा नहीं हैं; राजस्थान से आते भी हैं तो ज्यादातर लोग वापिस चले जाते हैं। ज्यादातर विद्यार्थी इवान्सटन विश्वविद्यालय और आई.आई. टी. [इलियोनाई इन्स्टीट्यूट ऑफ टेकनोलोजी] में आते हैं। डिग्री लेकर उनमें से अधिकांश वापिस स्वदेश चले जाते हैं। कुछ यहां भी रह गये हैं। तीन साथियों से मिला हूं। सभी खुश हैं और वापिस जाने का कोई इरादा नहीं रखते।

— ६ जून, १९६८

न्यूनतम आय की गारण्टी दो !

राजस्थान पत्रिका के हजारों पाठक वे हैं जो आय कर नहीं देते अर्थात् उनकी आय इतनी नहीं है कि उन पर आय कर लागू हो। उनके सामंने मैं एक प्रश्न वाचक प्रस्ताव रखना चाहता हूं। अगर आय कर न देने वालों को भारत सरकार गरीब मानले और उनकी आय की पूर्ति करने की जिम्मेदारी ले ले तो कैसा रहे ? मुझे जवाब सुनने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूं, यह प्रस्ताव सुनकर इस वर्ग के सभी लोगों के मुंह में पानी आयेगा।

अमरीका में आजकल इसी तरह के प्रस्ताव पर बड़े पैमाने पर विचार हो रहा है। अखवारों में और टेलीविजन पर भी इस तरह के विषय का आयोजन किया जा रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि यह विवाद आज कल गरीबों के कूच और नीग्रो लोगों के दवाव के कारण भी है और चुनाव के कारण भी। लेकिन मैं यह साफ कर देना चाहूंगा कि यह विवाद व्यर्थ नहीं हैं और जबानी जमा खर्च भी नहीं है। अच्छा खासा जनमत

इस प्रश्न पर तैयार हो रहा है।

विचाराधीन प्रस्ताव यह है कि सामाजिक सुरक्षा निधि के स्थान पर आय पूर्ति की योजना लागू की जाय, जिसका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि राज्य की ओर से नागरिक को न्यूनतम आय की गारण्टी दी जाय। सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत बेरोजगार, असहाय व अपंग लोगों को घर बैठे भत्ता दिया जाता है लेकिन इस योजना की आजकल काफी आलोचना हो रही है। योजना पर हर साल संघीय कोप से आठ अरव डालर खर्च होते हैं लेकिन आय पूर्ति की योजना का प्रस्ताव करने वाले कह रहे हैं कि नई योजना ग्यारह अरव डालर के खर्च से लागू की जा सकती है। जिन लोगों के पास कोई रोजगार नहीं है, उन्हें पूरा न्यूनतम वेतन दिया जाय और जिनकी आय कम है उनकी पूर्ति की जाय। अधिक उदार प्रावधान वाली योजना पर छव्वीस अरव डालर तक भी खर्च हो सकते हैं, किन्तु यह सव कुछ वियतनाम पर निर्भर है।

सत्ताईस मई को अमरीका के एक हजार से अधिक अर्थशास्त्रियों ने एक प्रेस वक्तव्य जारी करके आय पूर्ति की योजना लागू करने की हिमायत की है। एक डेमोक्रेट कांग्रेसी नेता ने कहा है कि यह सुझाव कुछ वाजिव लगता है। वर्तमान सहायता योजना से तो लोगों में प्रमाद फैल ही रहा है। इंडियाना के एक रिपब्लिकन नेता ने भी कहा है कि इस योजना पर अमल होने की गुंजाइश तो है। न्यूयार्क के गवर्नर रॉकीफेलर ने बारह सदस्यों की एक समिति गरीबी की समस्या व हल पर विचार करने के लिये नियुक्त की थी, जिसने भी अभी अभी सिफारिश की है कि नागरिक को न्यूनतम आय की गारण्टी दी जानी चाहिये। डमोक्रेट पार्टी के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार सीनेटर यूजिन मेकार्थी ने गारण्टी योजना के पक्ष का समर्थन किया है। सीनेटर केनेडी ने इस योजना को मंजूर नहीं किया है, लेकिन इस सम्बन्ध में रखे जा रहे अन्य कई सुझावों का स्वागत किया है। शिकागो विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमेन ने भी

योजना का पुरजोर समर्थन किया है। ये अनुदार अर्थशास्त्री माने जाते हैं, जिन्होंने १९६४ में राष्ट्रपति के चुनाव में रिपब्लिकन नेता गोल्डवाटर का समर्थन किया था।

सत्ताइस मई की प्रेस विज्ञप्ति जिन अर्थशास्त्रियों ने निकाली है, उसमें एक सौ पच्चीस शिक्षण संस्थाओं के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हैं और दस विश्वविद्यालय ऐसे हैं जिनमें से प्रत्येक से पन्द्रह अर्थशास्त्रियों ने हस्ताक्षर किये हैं। मिल्टन फ्रीडमेन से जब किसी ने पूछा कि गरीबों की आमदनी किस तरह बढ़ सकती है तो उन्होंने भिड़ते ही जवाब दिया—'उनको धन दो, आमदनी बढ़ जायगी।'

अमरीका के गरीबों में हालांकि कालों की तादाद ज्यादा है, लेकिन गोरे, रेड इंडियन, मेक्सिकन और स्पेनी उद्गम के अमरीकी नागरिक भी लाखों की तादाद में हैं।

अमरीकी लोग जब यह सुनते हैं कि भारत में जीवन बीमा निगम के कर्मचारी कम्प्यूटर के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे हैं, तो उन्हें विश्वास ही नहीं होता। हो भी कैसे, यहां कम्प्यूटर को अब सर्वसाधारण के काम की चीज बनाने के लिये हर रोज नई योजनाओं और गवेषणाओं पर जोर दिया जा रहा है। न केवल विश्वविद्यालयों में बल्कि हाई स्कूलों तक तो कम्प्यूटर पहुंच गया है, कारखानों और दफ्तरों में हिसाब किताब व वेतन का चिट्ठा बनाने में कम्प्यूटर काम में आता है। ट्रैफिक कन्ट्रोल और अपराधों की गवेषणा में कम्प्यूटर का उपयोग जल्दी ही होने लगेगा, कम्प्यूटर मी उपयोगिता और उसके डिजाइनों में इतनी तेजी से रद्दोबदल हो रही है कि कोई कम्पनी या दफ्तर उसे खरीदता नहीं, बल्कि किराये पर ही लेना चाहता है।

डिजाइन और मॉडल बदलते ही नया कम्प्यूटर मंगवा लिया जाता है। आम तौर पर एक मिनट के पांच डालर की दर से किराया वसूल किया जाता है जिसको कम करने के लिये बड़े पैमाने पर कम्प्यूटर के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। मौजूदा दर से भी 'उपयोग करने वाले को एक साल में लाखों डालर की बचत हो जाती

हैं। कम्प्यूटर पर काम करने वाले यू. एस. आई. क्लीयरेन्स कम्पनी के एक इन्जीनियर ने मुझे बताया कि कम्प्यूटर अलादीन का चिराग है जिसे एक दो इन्जीनियर पूरे दिन का काम नहीं दे सकते हैं। एक-एक साल के काम को यह कुछ ही क्षणों में कर देता है। कम्प्यूटर के साथ जवाब लिखने वाला यन्त्र एक मिनट में कम से कम छः सौ लाइनें टाइप कर लेता है।

अमरीकी कम्प्यूटर वैज्ञानिकों का दावा है कि सन् २००० तक वे देश में ऐसी स्थिति पैदा कर देंगे, जब कि मनुष्य के पास सोचने के सिवाय कोई काम नहीं रह जायगा। उद्योगों के संचालक अपने कर्मचारियों को घर बैठे इस बात का वेतन देंगे कि वे काम न मांगें। वे फिर भी आज के मुकाबले बहुत ज्यादा कमा सकेंगे। बहुत जल्दी ही यह तजवीज होने वाली है कि ड्राइवर को मोटर चलाने की जरूरत न पड़े। वह सड़कों, चौराहों और अन्य गन्तव्य स्थल का नम्बर कम्प्यूटर को बताकर मोटर में बैठ जाय और मंजिल पर पहुंच जाय!

— ७ जून, १९६८

केप केनेडी : मौत बटन में बन्द है

केप केनेडी अमरीका की धरती और अतलांतिक महासागर का सन्धिस्थल है, जिसमें मैंने जीवन और मरण का संधि-स्थल देखा और नई मानव सभ्यता के बीज भी देखे। पिछले हजारों वर्षों से मानव ने ज्ञान, शिल्प, कौशल आदि में जो कुछ खोजा और पाया है ,उसकी यहां चरम परि-णति देखने को मिली। मनुष्य ने यहां पहुंच कर जैसे सब कुछ हस्तगत कर लिया है, लेकिन उसकी भूख और जिज्ञासा भी उतनी ही बढ़ गई। उपलब्धि और सिद्धि का यह सर्वोच्च शिखर भी है और अनुसंधान का नया द्वार भी है। बटन दबाते ही धरती का गोलक जैसे खिसक कर महासागर में समा सकता है और बटन दबाते ही धरती का मानव ऊपर उठकर नये लोक में विहार कर सकता है। जीवन और मरण इसलिए यहां एक साथ मिले हुए दिखाई देते हैं, अलग-अलग बटनों में। जिन ज्ञानियों ने सभ्यता के आदि काल में सृष्टि को हस्तामल-

कवत् [हाथ में रखे हुए आंवले की तरह] साफ-साफ देख लिया था, उन्होंने भी प्रलय को एक वटन में नहीं देखा होगा, क्योंकि उन्होंने मृत्यु के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं माना, वल्कि उसे आत्मा का चोला वदलने का उपक्रम मात्र माना था और जीवन को सनातन, सतत् एवं चिर माना था। केप केनेडी में उस 'चिर' को खोजा जा रहा है, प्रत्यक्ष देखने का आग्रह है, उद्यम है, अध्यवसाय है तव तक मृत्यु का वटन भी कायम है और रहेगा। एक नये जौहर की तैयारी जैसी लगती है। जव तक इस मनुष्य को विजय की आशा है वह दौड़ता जायगा, चन्द्रमा पर, मंगल पर, शुक्र पर, केन्सर पर, गरीवी पर, अज्ञान पर धावा वोलता जायगा और विजय में अर्थात् जीवन में आस्था समाप्त होते ही मृत्यु का, संहार का वटन दवा देगा। अभी दांव जीत का चल रहा है। वह हार नहीं मानना चाहता, इसीलिए केप केनेडी में शायद वायु सेना के मुकावले नासा केन्द्र का आयोजन वढ़ा-चढ़ा है, अधिक सक्रिय है और उसका आधार अधिक व्यापक है। विजय के अभियान में सव साथ चलो और मृत्यु का व्यवसाय कुछ मुट्ठी भर लोगों [सैनिकों] पर छोड़ दो। केप केनेडी में मैंने यही देखा है। यह एक प्रतीक है।

मैं केप केनेडी के पास करीव चालीस मील दूर एक सराय में ठहरा हूं, कोको वीच पर। 'सराय' शव्द का प्रयोग मैं जानवूझ कर रहा हूं, क्योंकि अंग्रेजी के 'इन' शव्द का अर्थ हम सराय ही पढ़ते आये हैं, लेकिन यह सराय वैसी नहीं है, जैसी कि सर्वेन्तीज के डॉन क्विग्जोट के पराक्रमों की कहानियों में मिलती है या हमारे यहां की छवीली भटियारिन की कहानियों में वताई जाती है। यह परमाणु युग की अथवा अन्तरिक्ष युग की सराय है। यहां सराय और होटल में मैंने इतना ही फर्क देखा कि होटल शहर के वीचोवीच ऊंचे ऊंचे मकानों में होते हैं और सराय शहर के वाहर के राजमार्गों पर। सराय या तो एक मंजिल की या दो मंजिल की। सराय में ज्यादातर पर्यटक ठहरते हैं। मेरी सराय [रमादा इन] कोको - तट के वीचो-

बीच है। यहां से मैं घूमने निकला कल शाम को, कोई तीन मील तक घूम आया। चारों तरफ अन्तरिक्ष युग का प्रभाव। कहीं सेटेलाइट होटल है, तो कहीं मिसाइल मोटल है, तो कहीं पोलेरिस [समुद्र में छोड़े जाने वाले परमाणु प्रक्षेपणास्त्र] है, कहीं बोईंग कम्पनी का कार्यालय है तो कहीं स्पेस सेण्टर का। यहां जो कुछ है सब अन्तरिक्ष केन्द्र का या उससे सम्वन्धित है। कोको शहर की मूल आवादी करीब दस हजार है, लेकिन वाहर वाले अन्धा धुन्ध भरते जा रहे हैं। सारा शहर ही वदल गया है। यहां के रहने वाले वाहर वालों के सामने देहाती से लगते हैं और वहुत कम नजर आते हैं। कोको-तट नवीनतम अमरीका का नमूना है। नये से नये डिजाइन के मकान और साज-सामान हैं। पूरी आबादी पांच और दस साल के बीच वसी है। वैसे वायु सेना व नौ सेना का पड़ाव यहां १९४७ से ही है, लेकिन जब से अन्तरिक्ष केन्द्र की गतिविधि शुरू हुई, यहां असैनिक कार्यकलाप अनाप-शनाप बढ़ गया है। अन्तरिक्ष कार्यकलाप में लगभग तीस हजार व्यक्ति यहां काम कर रहे हैं, जिनके परिवार यहीं अलग अलग छोटे छोटे द्वीपों में रहते हैं, लेकिन ज्यादातर कोको शहर में। सभी द्वीपों का तेजी से एक साथ उद्धार हो गया है। अमरीका के बजट में हो रही कटौती का इतना ही प्रभाव यहां देखने में आया कि अन्तरिक्ष कार्यक्रम का विस्तार नहीं किया जा रहा है। पर्यटकों का दौर दौरा वैसा ही है। कोई पांच हजार पर्यटक रोजाना आते हैं और वे सिर्फ अमरीकी ही नहीं होते दुनिया भर के बड़े आदमी यहां आये दिन पहुंचते रहते हैं, लेकिन हमारे यहां की तरह कोई धूम-धड़ाका नहीं होता। अन्तरिक्ष कार्यक्रम के बारे में बीच बीच में कोई कांग्रेस सदस्य प्रतिकूल टीका-टिप्पणी कर देता है, किन्तु केप केनेडी उससे अप्रभावित ही है। इसी सप्ताह ऑर्लेण्डो में एक सम्पदा व्यवसायी ने अपनी इक्तीस जायदादें बेच कर २६०० एकड़ जमीन खरीदी है, जिस पर आधुनिकतम वस्ती बसाने के लिए उसने छः करोड़ डालर की धन-राशि लगाने की घोषणा की है। उस घोषणा में कहा गया है कि

अगर ऑर्लेण्डो को एक हजार कमरे वाले होटल की जरूरत होगी तो मैं पांच सौ कमरे नहीं बनाऊंगा।

अपने चुनाव अभियान में एक बार गरीबों की हिमायत में सीनेटर केनेडी ने चन्द्रयान पर कुछ हल्की सी टीका-टिप्पणी कर दी थी, तो उनका काफी मखौल उड़ाया गया। मुझसे ही बातचीत में कई लोगों ने कहा कि गरीबों की मदद करने से उन्हें कौन रोकता है। अमरीका में कमाई की कमी नहीं है। केनेडी के पास भी कमी नहीं है और हजारों अरबपति हैं। सरकार भी खर्च कर सकती है, लेकिन अन्तरिक्ष कार्यक्रम को स्थगित करने में क्या संगति है। इसी सप्ताह बेरी गोल्डवाटर [राष्ट्रपति पद के भू. पू. उम्मीदवार] ने इस स्पेस एकेडमी के स्नातकों को पुरस्कार बांटे। इस अवसर पर उन्होंने अन्तरिक्ष कार्यक्रम की जबर्दस्त हिमायत की और उसकी नुक्ता-चीनी करने वालों को पलायनवादी बताया।

नासा सूचना केन्द्र पर मेरी मुलाकात एसोसियेटेड प्रेस के स्थानीय ब्यूरो के प्रमुख जेम्स स्ट्राथमेन से हुई। उन्होंने बताया कि अमरीका का जनमत अन्तरिक्ष कार्यक्रम के पक्ष में है, अलबत्ता अमरीकी यह जरूर मानते हैं कि इस क्षेत्र में इक-तरफा दौड़ लगाने के बजाय उसका सर्वांगीण विकास किया जाय।

केप केनेडी में सैनिक और असैनिक दोनों ही तरह के अन्तरिक्ष केन्द्र तेजी पर हैं। सैनिक कार्यक्रम में चौदह हजार एकड़ भूमि और दस हजार जन शक्ति लगी हुई है तो असैनिक क्षेत्र में चौरासी हजार एकड़ भूमि और बीस हजार जन शक्ति व्यस्त है। इसी जून में वायुसेना अपनी संचार प्रणाली योजना के अन्तर्गत आठ उपग्रह वाला एक रॉकिट छोड़ने वाली है, तो नासा केन्द्र अगली जुलाई में चन्द्र यात्रा के लिए एक रॉकिट छोड़ने जा रहा है। वायु सेना अपने परमाणु अस्त्रों के भार, आकार, संचार, ईंधन, संचालन, प्रक्षेपण आदि में अग्रेतर गवेषणा कर रही है, तो नासा केन्द्र अन्तरिक्ष विज्ञान को जीवन के हर पहलू में उतारने के लिये आतुर है। वह चन्द्रमा पर मनुष्य भेज-

कर धरती और चांद की बनावट, तत्व-सम्बन्धों आदि का ज्ञान करना चाहता है और अन्ततः सम्पूर्ण सौर-मण्डल की रचना को जानने के लिये चन्द्रमा पर अपने अड्डे कायम करना चाहता है। नासा केन्द्र का कहना है कि हमें सौर-मण्डल से एक्सरे, रेडियो, टेलीविजन आदि मिले हैं, रेडियेशन का विज्ञान हमने सीखा है और भविष्य मे अमित लाभ की संभावनाएं छिपी हैं। ये वैज्ञानिक मनुष्य को सब तरह की आवश्यकताओं से मुक्त करने की धुन में हैं। नासा केन्द्र का बजट भारी भरकम है। एक अधिकारी ने मुझे बताया कि अगले साल चन्द्रमा पर मनुष्य को पहुंचाने तक करीब पच्चीस अरब डालर खर्च हो जायगा। लेकिन उससे कहीं ज्यादा वसूल भी होने में कोई कठि-नाई नहीं है। हम उद्योगों के जरिये इससे कई गुना कमा सकते हैं। यह पूंजी बेकार नहीं जायगी। जो कम्पनियां इस कार्यक्रम में भाग ले रही हैं, सिर्फ ठेके लेने के लिए नहीं, बल्कि अपना भविष्य बनाने के लिए नासा केन्द्र के साथ कदम मिलाकर चल रही हैं। उनके पास भी अपने अन्तरिक्ष विज्ञान-वेत्ता हैं, अनुसन्धान केन्द्र हैं और बजट हैं। यह एक सामूहिक एवं सर्वांगीण विकास कार्यक्रम है। उसे चलाने का हमारा अपना तरीका है। हम आर्थिक शक्ति को शान्ति काल में प्राइवेट सेक्टर में रखते हैं और सरकार के हाथ में केवल राजनीतिक सत्ता रखते हैं। युद्ध अथवा संकट काल में सरकार सब अधिकार प्राप्त कर लेती है। उदाहरण के लिए द्वितीय युद्ध में समस्त रेलें सरकार ने कम्पनियों के पास से ले ली थीं और कई उद्योग भी। हम यह पसन्द नहीं करते हैं और फलदायक भी नहीं मानते कि सामान्य काल में सर-कार का दखल आर्थिक क्षेत्र में रहे। यही सफलता की कुंजी है।

मुझसे फिर नहीं रहा गया पूछ बैठा—अगर प्राइवेट सेक्टर ईमानदारी से काम न करे तो? क्या उस पर भरोसा किया जाना चाहिए? अब की मुझे जरा मुश्किल का सामना करना पड़ा। मेरे प्रश्न का जवाब मिला अगर प्राइवेट सेक्टर ईमानदारी से काम नहीं करता है तो यह जिम्मेदारी सरकार की है। इसका मतलब यह समझा

ज़ायेगा कि शासनतन्त्र में कहीं खोट है। हम ग्यारह करोड़ मतदाताओं की सत्ता अपनी सरकार के हाथ में हर चार साल में देते हैं। अगर समाज का कोई एक वर्ग समाज या देश के हितों पर आघात करता है तो सरकार के पास इतनी सत्ता है कि वह उस पर अंकुश लगा सके, बशर्ते कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो; अगर सरकार भी ठीक ढंग से काम न करे तो हम उसे बदल देते हैं, लेकिन यह बर्दाश्त नहीं करेंगे कि सरकार आर्थिक क्षेत्र पर अपना नियन्त्रण करे और लोगों के अवसर ही बन्द हो जांय। राजनीतिक और आर्थिक दोनों सत्ताओं का एक जगह केन्द्रित हो जाना समाज का पंगु हो जाना है। इस पद्धति में राज्य समाज के लिए है, न कि समाज राज्य के लिए।

मुझसे उन अफसर महोदय ने उलट कर सवाल पूछा—जरा बताइए कि अन्तरिक्ष कार्यक्रम में भाग लेने वाली कम्पनियां समाज या देश का क्या अहित कर सकती हैं? आप यही कहेंगे कि कमाई करेंगी, लेकिन इससे क्या नुकसान है, बल्कि वह कमाई आगे बढ़ने के काम आयेगी। उससे कोई नयी चीज पैदा होगी, नासा केन्द्र की उपलब्धि होगी, चन्द्रमा पर मनुष्य को उतारना संभव होगा और उधर समाज को मिलेंगे नाना प्रकार के उपकरण और उद्योगों को मिलेगा आगे बढ़ने का बल, अवसर और धन।

मैं कुछ सोच में पड़ गया। विषयान्तर भी हो रहा था और विषय भी बड़े विवाद का था। इस बात को आगे नहीं बढ़ाया। सोचने लगा कि हम तो अभी टेलीविजन को भी दिल्ली से बाहर नहीं भेज सके। १९६४ में सूचना मन्त्री के रूप में इन्दिरा जी ने पंचवर्षीय योजना में एक सौ करोड़ रुपये इस कार्यक्रम के लिए मांगे। चारों ओर चिल्लपों मच गई। आकाशवाणी को स्वायत्त निगम बनाने की बात भी चलती रहती है लेकिन क्या इससे कुछ बनेगा? ऐसे कई सवाल हैं जिनका जवाब हमें ढूंढना है।

— १० जून, १९६८
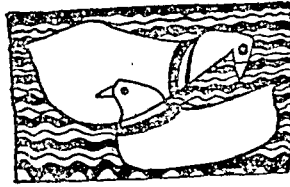
नासा केन्द्र : जीवन की दौड़ में

अमरीका में एक महीना बिताने के बाद यह पहिला अवसर था जब कि किसी चीज को देख कर मेरे दिमाग में हलचल पैदा हुई, कौतुक और कौतुहल पैदा हुआ, जिज्ञासा पैदा हुई और सनसनी भी लगी। अब तक मैंने बड़ी बड़ी चीजें देखी। वाशिंगटन के बड़े बड़े दफ्तर, स्मारक, संग्रहालय, न्यूयार्क की गगनचुंबी अट्टालिकाएं, सुपर हाई वे, मोटरों की बहती नदियां, अपार समृद्धि, ओपेरा थियेटर, भीमकाय मशीनें, विशाल कारखाने और न जाने क्या क्या। तरह तरह की वेश भूषाओं में तरह तरह की भाव-भंगिमा वाले स्त्री-पुरुषों को देखा, कम्प्यूटरों से गिने जाने वाले अनसुने आंकड़े सुने। आलीशान होटल व सार्वजनिक स्थान भी देखे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं लगा, जिसे मैं अपने लिए कौतुकपूर्ण समझूं। मेरे कुछ मेजवानों को तो यह भी सुन कर अचरज हुआ कि मुझे अमरीका में कोई अचरज नहीं लगा। केप केनेडी और वहां का अन्तरिक्ष केन्द्र देखने के बाद मेरे मानस पर सचमुच असाधारण प्रभाव पड़ा और एक नई अनुभूति हुई।

विस्तार में जाने से पहिले में आपको बता देना चाहूंगा कि अन्तरिक्ष केन्द्र को मुझे वहां के अफसरों ने वहुत ही अच्छी तरह दिखाया। ऐसी कोई चीज नहीं थी, जो मैंने देखनी चाही और उन्होंने छिपाने की कोशिश की हो। वैसे अन्तरिक्ष केन्द्र देखने के लिए जनता को आने दिया जाता है और उसी तरह दिखाया जाता है जिस तरह कि संग्रहालय और ऐतिहासिक स्मारक दिखाये जाते हैं, लेकिन आम जनता को उन स्थानों या भवनों के भीतर नहीं जाने दिया जाता, जहां वास्तविक काम होता रहता है, रॉकेट तैयार होते हैं और छोड़े जाते हैं। इन स्थानों पर विशेष अतिथियों को ही ले जाने की स्वीकृति है।

इकतीस मई को सुबह ही ठीक साढ़े आठ बजे राष्ट्रीय अन्तरिक्ष एवं वायु शक्ति केन्द्र के एक अधिकारी मुझे अपने विश्राम स्थान से लिवा ले गये। ऑर्लेण्डो हवाई अड्डे से वावन मील दूर मेरा होटल था – कोको तट पर और वहां से करीव चालीस मील दूर पर मेरी मंजिल थी। मौसम भी वदला हुआ था। एक महीने के ठीक बाद मैंने महसूस किया कि अमरीका में गर्मी है। तीस अप्रेल को मैं लन्दन में वरसात और सर्दी के बीच उतरा था और तीस मई को टेनेसी घाटी में वादल और वरसात की ठण्ड छोड़ कर आधी रात को ईस्टर्न एयर लाइन्स के विमान से केप केनेडी देखने के लिए ऑर्लेण्डो हवाई अडडे पर उतरा था। इस बीच एक महीने तक पचास और साठ डिग्री तापमान में रहा जो यहां आते ही अस्सी डिग्री [फा.] पहुंच गया। मुझे कोट पहिनने की जरूरत नहीं पड़ी, इसलिए रवाना होते समय मैंने अपनी सांगानेरी छपाई का एक मात्र बुशर्ट ही पहिना। पूरे एक महीने के वाद सिर्फ मौसम ही नहीं यहां आने पर घड़ी की सुई भी वदल गई। शिकागो और इण्डियाना से यहां का समय एक घण्टे पीछे रहता है। अस्तु।

करीव साढ़े नौ वजे हम केप केनेडी में दाखिल हुए। मेरे अफसर साथी ने जानना चाहा कि क्या मुझे अन्तरिक्ष केन्द्र के किसी

पदाधिकारी से मिलना है। मैंने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई तो उन्होंने अपना दिग्दर्शन शुरू किया। सबसे पहले वे मुझे वायु सेना के उस केन्द्र पर ले गये जहां एक गोलाकार भूखण्ड पर अनेक प्रकार के रॉकेट, प्रक्षेपण-अस्त्र और तरह तरह के शस्त्रास्त्र, वाहन और यन्त्र रखे थे। वह लॉञ्चिग पेड दिखाया जहां से एटलस रॉकेट द्वारा पहिला अमरीकी यात्री अन्तरिक्ष में उड़ा था।

वह पेड भी देखा, जहां से पहिला रॉकेट उड़ कर चांद पर उतरा था। उन्होंने मुझे आस पास के घेरे की जानकारी दी और बताया कि कौनसा जलपोत समुद्र में खड़े खड़े रॉकेटों की अन्तरिक्ष में गतिविधि की टोह लेता रहता है, किस तरह आकाश में हेलीकोप्टर और विमान गश्त लगा लगा कर उड़ान केन्द्र की चौकस रखते हैं, कहां केमरे लगे रहते हैं और कहां ईंधन भरा रहता है, जो तरल होता है। वायु सेना के पास करीव चवदा हजार एकड़ क्षेत्र है, जिसके चारों ओर विजली के करेन्ट वाले तार लगे रहते हैं। उनको लंकाकाण्ड में वर्णित ब्रह्मजाल कहा जा सकता है। रॉकेटों के नाम भी यहां दानवों के नाम पर रखे हुए हैं। एटलस, टाइटन आदि के नाम हम सुन चुके हैं। मैंने देखा कि सड़कों पर लगातार सुरक्षा दल की गश्ती मोटरें घूमती फिरती हैं। प्रवेश के समय हमारे अनुमति-पत्र भी अच्छी तरह उलट पुलट कर देखे गये थे। मुझे एक नक्शे के जरिये यह बताया गया कि अन्तरिक्ष यानों और अन्य अस्त्रों की गतिविधि की पड़ताल के लिए केप केनेडी के उड़ान केन्द्र के पूर्व में हिन्द-महासागर के वीच तक जगह जगह अड्डे वने हुए हैं। मुझे ऐसे रॉकेट का एक नमूना भी दिखाया गया जिसका केन्द्र टर्की में नाटो कमान के आधीन है। वायु सेना क्षेत्र में करीव एक घण्टे घूमने के वाद मैं नासा के अन्तरिक्ष केन्द्र में गया, जो अमरीका के अन्तरिक्ष विज्ञान की वास्तविक धुरी है। यही वास्तविक स्थान है जिसे देखने के लिये कई देशों के सम्राट, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और अन्य सम्भ्रान्त व्यक्ति आते रहते हैं। समूचा क्षेत्र करीव चौरासी हजार

एकड़ में फैला हुआ है।

नासा के इस केन्द्र में असैनिक कार्यों के लिये रॉकेटों और अन्तरिक्ष यानों का निर्माण एवं परीक्षण किया जाता है। यह वह केन्द्र है जिसमें अमरीका का सारा वैज्ञानिक ज्ञान, धन और जन वल लगा हुआ है। करीव वीस हजार वैज्ञानिक, इंजीनियर, मिस्त्री, ओद्यौगिक जानकार और अधिकारी इस केन्द्र में काम करते हैं, जिसकी क्षमता वायु सेना के केन्द्र से दुगुनी है। कदम कदम पर यहां प्रवेश-पत्र की जांच की जाती है। वसों में भर कर दर्शक यहां आते हैं, लेकिन उनको भीतर वहां तक नहीं जाने दिया जाता जहां कि रॉकेट वनते हैं। वस में वैठे हुए देखते रहते हैं इस केन्द्र को। सवसे पहिले मैं उस भवन में गया, जहां विदेशी दर्शक भी उतर सकते हैं। यहां नमूने के तौर पर रॉकेट और अन्तरिक्ष यान संग्रहालय के भीतर रखे हुए हैं। उनका परिचय और इतिहास लिखा हुआ है। अन्तरिक्ष यात्रियों की अलग अलग ग्रहों संवंधी पोशाकें दिखाई गई हैं और रॉकेट का एक एक अंग दिखाया गया है। मुझे वास्तविकता का दर्शन कराया गया।

मैं एक भवन में गया जहां अन्तरिक्ष यात्री को यान में वैठने की ट्रेनिंग दी जाती है। उसे यान का यन्त्र जाल समझाया जाता है। उसे भीतर विठाकर यन्त्र-चालित विशाल केमरों के जरिये यह प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है कि अन्तरिक्ष में जाने के वाद धरती व अन्य ग्रह कैसे लगते हैं। उसे यह सिद्ध कराया जाता है कि चन्द्रमा का धरातल दूर से और नजदीक से कैसा लगता है। विशाल कक्ष में एक तरफ कन्ट्रोल पेनल पर वैठे हुए इन्जीनियर और वैज्ञानिक अन्तरिक्ष यात्री से पेचीदे सवाल करते हैं और उसे भरमाने की कोशिश की जाती है। उसे अन्तरिक्ष की पोशाक पहिनने एवं सभी आवश्यक वस्तुओं के उपयोग का अभ्यास कराया जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि वास्तविक उड़ान के सिवाय उसे सव तरह का अनुभव धरती पर करा दिया जाता है।

यहां से हम मुख्य भवन में पहुंचे। मुझे एक इस्पात का टोप

पहिनने को दे दिया गया और चेतावनी दे दी गई कि अगर बहुत ऊंची इमारत पर बड़े लिफ्ट से तेज चढ़ने उतरने में कोई स्नायविक कठिनाई महसूस हो तो तुरन्त बताइए। यह भवन अन्तरिक्ष यानों एवं रॉकेटों के टेकनीक का मुख्य केन्द्र है, जहां उन्हें जोड़ कर उड़ान के लिये अन्तिम रूप दे दिया जाता है। यहीं आकर मुझे महसूस हुआ कि अंतरिक्ष विज्ञान के विकास में अमरीकी जनता प्रत्यक्ष रूप से भागीदार है। मुझे बताया गया कि दर्जनों कम्पनियां अपने-अपने व्यवसाय में आगे बढ़ने के लिए इस काम में हाथ बंटाती हैं और इस विज्ञान को रोजमर्रा की जिन्दगी में लाने के लिए होड़ कर रही हैं। रॉकेट और यानों के निर्माण में वे योग देती हैं। हर एक रॉकेट-खण्ड बाहर से बन कर इस भवन में आता है और जोड़ा जाता है। कोई खण्ड बोइंग कम्पनी का है, तो कोई क्रिसलर का, तो कोई लॉकहीड का और कोई आई. बी. एम. का है। अपने-अपने कारखानों में निर्धारित नमूने ओर मापदण्ड के अनुसार ये कम्पनियां सामान बना बना कर अन्तरिक्ष केन्द्र को देती हैं। हर कम्पनी का एक अलग अन्तरिक्ष विभाग और अनुसन्धान केन्द्र है जो इस काम में लगा हुआ है। वे यहां से सीखते भी हैं कमाते भी हैं; और अपने अनुभव से नये-नये उत्पादन करके बाजारों में, खेतों में और कारखानों से पहुंचाते भी हैं। अमरीका का नवीनतम यन्त्र दिमागी-गुलाम [कम्प्यूटर] इसी अन्तरिक्ष केन्द्र की देन है। आज वह व्यवसायिक वस्तु बन गया है और जीवन के हर क्षेत्र में काम आ रहा है। कल कोई दूसरी चीज सामने आ जायेगी।

हम लोग अपने देश में यही सुनते रहे हैं कि युद्धों के विस्तार में अमरीका के शस्त्र कारखानों का निहित स्वार्थ है लेकिन यहां आकर देखें तो पता लग सकता है कि औद्योगिक क्षेत्र में दैनिक असैनिक जीवन के लिए परमाणु एवं रॉकेट विज्ञान ने कितना उलट फेर कर दिया है और भविष्य में भी करता ही जायगा। यह तभी सम्भव था जब कि इस विज्ञान व टेकनीक का विकास व्यापक सहयोग के आधार

पर होता। केवल वायु सेना के हाथ में एकाधिकार होने से सामरिक शक्ति तो वढ़ती लेकिन वह एकांगी विकास ही होता और असैनिक समाज उस विकास के लाभ एवं उपयोग से वंचित ही रह जाता। टेनेसी राज्य के ओकरेज शहर में मैंने वह स्थान भी देखा जहां अमरीका ने १९४२ में पहिले अणुवम का परीक्षण किया था और १९४५ के युद्ध में हीरोशिमा पर फेंका था। आज भी वहां अनेक प्रकार के अग्रिम अनुसन्धान हो रहे हैं लेकिन दूसरी ओर उद्योगों में परमाणु व परमाणु–भौतिकी विज्ञान कितना आगे वढ़ गया है यह भी यहां आकर देखा जा सकता है। यूनियन कार्वाइड ने ओकरेज के परमाणु–संग्रहालय में अपने अनुसन्धान का अच्छा खासा प्रदर्शन कर रखा है। [हम लोग ट्रांजिस्टर और वेट्रियों में यूनियन कार्वाइड के सेल काम लेते हैं जिनमें अव आइसोटोप्स का उपयोग होने लगेगा।] उद्योगों के अलावा अमरीका में खेती, चिकित्सा, शिक्षादि सभी क्षेत्रों में अन्तरिक्ष विज्ञान तेजी से रद्दोवदल करता जा रहा है।

वह दानवी रॉकेट जो धरती पर एक घण्टे में सिर्फ आधा मील चल सकता है। एक साल वाद वह चांद पर जा पहुंचेगा, पहले भी कई पहुंचे हैं लेकिन अव वह तीन धरती के सपूतों को वहां उतारने जायेगा और उतारने के वाद वह चन्द्रमा की ही कक्षा में परिक्रमा करते करते जल जायेगा। चोईस घण्टे चांद पर पड़ाव रखने के वाद वे तीनों धरती के लाल अपने वापिस आने का वन्दोवस्त खुद करेंगे। उनके पास लौटने का पूरा सरंजाम होगा। कैसा होगा, वह अनुभव रोमांचकारी! चांद के सारे स्वप्निल इतिहास को वदल देने वाला, हजारों साल पहिले किसी कवि ने चांद में रूपवती नारी के चेहरे की कल्पना का आरोपण किया था। १९६९ का मनुष्य उसे छूकर, चूम कर आश्वस्त होना चाहेगा और तभी उसका मूल्यांकन करेगा। हम उत्सुकता से वाट देखेंगे, १९६९ के मनुष्य के अनुभव सुनने की।

— १२ जून, १९६८

देखें, चांद का मुखड़ा कैसा है ?

नासा के मुख्य भवन में जो रॉकेट जोड़े जाते हैं उसके खण्ड कम्पनियां बनाकर यहां लाती हैं। मैं जिस समय गया, बोइंग कम्पनी का तैयार किया गया हुआ रॉकेट का एक ऊपरी भाग एक अन्य भवन के बाहर रखा हुआ था। ये खण्ड इतने विशाल होते हैं कि उनको सड़कों या रेलों से दूर दूर तक नहीं ढोया जा सकता। उनको विशाल जलपोतों में लादकर यहां पहुंचाया जाता है और बाद में उनकी जांच पड़ताल की जाती है। पाठकों को मालूम होगा कि राणा प्रताप सागर के परमाणु बिजली घर के लिये आयात होने वाले कई खण्डों को ढोने के लिये भारी भार-वाहक सड़कें और सवारियों की योजना बनाई गई थी। उनके मुकाबले रॉकेटों का वजन और आकार कहीं अधिक है।

आजकल यहां सेटर्न ५ और अपोलो रॉकेट यान का निर्माण हो रहा है। यही रॉकेट यान अगले साल तीन

अन्तरिक्ष यात्रियों को लेकर चन्द्रमा की उड़ान भरेगा। रॉकेट का निर्माण दिखाने के पहिले मुझे उन विशाल कक्षों में ले जाया गया, जहां से कम्प्यूटरों, टेलीविजनों और अनेक अन्य यन्त्रों के द्वारा फायरिंग कन्ट्रोल होता है। देखकर दिमाग चकराता है। मुझे बताया गया कि रॉकेट की उड़ान के समय कोई चार सौ वैज्ञानिक, इंजिनीयर व प्राविधिक विशेषज्ञ इस कक्ष में अलग अलग यन्त्रों पर सम्भल कर बैठते हैं और फायरिंग का संचालन करते हैं। इसी कक्ष से साढ़े तीन मील दूर लॉञ्चिंग पेड पर लगे हुए रॉकेट को उड़ान का आदेश दिया जाता है और बटन दबा दिया जाता है। एक अजीब माया नगरी का दृश्य है मेरे लिये। जानकार के लिये बहुत कुछ और अनजान के लिये सिर्फ तमाशा। मुझे कक्ष के भीतर भी ले जाया गया और एकोएक यन्त्र दिखाया गया। हर एक यन्त्र पेचीदा, हर एक के पास एक कम्प्यूटर, मशीन, टेलीविजन, टेलीफोन और कुर्सी। मेरे कुछ समझ में नहीं आया। टेलीविजन चलाया गया लेकिन कोई तस्वीर नहीं, सिर्फ आंकड़ों में बात होती है। आंकड़े कम्प्यूटर से छपते हैं। दृष्टिगम्य सब कुछ, लेकिन बुद्धिगम्य कुछ नहीं।

अब उस भवन में प्रवेश हुआ जिनमें सेटर्न व अपोलो का निर्माण कार्य चल रहा था। पांच सौ पच्चीस फीट ऊंचा और तीन सौ पच्चीस फीट चौड़ा एक ही हॉल। चारों ओर इस्पात के चौखट जैसे हावड़ा पुल को अलग अलग खोल कर खड़ा कर दिया गया हो। एक रॉकेट का खण्ड खड़ा हुआ था। एक सौ पिचियासी फीट ऊंचा। तेंतीस फीट व्यास [डाय-मीटर] करीब करीब दो तिहाई कुतुबमीनार। चारों और इस्पात के चौखट जिस तरह हमारे यहां ऊंची पानी की टंकी बनाने के लिए लकड़ी के पेटे बांधे जाते हैं। हर दस फीट पर एक फौलादी घेरा। इस तरह करीब अट्ठारह मंजिली फौलादी चोखटें बनी हुई। हर मंजिल में रॉकेट के घेरे में सैकड़ों लोग काम करते हुए। पूरे हॉल में कोई चार हजार पांच सौ आदमी काम करते हुए। पांच सौ पच्चीस फीट ऊंची फौलादी छत पर घर्र घर्र

क्रेन चल रहे हैं और अपने दानवी दांत में कुछ दबाये लटकाये चल रहे हैं। मुझे फौलाद का टोप तो पहिना दिया लेकिन उसका क्या मतलब, वह किस चीज से मेरी रक्षा कर सकता है? क्रेन से? बिल्कुल नहीं। सभी लोग वहां फौलादी टोप पहिने हुए थे किन्तु मेरी समझ में उसका उपयोग एक वर्दी के सिवाय कुछ नहीं था। फिर भी पहिने था। कामकाज था। शायद सिर को किसी फौलादी छड़ से बचाने के ही काम आये। अमरीका के कारखानों में दूसरी जगहों पर भी गया था तो मेरी आंखों पर विना नम्बर का चश्मा जरूर लगाया गया। काम का था, आंखों के वचाव के लिये। यही बात शायद यहां भी थी।

रॉकेट बन रहा था। तीन खण्ड का बनेगा। दूसरे दो खण्ड इसी हॉल में अलग अलग बन रहे हैं। पूरी लम्बाई तीन सौ पचास फीट। बनने का भी एक हैरत-अंगेज तरीका। इस हॉल से जिस रूप में उड़ान पीठ [लॉञ्चिग पेड] तक ले जाया जायगा। उसी रूप में बन रहा है। अर्थात उसका प्लेटफार्म पहिले तैयार हुआ जो करीब तीन हजार टन का था, उस पर पैंतीस मंजिल ऊंचा फौलादी कटघरा और उससे सटा हुआ रॉकेट। प्लेटफार्म पर ऐसा खड़ा हुआ जिस तरह हमारे यहां रामलीला में रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद बनते हैं। पूरे ढांचे का वजन करीढ़ नौ हजार टन। प्लेटफार्म के नीचे फौलादी चेन-वाले पहिये जिनको टेंकों के पहियों का बड़ा रूप कहा जा सकता है। यों का यों सारा ढांचा इस भवन से तैयार होकर निकलेगा। चलने के लिए एक सौ पचास फीट चौड़ी सड़कें जिन पर मोटी मोटी गोल कंक-रियां बिछी हुई हैं। छोटे आकार के सालिग्रामजी की तरह की। सड़कें सात फीट मोटी कंकरीट से तैयार की गईं। चलने की रफ्तार एक घण्टे में करीव आधा मील। उड़ान की जगह पहुंचते पहुंचते सात घण्टे लगेंगे। राज की सवारी भी इतनी शान से क्या चलेगी! जिस समय श्रीमानजी अपनी ड्योढ़ी से निकलेंगे तो तीन मील की दूरी तक मनुष्य नाम के प्राणी से सड़कें मुक्त करदी जायेंगी। लॉञ्चिग पेड से साढ़े

तीन मील तक के घेरे में इन्सान का बच्चा भी नहीं रहेगा।

मुझे याद आने लगी पुराणों की कथाएं—मेघनाद की चौरासी योजन की छाती, सहस्र बाहु अर्जुन के हजार महाभारत का शकटासुर। लगा कि सभी कहानियां सच हैं। आखिर पुराणों के लेखकों ने यह कल्पना तो की थी। मैं तो आज भी इतनी बड़ी कल्पनाएं नहीं कर सकता। रामायण में पढ़ा है कि रावण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा और भगवान राम ने वरुणास्त्र छोड़ कर उसे व्यर्थ कर दिया। महाभारत में अर्जुन ने बाण से पाताल तोड़ कर घोड़ों की प्यास बुझाई। राम रावण ने भी मिसाइल ही छोड़े होंगे और अर्जुन ने भी भूमिगत रॉकेट ही मारा होगा। भगवान जाने क्या था। तोबा! जरा आप भी कल्पना कीजिये यह रॉकेट, जिसके पैंदे के पांच शक्ति-इंजिनों में बटन दबते ही प्रलयंकारी आग लगेगी और गगनभेदी हुंकार के सात इक्कीस हजार मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चन्द्रमा की ओर लपकेगा—जिसकी नोक पर तीन हमारे ही जैसे मनुष्य बैठे बैठे अपनी जन्म कुण्डली और कर्मों का फल ही देखते होंगे? जो लोग परलोक को नहीं मानते वे परलोक जा रहे हैं। चांद पर, मंगल पर, शुक्र पर! खैर।

जिस रॉकेट का मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसका लॉञ्चिंग-पेड भी जाकर देखा। रॉकेट को ले जाने वाला एक शकट वहां खड़ा था। मुझे लॉञ्चिंग की प्रक्रिया समझाई गई, मोटे तौर पर, क्योंकि बारीकियों को समझना मेरे बस की बात नहीं थी। पेड पर ठीक उस जगह गया जहां रॉकेट के नीचे एक गहरी चौड़ी कंकरीट की खाई बनी होती है। पास ही में एक फौलादी शील्ड पड़ी थी। बच्चों की फिसलनी की तरह—लेकिन लम्बी चौड़ी। रॉकेट के नीचे लाकर रखी जाती है। इस फौलादी तम्बू की चोटी पर रॉकेट के चलते ही झुलसाने वाले धुंएं की पहली फटकार पड़ती है जो तम्बू के दोनों तरफ खाई में फैल जाती है। खाई के दोनों रास्ते ढलाऊ होते हैं जो धुंएं की फटकार को कमजोर करने के लिए बनाये गये हैं।

थोड़ी दूर पर अर्थात् आधे मील पर एक पंपिंग स्टेशन है जहां से खाई में और आस-पास की जमीन में लबालब पानी भर दिया जाता है।

उड़ान के कुछ ही मिनटों पहिले पंपिंग स्टेशन चलने लगता है और देखते ही देखते बाढ़ आ जाती है। लॉञ्चिग-पेड के दोनों ओर दो विशाल गुम्वद, ताजमहल के बड़े गुम्वद के आकार के, बने हुए हैं। एक में तरल हाइड्रोजन और दूसरे में तरल ऑक्सीजन भरा हुआ है। तरल ईंधन की नलिकाओं को साफ करने के लिए तरल नाइट्रोजन काम में लिया जाता है। उड़ान के पहिले ही कई दिनों तक उसकी घोषणा की जाती है। समुद्र के किनारे जन साधारण की भीड़ कतारों में जमा हो जाती है। फायरिंग कन्ट्रोल रूम से कुछ दूरी पर प्रेस गेलेरी बनी हुई है। आम तौर पर छह सौ पत्रकार जमा हो जाते हैं। १९-६१ से यही क्रम चला आ रहा है। केप केनेडी के पास कोको-बीच पर दुनिया के सभी बड़े अखबारों के संवाददाता स्थायी रूप से रहते हैं या आ जाते हैं। संवाददाताओं के अलावा कुछ संभ्रान्त व्यक्तियों को निमंत्रित भी किया जाता है। सव कुछ खुला हुआ है। गोपनीयता भी है लेकिन टेकनोलोजी में बिल्कुल नहीं। गवेषणाओं के परिणाम सभी को प्राप्त हैं। फॉर्मूले जव तक सफल नहीं होते तब तक गुप्त रहते हैं। सफल होते ही ढोल बजा बजा कर बताये जाते हैं। इसी तरह पिछले आठ सालों से उड़ानें भी बताई जा रही हैं। फायरिंग कन्ट्रोल रूम से आदेश के साथ स्विच दवते ही एक कर्ण-भेदी विस्फोट, बिजली की सी कौंध और काली पीली घटाओं की आंधी के उमड़ने-घुमड़ने के साथ पलक मारते ही रॉकेट लपकता है और अन्तर्धान हो जाता है।

— १३ जून, १९६८
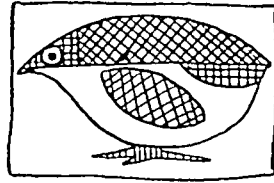
न्यू आर्लियन्स : निराला ही रंग

अमरीका के दूसरे बड़े बन्दरगाह न्यू आर्लियन्स और जयपुर में भी कोई समानता हो सकती है, यह जानकर पाठकों को खुशी होगी। दक्षिण अमरीका के प्रमुख शहर न्यू आर्लियन्स के हवाई अड्डे पर उतरते ही जब मैंने अपने होटल का नाम लिमूजिन के ड्राइवर के सामने लिया तो वह कुछ समझ ही नहीं सका। तब मैंने उसके सामने मेरे कार्यक्रम की टाइप की हुई एक प्रतिलिपि पेश की और खुशी से उसने मेरा सामान उठा लिया। होटल का नाम था वीवूकारे जिसे अंग्रेजी में पढ़ने पर मैं 'व्यूक्स' बोलता था। यह एक फ्रान्सीसी भाषा का शब्द है। मेरे लिये यह होटल ठीक करने में अमरीकी विदेश विभाग के अधिकारियों ने एक खास दृष्टिकोण रखा था।

यह कहने की जरूरत नहीं कि यह होटल भी शहर के बीचोबीच था, लेकिन यह ऐसा इलाका है जिसे कानूनी तौर पर अठारहवीं सदी के फ्रान्सीसी शहर की शक्ल में ही रखा जा रहा है। यह इलाका फ्रेन्च क्वार्टर के रूप में प्रसिद्ध है। क्वार्टर को मैं जयपुर की सजा-

वट के लिहाज से चौकड़ी कह सकता हूं। न्यू आर्लियन्स की एक चौकड़ी फ्रान्स की पुरानी वस्ती की तरह रखी जा रही है, जो करीव करीव जयपुर शहर की चौकड़ियों के वरावर होगी। फ्रेन्च क्वार्टर में पूरा घूमने के वाद भी मैं कोई ऊंचा मकान नहीं देख पाया, अर्थात् दो मंजिल से ज्यादा; कोई कोई मकान तीन मंजिल भी ऊंचा था। इन मकानों के नमूने कलकत्ता के वड़े वाजार के मकानों से कुछ मिल सकते हैं। केवल आकार का ही फर्क है। वड़ी वड़ी ढली हुई लोहे की वालकनियां, केलू की छतें, पुराने डिजाइन के दरवाजे, छोटी खिड़कियां, मकानों के भीतर, वीच में या पिछवाड़े में छोटा सा चौक, जिसमें फुलवाड़ी एक जरूरी चीज है। दरवाजों के वाहर गैस की रोशनी, लोहे के खंभे पर—जैसी कि किसी पुरानी हवेली के वाहर दोनों ओर जयपुर में देखी जा सकती है। किसी किसी मकान के वाहर सूत की वत्ती वाली रोशनी भी जलती नजर आयगी और दिन में ही। यह दृश्य खासतौर पर रेस्तरां या नाइट क्लव के वाहर देखने को मिलेगा। फ्रेन्च क्वार्टर में सड़कें अर्थात् गलियां भी उतनी ही चौड़ी हैं जितनी कि जयपुर की। मुख्य वाजार वेहद चौड़ा है और दोनों ओर सीधी गलियां और समकोण चौराहे हैं। जिस तरह जयपुर में कानूनी तौर पर रंग को गुलावी रखा जा रहा है, उसी तरह फ्रेन्च क्वार्टर को अठारहवीं सदी फ्रान्सीसी स्थापत्य के नमूने पर रखा जा रहा है। कुछ पुराने रईसों के मकानों को राज्य सरकार ने अवाप्त कर लिया है और उनको अपने मूल रूप में सजा कर रखा जा रहा है, जैसे जयपुर में सीसोदिया रानी के वाग को रखा जा रहा है। फ्रान्सीसी ढंग का ही एक मछली वाजार है, कुछ कॉफी की दुकानें हैं और पार्क हैं। मैं शनिवार और रविवार की छुट्टी के दिनों में यहां रहा, लेकिन फ्रेन्च क्वार्टर में वाजार वन्द होने के वावजूद वाहरी लोगों की भीड़ कम नहीं थी। दूर दूर से इस वस्ती को देखने के लिए और यहां के नाइट क्लवों की सैर करने के लिए हजारों स्त्री-पुरुष रोजाना आते हैं। फ्रेन्च क्वार्टर में ऊपरी तौर पर ही पुरानापन लगता है, लेकिन

मकानों के भीतर पहुंचते ही आप एकदम नई दुनिया में पहुंच जाते हैं। पांच सौ वर्ष के छोटे से इतिहास वाले अमरीकी नागरिकों के इतिहास-प्रेम की पूरी कीमत वसूल करने के लिये न्यू आर्लियन्स के रेस्तरां और नाइट क्लब हर घड़ी सजधज कर तैयार रहते हैं। जिसको अमरीका का इतिहास कहा जाता है, वह भी तो इतना नया है कि रॉबर्ट केनेडी ने इसे एक बार नेशन ऑफ माइग्रेटर्स [विदेशियों का देश] तक कहा है। इंगलैण्ड, स्पेन, फ्रान्स, इटली, पोलेंड, मेक्सिको आदि देशों के लोगों से बसा हुआ देश अमरीका है लेकिन इस इतिहास को अपनाने में अमरीका ने जो अनुराग दिखाया एवं उद्यम किया है, वह कमाल है। इसका एक नमूना मैं विलियम्स वर्ग के रूप में आपके सामने पहले पेश कर चुका हूं। फ्रेन्च क्वार्टर दूसरा नमूना है। अमरीकी लोग इतिहास के नाम पर मरते हैं शायद इसलिए कि इस देश का जन साधारण वर्तमान की चिन्ता से मुक्त है और वह फुर्सत के साथ अतीत में झांक सकता है। भविष्य की चिंता भी उसे नहीं सताती।

न्यू आर्लियन्स के सम्बन्ध में मुझे सरकारी और गैर-सरकारी सूत्रों से जितनी भी सूचनाएं और पुस्तिकाएं मिलीं उनमें जोर-शोर से सिफारिश की गई थी कि मैं फ्रेन्च क्वार्टर को जरूर देखूं। उसके रेस्तरां और नाइट क्लबों में बैठूं और बगीचों में सैर करूं। बेशक इन सिफारिशों पर मैंने खुशी से अमल किया और कुछ दूसरी जिन्दगी को भी देखा। भारत के प्रवासियों से मिला, नीग्रो लोगों की बस्ती में गया, एक साप्ताहिक समाचार पत्र के कार्यालय में गया, मिशिगन नदी के एक विशाल जलपोत 'एस. एस. प्रेसीडेण्ट' पर चढ़ कर बन्दरगाह के चारों ओर घूमा और शहर में पैदल घूमा। एक ऊंचे टॉवर पर चढ़ कर घूमते हुए कॉफी हाउस में बैठकर भी शहर को एक घण्टे तक देखा। कहने का मतलब यह कि मैंने अपना वक्त सुस्ताकर बर्बाद नहीं किया, क्योंकि इस थोड़े से समय में ही जो कुछ बन पड़े देखना है, जानना है और जो अवसर मिला है, उसका पूरा पूरा उपयोग करना है। अवसर भी इतना अच्छा है कि किसी

तरह का बन्धन नहीं, कोई बाधा नहीं और साथ में सारी सुविधाएं मौजूद हैं।

बगीचे देखें, मैं जिनके बारे में इतना ही कह सकता हूं कि उनकी संख्या ज्यादा है और वे खूब सम्पन्न हैं। एन्ड्रयू जेक्सन स्क्वायर के पार्क में पहिली बार एक देशी गुलाब का पौधा और फूल भी देखा और कुछ कनेर के पेड़ भी। फूल की परख करने के लिये पास बेंच पर बैठे हुए एक नागरिक को साक्षी बनाकर एक पंखुड़ी भी तोड़ी। बिल्कुल देशी गुलाब की खुशबू थी। रेस्तरां अपनी विशेषता यह रखते हैं कि वे स्थानीय व्यंजन पेश करते हैं, लेकिन अमरीका की किसी भोज्य सामग्री में अभी तक मेरी रुचि नहीं बन सकी, इसलिए वह मेरे लिए आकर्षण की वस्तु नहीं थी। यहां की भी साज-सज्जा की तारीफ कर सकता हूं। नाइट क्लब जरूर मेरा पहिला अनुभव था। मेरे सामने पहिले भी कुछ शहरों में यह सुझाव आया था, लेकिन मैं टाल गया। न्यू आर्लियन्स में नाइट लाइफ [रात्रि-चर्या] पर बेहद जोर देखा और मैंने भी आजमाया। सचमुच ही एक अनुभव था। भारत में सारी जिन्दगी कभी गाना सुनने के लिये प्रेरित नहीं हुआ, इस पृष्ठभूमि में नाइट क्लब और वह भी न्यू आर्लियन्स का, एक नया ही अनुभव था। वैसे जापान के नाइट क्लबों के बारे में मैंने पढ़ा था और यह भी जानता था कि एक नाइट क्लब की रोजाना की बिक्री लगभग पन्द्रह लाख डालर है, लेकिन नाइट क्लब जैसा देखा कुछ नहीं था; फ्रेन्च क्वार्टर में वह भी देखा।

दरअसल गया था 'जाज' संगीत सुनने। 'जाज' आज कल भारत में भी नई पीढ़ी में लोक प्रिय हो रहा है। इसका उद्गम न्यू आर्लियन्स में हुआ था। यहां जाज की महफिलें चलती हैं। एक डालर में आप जाज की महफिल का मजा ले सकते हैं। जाज म्यूजियम भी हैं। वहां से निकला तो एक रेस्तरां का नाम पढ़ा—योर फादर्स मोस्टेचेज [तुम्हारे बाप की मूंछे] मुझे नाम बड़ा मसखरा लगा और भीतर घुस गया। खा पीकर बाहर निकला और चल पड़ा। एक नाइट क्लब

का नाम पढ़ा 'पूसी केट' [पूसी बिल्ली]—यह नाम मैंने लन्दन के पिकेडिली सर्कस पर भी पढ़ा था, लेकिन एक मित्र ने जिक्र किया कि कोई खास अच्छा नहीं है। वही प्रभाव शायद अभी तक मेरे मन पर था, अतः मैं भीतर नहीं गया। लेकिन नाइट क्लबों को यहां क्या कमी। रेवड़ी की ठेलों की तरह की कतार। दूसरे क्लब में गया। कोई ग्यारह बजे होंगे। भीतर घुसते ही एक नीग्रो दरवान बड़े अदब से मुझे लिवा ले गया और भिड़ते ही काउण्टर पर पहुंचा दिया। दो तीन लड़कियां एक साथ सामने सिमट आईं। मेरा ध्यान क्लब के वातावरण की तरफ था। साज बज रहा था। सजावट तो मैंने हॉली-वुड की तस्वीरों में ही देखी थी। अब प्रत्यक्ष ही थी। नाचने वाली लड़की के लिए मैं कह सकता हूं कि उसकी त्वचा ही एक मात्र उसकी पोशाक थी लेकिन एकाध आभूषण जरूर थे, जो मुझे लग रहे थे कि न जाने कब झड़ पड़ेंगे। काउण्टर पर मेरा ध्यान जमने में कुछ देर लगी अर्थात् कोई एक मिनट, लेकिन मैं तुरन्त ही संभला कि कहीं अटपटा सा न लगूं। मैं स्वीकार करता हूं कि अस्त-व्यस्त लगे बिना शायद मैं नहीं रहा। यह मैं इसलिए समझा कि काउण्टर वाली मदांगना ने फुसफुसाहट जैसी आवाज में मेरे कान तक फिर यह शब्दावली पहुंचाई 'सर'। अब तक मैं संभल गया था। बड़ी शिष्टता के साथ एक वार्बर्न का आर्डर देकर कुर्सी पर बैठ गया। अपने पास के पड़ोसी को एक नजर देखा और फिर नर्तकी की अंगभंगि-माओं को देखने लगा। नृत्य के बारे में कुछ कहने का अधिकारी मैं नहीं हूं, और पश्चिमी नृत्य के बारे में तो कुछ भी नहीं, लेकिन जो प्रसिद्ध नृत्य एवं नृत्य-नाट्य अब तक देखें हैं,,उनके मुकाबले में इसे नृत्य कहने में कुछ कंजूसी करूंगा।

नृत्य के माध्यम से मनुष्य की मूल वासना की अभिव्यंजना नाइट क्लबों में देखी जा सकती है, वह वासना जो खजुराहो जैसे तीर्थ स्थानों में धार्मिक आन्दोलन [बौद्ध धर्म के निवृत्ति मार्ग के विरुद्ध शैवों के प्रवृत्तिवाद का आन्दोलन] के बहाने भारत के मध्य

युग में देखने में आई थी और इससे भी प्राचीन काल में वसन्तसेना, वासवदत्ता के शरीर से शुद्ध वासना के रूप में प्रकट हुई थी। कभी वह व्यसन के रूप में रही और कभी व्यवसाय के रूप में और कभी वासना ही के रूप में। इसमें अमरीका की स्त्री को अलग रूप से देखना इस समय मेरा इष्ट नहीं है। एक अलग लेख में इसकी चर्चा करूंगा, क्योंकि अमरीका में, न्यू आर्लियन्स में ही, उसी दिन दोपहर को एक ग्रेजुएट युवा-गृहणी को मेरे होटल के बार रूम के काउण्टर पर ध्यान मग्न होकर 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' रटते भी देखा है। मैं यहां नाइट क्लब की एक धुंधली-सी तस्वीर पाठकों के सामने रखना चाहूंगा जैसी कि मेरे मन पर अंकित हुई।

नाइट क्लब का वातावरण इस तरह बनाया गया था कि दर्शक का समग्र ध्यान नृत्यांगना पर रहे, नृत्य पर भी नहीं। साज संगीत को भी रेकॉर्ड में भर लिया गया था ताकि साजिन्दे या साज पर भी नजर न भटके। सारे क्लब में रोशनी सिर्फ मंच पर और वह भी अधिक केन्द्रित थी नृत्य-रत नारी शरीर पर। शेष कक्ष में दीपक की तरह झिलमिलाती मोमबत्तियां। नृत्य के हाव भाव में वेश-भूषा को कोई स्थान नहीं, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं। पश्चिमी स्त्रियों में प्रचलित मेकअप भी नहीं, यहां तक कि लिपस्टिक भी नहीं। आभूषण भी जो थे, वे केवल कहने भर को। वक्ष पर बटनों के बराबर और कटि में एक सूत्र के बरावर चमकदार रेखा और सामने लटकता हुआ-सा जड़ाऊ बटुआ शायद रुपये के आकार का। बस। 'चित्रलेखा' का योगी होता तो तत्क्षण शाप दे डालता, लेकिन वहां तो सभी बीजगुप्त होंगे। उतनी ही संख्या में चित्रलेखाएं होंगी। नृत्य चल रहा था और लोगों को आकर्षित करने के लिए कपाट खोल दिये गये थे। समय आधी रात के निकट पहुंच गया था। कपाट खोलने का एक ही अर्थ मेरी समझ में आया, भागते चोर की लंगोटी उतार लेना और इसके जवाब में मैंने राहगीरों का प्रयास भी देखा, वहती गंगा में हाथ धो लेने का। कामिनी और कञ्चन की अथवा

अर्थ और काम की आंख-मिचौनी थी और चोरी छिपे नहीं, खुलकर खेली जा रही थी, बड़े ही सहज और स्वाभाविक रूप में। इसकी सफाई ढूंढ़ने में परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। इतिहास भरा पड़ा है और अपने मन में भी ढूंढ़ा जा सकता है। इस खेल का सबसे ज्यादा दिलचस्प पहलू था राहगीरों का व्यवहार। आते जाते राहगीर क्षण-भर को ठिठक जाते। शार्ट्स में घूमने वाली मासूम लड़की की इच्छा होती कि एक कदम भीतर भी रखा जाय और लम्बे स्कर्ट में साथ चलने वाली बुढ़िया उसका हाथ पकड़ कर आगे चलाने को होती। एक ही जिन्दगी की देहली पर, जो मंझधार में छलांग मारना चाहती है तो दूसरी किनारे लग चुकी थी, जो बालू रेत को भी दांतों से पकड़े रहना चाहती थी। मिशिगन नदी के किनारे पर यह खेल चल रहा था। एक आखिरी झलक देखना रह गई थी। मंच पर एक के बाद दूसरी पुतली टेप-रेकॉर्ड के सूत्रधार के संकेत पर चलने लगी थी। जब मैं बाहर निकला तो दरवाजे पर वही नर्तकी जो पहले मंच पर थी, खड़ी थी। सफेद और काली धारीदार पोशाक में, ब्लेक एण्ड व्हाइट सिगरेट के डिब्बे की तरह और कार से सड़क पर उतरते हुए मनचलों को लुभाने के लिए चंचल हो रही थी। तब भी उसकी कमीज के बटन खुले हुए थे और भीतर कोई आवरण नहीं था। वह एक युवक टोली को संकेत करते हुए कह रही थी—'वेरी गुड शो' और क्लब के भीतर की ओर दिखा रही थी। मैं हंसकर मुख्य बाजार—केनाल स्ट्रीट की तरफ रवाना हो गया। मुझे राय दी गई थी कि रात को अकेले गलियों में होकर न आऊं लेकिन मेरे होटल का रास्ता गलियों में ही होकर छोटा पड़ता था। रात के बारह बजे थे।

न्यू आर्लियन्स के नाइट क्लब, बाग बगीचों आदि की चर्चा सुन कर दुनिया बड़ी रंगीन नजर आती होगी और सचमुच रंगीन है, लेकिन इस रंगीनी में रंग एक ही तरह का नहीं है, सिर्फ गुलाबी सुनहरा रूपहला या हरा हरा ही नहीं हैं, काला भी है, नीला भी है।

न्यू आर्लियन्स अमरीका की दौलत का दूसरा बड़ा मुहाना है; [मिशि-गन का मुहाना] यहां से दलाली की दौलत जाती भी है और आती भी है । भारत जाने वाला पी. एल. ४८० का अनाज ज्यादातर इसी बन्दरगाह से जाता है । फिर भी यह शहर उत्तरी अमरीका के शहरों के मुकाबले ज्यादा गरीब है । केनाल स्ट्रीट से थोड़ी ही दूर पर गलियों में जाने पर यह गरीबी उभर कर सामने आ जाती है । गरीब काले ही ज्यादा हैं, लेकिन गोरे गरीब भी हैं । यहां मैंने नीग्रो लोगों को सिर्फ नीचे दर्जे के काम करते ही देखा ; सफेदपोशी का सारा काम गोरों के हाथ में है । न्यू आर्लियन्स की सड़कों पर मैंने अब तक सबसे ज्यादा बूट पालिश करने वाले देखे और सभी नीग्रो थे । होटलों में सामान उठाना, बर्तन धोना, पहरा देना, जहाजों को लादना और गलियों में उपद्रव करना नीग्रो जाति को ही हिस्से में मिला है । दूसरे शहरों में मैंने नीग्रो लोगों को अच्छे काम करते भी देखा है, लेकिन इस शहर में नहीं । यहां के नीग्रो लोगों में गन्दगी ज्यादा दिखाई दी । जो उनकी गरीबी का सबूत है । अभी एक सप्ताह पहिले ही लुइजियाना राज्य में उपद्रव हो रहे थे । न्यू आर्लिन्यस इसी लुइ-जियाना राज्य में स्थित है । नीग्रो बस्तियों में ये लोग ठट्ठ के ठट्ठ अपने घर के बाहर जमा रहते हैं, जिससे बेकारी भी साफ जाहिर होती है । संघीय सरकार ने नीग्रो परिवारों के लिए जो मकान बनाये हैं वे जरूर साफ सुथरे और अच्छे किस्म के हैं, लेकिन वे नाकाफी हैं । पब्लिक स्कूलों में काले गोरे साथ पढ़ते हैं लेकिन एक भारतीय प्रवासी की अमरीकी पत्नी ने मुझे बताया कि नीग्रो बच्चों को शिक्षा देना भी टेढ़ी खीर है । उनके साथ बेहद मगजपच्ची करनी पड़ती है और फिर भी वे रास्ते पर नहीं आते । यह बात सब नीग्रो बच्चों पर लागू नहीं होती, लेकिन ज्यादातर सही है । भारतीय प्रवासी की पत्नी स्कूल में अध्या-पिका है । शादी करने के लिए पिछले साल भारत गई थी और आज कल रेकॉर्ड्स से तथा पत्र व्यवहार द्वारा हिन्दी पाठ्यक्रम पढ़ रही है । जयन्ती शिपिंग कम्पनी के एक भू. पू. इंजीनियर जगदीश चावला से

उन्होंने शादी की है। मुझे इस अध्यापिका ने बताया कि आर्थिक एवं राजनीतिक जिम्मेदारी दिये बिना नीग्रो नहीं सुधर सकता। जिम्मेदारी के बिना वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी बन जायेगा। मैं उनके घर भी गया था और खाना खाकर आया हूं।

मैंने इस प्रश्न पर ज्यादा चर्चा करनी चाही तो उन्होंने भी दिलचस्पी दिखलाई। मैंने पूछा जिम्मेदारी देने में रुकावट क्या है? नीग्रो नेता भी तो यही मांग करते हैं। इसके जवाब में उन्होंने कहा कि कारण राजनीतिक हैं। कांग्रेस के दोनों सदनों के रवैये में फर्क है। उच्च सदन– सीनेट के चुनाव हमारी राज्य सभा की तरह हर दो साल में होते हैं। लेकिन एक सीनेटर छ साल तक चुना हुआ रहता है, जब कि निम्न सदन–हाउस ऑफ रिप्रजेन्टेटिव के चुनाव हर दो साल में होते हैं। एक चुनाव खत्म होते ही दूसरे चुनावों की तैयारी शुरू हो जाती है। इस सदन के सदस्य सदैव अपने मतदाताओं के बहुमत की तरफ देखते हैं। सीनेट अगर कोई प्रस्ताव मान भी ले तो प्रतिनिधि सभा में उसे मंजूर करवाना टेढ़ी खीर है। आम अमरीकी गोरा व्यक्तिश: नीग्रो से मेल जोल रखने लगा है, लेकिन चुनावों की राज-नीति उसे अलग कर देती है। उन्होंने बताया कि भारत में हरिजनों के लिए राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में न्यूनतम स्थान सुरक्षित हैं, अमरीका के संविधान में नीग्रो को इस तरह की कोई गारन्टी नहीं है, इसलिए उसे एकदम बहुमत की दया पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अमरीका में पिछले बीस-पच्चीस सालों में नीग्रो लोगों के लिए जो कुछ किया गया है वह कम नहीं है, लेकिन वह दान के रूप में किया गया है। शासन तंत्र में नीग्रो की लोकतान्त्रिक अधिकार भावना की तुष्टि नहीं हुई है। 'मैं नीग्रो समस्या का निदान इसी रूप में करती हूं।' मुझे जैसे नये ज्ञान का प्रकाश मिला और मैंने दत्तात्रेय की तरह ही इस गौरांगना को अपना गुरु मान लिया।

न्यू आर्लियन्स के रास्तों में घूमने पर मैं यह देख सका कि उत्तर अमरीकी क्षेत्र के शहरों से यहां बहुत भिन्नता थी। हो सकता

है मौसम की वजह से ही हो, लेकिन यहां ज्यादातर लोगों को, स्त्रियों को भी और पुरुषों को भी, बंडे कपड़ों में देखा। वे आमतौर पर शार्ट्स [कच्छा] और बनियान [टी-शर्ट] पहिनते हैं। यह पहिनाव केवल जवानों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि कई बूढ़े-बूढ़ी भी इसी तरह के कपड़े पहिने हुए देखने में आये। कपड़े पहिनने में भी कोई खास रुचि या तरतीव नहीं। ज्यादातर लोग रंग-बिरंगे कपड़े पहिनते हैं, जिनके डिजाइन भी निराले। छुट्टी की वजह से भी ऐसा हो सकता है। मैं रविवार को एक सरकारी कार्यालय में गया तो वहां मेरे साथ बात करने को आई हुई दोनों महिलाएं अपेक्षाकृत शालीन पोशाक में थीं। फिर भी मैंने यह जरूर देखा कि न्यूयार्क और शिकागो में छुट्टी के दिन भी लोग कच्छा और बनियान नहीं पहिनते। वाशिंगटन में भी नहीं और बोस्टन का तो कहना ही क्या। वह तो आज भी इंगलैण्ड के ढर्रे पर चलना चाहता है।

न्यू आर्लियन्स के एन्ड्र्यू जेक्सन स्क्वायर पर मैंने एक कतार में तुरत-फुरत रेखाचित्र बनाने वाले भी देखे। दो या तीन डालर लेते हैं और सामने बिठाकर या खड़ा करके आपकी तस्वीर बना देते हैं। इस चित्रकारी को वे चारकोल [कोयला] पेन्टिग या ड्राइंग कहते हैं। उनका हाथ इतना सधा हुआ है कि कुछ ही मिनटों में आपका रेखाचित्र तैयार कर देते हैं। चारकोल का मतलब भी आप यह न समझें कि सिर्फ काली रेखाएं ही बनाते हैं, बल्कि चित्रांकन करके वे आपकी पसन्द के मुताविक रंग भी भर देते हैं। जितना गुड़ डालें उतना ही मीठा। जेक्सन स्क्वायर जयपुर की चौपड़ की तरह है।

शहर के पश्चिमी अंचल पर एक झील है। इस झील पर अभी अभी एक पुल बनकर तैयार हुआ है, जो लम्बाई में तेईस मील है। पांच जून को वह सवारियों के लिए खुल जायगा। पानी पर बना हुआ यह दुनिया का सबसे लम्बा पुल है और एक द्वीप को न्यू आर्लियन्स से जोड़ता है। झील के किनारे एक पार्क है जिसके बीचो-बीच एक बहुत बड़ा, शायद सौ फुट व्यास वाला एक शानदार फव्वारा है,

जिसकी रंग-बिरंगी रोशनी की छटा देखने के लिए रात को सैलानियों की भीड़ जमा रहती है। इसकी विशेषता यह है कि फव्वारे के गोलाकार कटघरे में अनेक लाउड स्पीकर और टेप-रेकॉर्ड लगे हुए हैं जिनसे जाज संगीत वजता रहता है।

न्यू आर्लियन्स की आवादी कुल मिलाकर करीब दस लाख है, अर्थात् यह शहर वाशिंगटन के बरावर सा है और यहां भी ऊंची इमारतें नहीं हैं। वाशिंगटन में ऊंची इमारतें बनाने पर कानूनी पावन्दी है। न्यू आर्लियन्स में कठिनाई यह है कि नदी के मुहाने की धरती नीचे चट्टान-रहित है अतः मजबूत नींव नहीं डाली जा सकती परिणामस्वरूप ऊंची इमारतें यहां नाम मात्र को ही हैं। आमतौर पर मुख्य वाजार में दस ग्यारह मंजिल की इमारतें देखने में आईं। कहते हैं, एक बड़ी इमारत को कभी वसु नाम के किसी वंगाली ने खरीद लिया था, जिससे शहर में हल्ला मच गया। नतीजा यह हुआ कि वैंकों ने या वैंकरों ने वसु को रुपया देने से हाथ खींच लिया। हार कर उसको मकान छोड़ देना पड़ा। आमतौर पर यहां मकान खरीदने के लिए उधार मिल जाता है। उधार अमरीका के आधुनिक अर्थतन्त्र के विस्तार की खास कुंजी है; हर चीज उधार खरीदने के लिये यहां व्यापारी लगातार प्रचार करते रहते हैं और तरह तरह के प्रलोभन देते हैं। इसका अर्थ यह न समझें कि वाजार में खपत नहीं है या मन्दी है, वल्कि यहां के निर्माता माल को वड़े पैमाने पर खपाना चाहते हैं और उपभोक्ता वाजार की क्षमता वढ़ाना चाहते हैं। उधार के कारण उनके मुनाफे की सालाना मात्रा कम रहती है, आयकर में वचत भी होती है। उधार के कारोवार में व्याज दर ज्यादा मिल जाती है। इसीलिये हर आदमी को भरोसा रहता है कि वह किसी चीज के लिये अटका नहीं रहेगा। यह वात उल्लेखनीय है कि कोई अमरीकी नागरिक मां-वाप, नाते रिश्तेदारों या दोस्तों से उधार की आशा नहीं करता। काम पड़ने पर वैंक की शरण में अभयदान जरूर मिल जाता है।

— ११ जून १९६८

अल्पासो : अब मेरा घर है

'क्या मैं जोधपुर पहुंच गया ?' अमरीका और मैक्सिको सीमान्त पर स्थित टेक्सास राज्य के अन्तर्राष्ट्रीय नगर अलपासो पहुंच कर मेरे मन में यही सवाल पैदा हुआ। हवाई-अड्डे से उतर कर एक घण्टे शहर का चक्कर लगाने के बाद महसूस होने लगा कि सममुच जोधपुर एवं अलपासो के बीच बहुत कुछ समानता है। हवाई अड्डे पर खड़े खड़े देखा — धूल के बवंडर उठ रहे हैं। जगह जगह चक्रवात। अड्डे की इमारत तो वातानुकूलित थी लेकिन शहर से निकलते ही जैसे गर्मी झुलसाने लगी। मुझे लेने के लिए यहां पर एक कर्नल की पत्नी आ गई थीं। रास्ते में उन्होंने दिखाया कि दूर दूर तक अमरीकी स्थल सेना की छावनी फैली हुई है। यहां पहिले वायु सेना का केन्द्र था। स्थल सेना को यहां आजकल मिसाइल [प्रक्षेपणास्त्र] संबंधी नाना प्रकार की शिक्षा दी जाती है। सड़कों के अलावा शहर के चारों ओर रेत नजर आती है।

शहर की बसावट फ्रेंकलिन पर्वत के चारों ओर है और पास में ही जिप्सम निकलता है। पीने का पानी

ट्यूव वेल्स से आता है और प्रचुर मात्रा में मिलता है। शहर की आवादी कोई साढ़े तीन लाख है, जिसमें पचास हजार के आस पास सैनिक हैं। यहीं पर मुझे भारी संख्या में काले वालों व काली आंखों वाले गेहुवां रंग के स्त्री-पुरुष नजर आये और शरीर में भारी भरकम भी। मैं उनकी तुलना भी जोधपुर के पुष्करणाओं से कर सकता हूं। अच्छा और खूब खाना-पहिनना यहां के लोगों का खास शौक है। अमरीका की आम समृद्धि की छाप यहां भी मौजूद है, लेकिन अन्य शहरों की तरह चंचलता या भाग दौड़ नहीं है। खूब खुली हुई वसावट है। ज्यादा किचपिच नहीं। जीवन वड़ा शान्त और शाम को खूब रौनक रहती है। हजारों मेक्सिको वासी यहां काम धन्धा करने आते हैं और शाम को खरीददारी करके घर चले जाते हैं। मेक्सिको का असर अलपासो की जिन्दगी पर वहुत ज्यादा है।

खाने में लाल या हरी मिर्च का उपयोग अमरीका में मैंने यहीं देखा। मेक्सिको की मिर्च'वहुत तेज होती है। एक वार मैं जयपुर की तरह ही मिर्च का टुकड़ा तोड़ कर खा गया। चवाना था कि कनपटी पर पसीने की धार वहने लगी। जोधपुर और बीकानेर अपने मिर्च वाले खाने के लिए मशहूर हैं। अलपासो में एक समानता बीकानेर की भी देखी और वह यह कि एक पुल के जरिये वह इतने ही वड़े एक अन्य मेक्सिकन शहर जूरेज, जिसे यहां वूरेज कहते है, से जुड़ा हुआ है। वीकानेर इसी तरह गंगाशहर से मिला हुआ है। फर्क यही है कि गंगाशहर वीकानेर का ही एक हिस्सा है और जुरेज एक अन्य देश का भाग है। यहां आने जाने के लिए पुल के दोनों नुक्कड़ों पर कायम कस्टम की चौकियों को पार करना पड़ता है। दोनों देशों के सम्वन्ध इतने अच्छे हैं कि आवागमन में ज्यादा झंझट नहीं होती। अलपासो अमरीका में अन्तर्राष्ट्रीय नगर कहलाता है और स्पेनिश लड़ाइयों के कारण ऐतिहासिक महत्व भी रखता है। भौगोलिक समानता के कारण मैंने जव यहां के लोगों से कहा कि हमारे यहां भी एक ऐसा ही शहर जोधपुर है तो वे लोग वेहद खुश हुए। अलपासो

में बरसात का औसत करीब पांच इंच है, लेकिन नलकूपों का ऐसा जाल बिछा हुआ है कि सारा शहर हरा भरा है, जबकि आसपास दूर दूर तक मरुस्थल है।

अमरीकी शासन और समाज व्यवस्था की जड़ में लोकतन्त्र कितना गहरा बैठा हुआ है, इसका एक नमूना मैंने अलपासो में देखा। अलपासो के डेमोक्रेट मेयर विलियम्स ने शहर में एक सिविक सेण्टर बनाने का प्रस्ताव किया, जिसे कई सदस्यों ने मंजूर नहीं किया। ऐसी सूरत में यहां सदन के बहुमत से निर्णय नहीं होता। इस तरह के हर कार्यक्रम को जनमत के लिए प्रस्तुत किया जाता है। मैं जिस समय मेयर से भेंट करने गया, वहां मतदान हो रहा था, जिसे एवसेण्टी वोटिंग कहा जाता है। कुछ दिनों की एक अवधि निश्चित करदी जाती है और प्रस्ताव को प्रसारित कर दिया जाता है। उक्त अवधि में लोग आते हैं और अपनी राय लिखित मत-पत्र पर हां या ना के रूप में प्रकट कर जाते हैं। स्वीकृत होने पर प्रस्ताव पर अमल करने के लिए कर लगाये जाते हैं और विस्तृत योजना बना कर काम शुरू किया जाता है। लोकोपयोग के सभी कार्यक्रमों के लिए अमरीका में इस तरह की व्यवस्था है।

इस तरह का एक विवाद मेसाचुएट राज्य के वूर्स्टर शहर में चल रहा था, जिसका आधार एक चर्च था। शहर के एक कोने को आधुनिक रूप देने के लिए योजना बनाई गई थी, लेकिन एक चर्च इस कार्य में बाधक था। जिस दिन मैं वहां पहुंचा था [सोलह मई] यह निर्णय अखबारों में घोषित किया गया था कि चर्च को गिरा दिया जायेगा और उसे मुआवजे के अलावा एक अलग जमीन दे दी जायेगी। मुझे याद आया जयपुर शहर का एक दकियानूसी आन्दोलन, जो रियासती राज्य में मिर्जा इस्माइल के सुधार कार्यक्रम के विरुद्ध चलाया गया था। शहर के बाजारों के बीचोबीच खड़े हुए छोटे छोटे मन्दिरों और बड़े बड़े ऊबड़ खाबड़ पेड़ों को मिर्जा इस्माइल हटाना चाहते थे लेकिन उसे धार्मिक रूप दे दिया गया।

इसी तरह जयपुर नगर विकास मण्डल ने कुछ ही सालों पहिले जव परकोटे की दीवार को तोड़कर शहर की ट्रैफिक व्यवस्था सुधारने और गन्दी आवादी को हटाने का कार्यक्रम हाथ में लिया, तो महारानी गायत्री देवी इतिहास के नाम पर वाधक वन गई। वूर्स्टर में एक वहुत पुराने और सुन्दर सुदृढ़ चर्च को गिराने का फैसला कर लिया गया। जनमत ने नागरिक शासन का साथ दिया।

अलपासो के मेयर से मैंने सिविक सेण्टर सम्वन्धी विवाद के वारे में पूछा, तो उन्होंने वताया कि एक तो धन का सवाल था और दूसरा सवाल था कुछ मकानों के गिराने का। धनराशि की मात्रा करोड़ों डालर में थी, क्योंकि सिविक सेण्टर का अर्थ यहां वहुत कुछ होता है। सेण्टर में संगीत, नृत्य, नाटक, ऑपेरा, पुस्तकालय आदि अनेक संस्थाओं का जाल होता है। धन का संग्रह कभी करारोपण के द्वारा और आमतौर पर जन-सहयोग के जरिये किया जाता है।

मेयर विलियम्स के साथ मेरी वातचीत वड़ी दिलचस्प रही। उन्होंने भारत की आवादी की रोकथाम, कृषि, उद्योग आदि अनेक विषयों की चर्चा की। वातचीत के दौरान वे पिछले गौरक्षा आन्दोलन पर आये। उन्होंने पूछा क्या भारत में ऐसे भी आंदोलन चलते हैं? हम तो यहां गाय को पालते भी हैं और खाते भी हैं। उन्होंने मेरी राय पूछी। मैंने दार्शनिकता का पुट देकर सिर्फ इतना ही कहा कि मूलतः हम सभी एक ही तरह के हैं। केथोलिक ईसाई हर रोज मांस खाते हैं, लेकिन शुक्रवार को खाना निषिद्ध है। मैंने कहा अभी पिछले ही सप्ताह नौक्सविल [टेनेसी] में मुझे पता चला कि वहां डार्विन का विकासवाद पढ़ाने पर एक अध्यापिका को जेल जाना पड़ा। यह कुछ ही सालों पहिले की वात है। क्या यह सच है? मेयर विलियम्स ने यह स्वीकार किया कि एक सीमा तक मनुष्य में अन्धविश्वास की मात्रा विद्यमान है। हम दोनों ने अन्त में राय जाहिर की कि यह अन्धविश्वास आज के युग में ठीक नहीं लगता।

मेयर के साथ मैंने मुलाकात मांगी नहीं थी, बल्कि वहां की कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स ने यह तय की थी। मैंने कौंसिल के सदस्यों से शहर के बारे में कई तरह की बातें पूछी थीं। मेरी जिज्ञासा उनको बहुत अच्छी लगी और उन्होंने यह सूचना मेयर को भी दी। मेयर विलियम्स ने इस मुलाकात को सचमुच ही रस्मी रूप दे दिया। उन्होंने कोलम्बिया ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी के टेलीविजन केमरामैन को और पत्रकारों को भी बुलावा दे दिया। मुझे उन्होंने अलपासो की नागरिकता प्रदान की और सिटी कौंसिल की मुहर के साथ एक सनद भी भेंट की। मेरे लिए यह अनुभव अकल्पित और अप्रत्याशित था। मैंने बहुत ही खुशी के साथ मेयर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और जयपुर का बना हुआ चन्दन की लकड़ी का एक सिगरेट केस भी उनको भेंट किया। सचमुच वे बहुत खुश हुए। इतने खुश हुए कि उन्होंने भी अपने आपको जयपुर का नागरिक मान लिया।

इस मुलाकात में मैंने पहिली बार एक स्वायत्त संस्था को देखा था। सिटी कौंसिल की शान-शौकत के बारे में तो कुछ कहना ही अनावश्यक है। 'लंका में सब बावन गज के' वाली कहावत कह देने से काम चल जायेगा, क्योंकि जयपुर में किस भवन और किस दफ्तर से उसकी तुलना करूं। राम बाग भी फीका लगता है।

शाम को छः बजे मैंने टी. वी. पर देखा मेयर से मेरी भेंट का पूरा प्रसारण था। अखबारों में कई स्थानों पर मैंने समाचार छपे देखे थे। टेलीविजन पर पहिली बार मैंने अपनी शक्ल देखी। एक विनोद सा लगा। जहां लोगों को मेरा आगमन मालूम पड़ जाता है वे समाचारों से उपयोग कर लेते हैं। मुझे याद है, बंगला के प्रसिद्ध युवक लेखक शंकर कुछ ही महीनों पहिले 'राजस्थान पत्रिका' के कार्यालय में आकर चले गए, लेकिन हम लोगों को पता ही नहीं चला। वे डनलप कम्पनी के जयपुर कार्यालय के भवन के उद्घाटन पर आये थे। कम्पनी के प्रचार अधिकारी हैं। मैंने उनका लोकप्रिय

उपन्यास 'चौरंगी' पढ़ा था। वाद में दिनमान में उनका फोटो देख कर मुझे उनकी जयपुर यात्रा का विवरण पढ़कर वड़ा पश्चाताप हुआ।

यहां भी पत्रकार अपनी जाति के किसी विदेशी को देखकर वड़े खुश होते हैं। जैसा कि मैंने पिछले एक लेख में लिखा है लास् वेगस में दो अखवारों के दो पत्रकारों ने अपने आधे दिन का समय मेरे ऊपर खर्च कर दिया। अन्य स्थानों पर भी मेरा इसी तरह का अनुभव रहा। वोस्टन में क्रिश्चियन साइन्स मोनीटर के समाचार सम्पादक ने मुझे खाने पर भी आमन्त्रित किया लेकिन मैंने जाने में असमर्थता प्रकट की। वूर्स्टर में भी टेलीग्राफ व गजट के सहायक प्रकाशक ने मेरे साथ आधा दिन खर्च किया। इसी तरह का व्यवहार मैं सभी जगह देखता रहा हूं। यह सुखद अनुभव है और यही कारण था कि लास वेगस में विना हिचक के मैंने समाचार पत्रों को टेलीफोन किया, क्योंकि वहां मेरे कार्यक्रम से सरकारी या गैर सरकारी एजेंसियां कतई अवगत नहीं थीं। मुझे सम्पर्क चाहिये था और टेलीफोन करते ही मिल गया। अमरीका में साधारणतः यह सम्भव नहीं कि कोई अपना समय आपको दे।
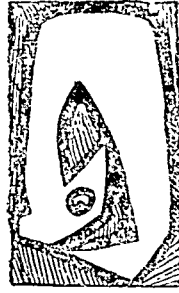
केनेडी को गोली : बन्दूक की बुलन्दी

'क्या यह हत्यारों का देश है ?' पांच जून को सुवह अल-पासो [अन्तर्राष्ट्रीय नगर] के होटल के कमरे में सोकर उठते ही जब टेलीविजन देखना शुरू किया तो भिल-मिलाते हुए पर्दे पर उभरे हुए एक चेहरे ने जैसे मुझसे पूछना शुरू किया। वह आगे वोलता गया। अभी कुछ ही महीनों पहिले मार्टिन लूथरकिंग को गोली मार दी गई। इससे पूर्व नवम्वर १९६३ में प्रेसीडेण्ट केनेडी को गोली मार दी गई और अब सेनेटर रॉवर्ट केनेडी की बारी आई।

सुनकर हक्का-वक्का रह गया और वापिस विस्तर पर वैठ कर सुनता रहा। सुना कि रॉवर्ट केनेडी आधी रात को लासएंजिल के एम्वेसडर होटल में अपनी विजय की खुशी में संवाददाताओं से वातचीत करने जा रहे थे और उन्हें गोली मार दी गई। उसी रात को मैं करीव साढ़े ग्यारह वजे एक जगह खाना खा कर लौटा

था । खाने पर प्रेसीडेंट के चुनाव की चर्चा हो रही थी । कुछ बुद्धिजीवियों की बातचीत का परिणाम यह निकला कि किसी दल का कोई उम्मीदवार जीते , कोई फर्क नहीं पड़ता । क्यों ? इस सवाल का जवाब दिया गया कि प्रेसीडेण्ट के पद के अनुकूल कोई भी असाधारण व्यक्तित्व मैदान में नहीं है । दोनों पार्टियों के उम्मीदवार दूसरे दर्जे के हैं। रात को खाने के वक्त तक मेकार्थी मत-गणना में आगे थे और केलीफोर्निया के मुख्य नगर लासएंजिल्स की गणना शेष थी ।

सुबह उठते ही देखा कि एक गोली ने सेनेटर रॉबर्ट केनेडी को असाधारण ही बना दिया । इन पंक्तियों के लिखने तक केनेडी के मस्तिष्क का ऑपरेशन हो चुका था । वे अस्पताल में मूर्च्छित अवस्था में हैं । हत्या के सन्देह में एक जवान लड़का पकड़ा गया है । एक बजे तक दिन में उसका नाम भी नहीं मालूम हो सका । वह स्वयं कुछ बोलता नहीं है । हत्या के सिलसिले में एकदम मौन है । कानूनी परामर्श के लिए एक सरकारी वकील कर दिया गया है, इसलिए कि वह कुछ बोलना भी चाहे तो बचाव का उपाय कर सके ।

जिसे देखो टेलीविजन पर आंख कान लगाये हुए है । हर जगह टेलीविजन रेडियो खुले हुए हैं । अस्पताल में जहां केनेडी मूर्च्छित अवस्था में है, टेलीविजन व प्रेस के लिए विशेष केन्द्र बना दिया गया है । लगातार समाचार आ रहे हैं । मैं अलपासो से ढाई बजे उड़कर फिनिक्स हवाई अड्डे पर आ गया हूं । साढ़े तीन बजे हैं । साढ़े चार बजे ग्रेण्ड केनियन के लिए विमान से रवाना हो जाऊंगा । इस बीच मैंने जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसे लिखने बैठ गया हूं ।

हां, तो क्या यह हत्यारों का देश है ? क्या यह समाज रुग्ण हो गया है ? यह प्रश्न टेलीविजन पर कई बार कई लोगों के मुंह से निकला । होटल के नीचे उतर कर कॉफी हाउस में गया । क्या देखता हूं, लड़कियां ग्राहकों की मांग पूरी करके एक मिनट का समय पाते ही टेलीविजन पर जा टिकती हैं । बाहर आकर टेक्सी पकड़ी

तो उसमें भी रेडियो खुला हुआ था। ड्राइवर का ध्यान उसी पर था। एक घर में गया तो वही दृश्य। अलपासो की एक सम्भ्रांत महिला ने घर में घुसते ही कहा 'ओफ कितना अच्छा देश है लेकिन कितने शर्म की बात है, दुनिया क्या समझती होगी। शर्म आती है।' ड्राइवर से मैंने बात करने की कोशिश की तो उसने कान ही नहीं दिया। यही हाल होटल के कॉफी हाउस में था। अखबार देखा था, लेकिन प्रभात संस्करण में जो कुछ छपा था उससे ज्यादा तो मैं टेलीविजन पर देख चुका था। आखिर टेलीविजन का ही सहारा लिया। एक घटना का कोई भी पहलू टेलीविजन पर छिपा नहीं रहता। अस्पताल के और पुलिस के समाचारों के साथ बीच-बीच में अन्य टीका-टिप्पणियां भी चलती रहती हैं। देश भर के नेता विचार मग्न हैं, चिन्तित हैं और व्यथित हैं। चर्चों में प्रार्थनाएं हो रही हैं—' ईश्वर अमरीकियों को सुद्‌बुद्धि दे।'

वड़े बड़े नेताओं के मुंह से सवाल निकलता है—क्या हमारा समाज रुग्ण है ? और जवाब मिलता है, हां रुग्ण है। जितने मानसिक रोगों के अस्पताल और मानसिक रोगी इस देश में हैं, उतने कहीं नहीं हैं। केनेडी की हत्या के सन्देह में जिसको गिरफ्तार किया गया है उसे भी इसी तरह का मानसिक रोगी समझा जा रहा है, हालांकि वह कुछ राज नही बताता। मुझे याद आया सुप्रीम कोर्ट के हमारे न्यायाधीश ग्रोवर पर एक व्यक्ति ने इजलास में वार किया था और बयान दिया था कि वह कुछ सनसनी-खेज काम करना चाहता था और कर गुजरा। इसी तरह की अटकलें यहां लगाई जा रही हैं। कुछ लोग राजनीतिक हवा को भी इसका कारण समझते हैं। फिर भी विचार चल रहा है। फिलहाल पुलिस और अस्पताल पर सबका ध्यान है। साथ ही यह चर्चा जोर पकड़ती जा रही है कि हथियारों के निर्बाध उपयोग पर रोक लगा दी जाय अर्थात् विक्री वन्द कर दी जाय। बन्दूक पर रोक लगाने का एक विल तो अभी कांग्रेस के सामने ही है, लेकिन रावर्ट केनेडी को रिवाल्वर से गोली मारी गई

है, इसलिए अब छोटे हथियार भी पावन्दी के दायरे में लेने के सुझाव रखे जा रहे हैं। राजनीतिक हत्याओं के कारणों की जांच पड़ताल के लिए भी एक कमीशन विठाने की राय जाहिर की जा रही है। अधिकांश लोगों की समझ में कुछ नहीं आ रहा कि यह सब है क्या है ?

प्रेसीडेण्ट के चुनाव के उम्मीदवारों के लिए अंगरक्षक तैनात कर दिये गए हैं। केनेडी के परिवार के सभी सदस्यों पर पुलिस की गार्ड लगा दी गई है, लेकिन इसका मतलब कुछ नहीं। एक रिवाज से ज्यादा कोई महत्व नहीं। कोई महत्व नहीं देता, सिर्फ स्वीकार कर लेते हैं, इस व्यवस्था को। असली सवाल तो अभी टेलीविजन के पर्दे पर ही है—क्या यह समाज रुग्ण है ? क्या यह हत्यारों का देश है ? किसी के पास इस सवाल का जवाब नहीं है।

लेकिन एक तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। सुवह से दुपहर तक अलपासो में मैंने जो व्यग्रता चारों तरफ देखी थी या मुझे लगी थी, वह जैसे फिनिक्स तक पहुंचते समाप्त हो गई। ऐसा लगने लगा कि लासएंजिल में जो दुर्घटना हुई है, उससे किसी को कोई सरोकार ही नहीं है। तीन घण्टे से वरावर मैं ट्रान्जिस्टर पर कान लगाये हुए हूं, अव भी चालू है। अस्पताल की, पुलिस की कोई चर्चा नहीं। हवाई अड्डे पर सैकड़ों की भीड़ आ रही है, जा रही है। वीसियों स्त्री पुरुष वैठे हैं। यहां भी काउण्टर भरे पड़े हैं, कॉफी-शॉप में लोग जमा हैं। लोग आपस में दुनिया भर की वातें कर रहे हैं लेकिन केनेडी की नहीं। टेलीविजन और रेडियो पर विज्ञापनों की वही धूम है। सर-गर्मी ज्यों की त्यों है। कहीं कोई व्यक्ति कम नहीं, उदासी नहीं, यह नहीं कि इस देश में कोई वड़ी दुर्घटना हो गयी है। अभी अभी समाचार मिला है कि केलीफोर्निया स्टेट की विधायिका की कार्यवाही में कोई हेर फेर नहीं किया गया। यह लिखने से पहिले पास ही कुर्सी पर वैठे हुए एक साहव से मैंने इस दुर्घटना की चर्चा चलाने की कोशिश की तो उन्होंने जैसे कोई दिलचस्पी नहीं

दिखायी। विमान में बरावर की कुर्सी पर सफर कर रहे एक सज्जन से वात करनी चाही तो उन्होंने इतना कह कर मुंह वन्द कर लिया कि केनेडी का वचना मुश्किल है।

अब मैं भी महसूस करने लगा हूं कि मैं ही अधिक मगज मार रहा हूं। यहां के लोगों ने जैसे सोचने विचारने का काम सरकार को, प्रोफेसरों को, अखवारों और टेलीविजनों को दे रखा है। वाकी सब अपने अपने हाल में मस्त हैं। अखवार पढ़ लिया, टेलीविजन देख लिया और चल पड़े अपनी जीवन यात्रा पर। एक अंधाधुन्द दौड़ है और शायद इतनी तेज है कि किसी को इधर उधर झांकने की फुर्सत नहीं है। आदमी आदमी से अलग है और संभवत: अपने आपसे भी अलग है। आत्यन्तिक स्वतन्त्रता के आत्यन्तिक वन्धन, अति तृप्ति से अति रुचि या अरुचि।

सचमुच ही क्या यह समाज रुग्ण है? कई वड़े वड़े नेताओं ने राबर्ट केनेडी की वारदात पर इस तरह की राय जाहिर की है। या यह समझा जाय कि वे लोग अपनी श्रेष्ठता के प्रति इतने आश्वस्त रहे हैं कि कोई दाग लगते ही डगमगाने लगते हैं, चौकन्ने हो उठते हैं। हत्याएं तो हमारे यहां भी हुई हैं। गांधी जी की हत्या हुई ही थी। अभी अभी दीनदयाल उपाध्याय की भी हत्या ही हुई। न्यायाधीश ग्रोवर पर भी हमला हुआ। इससे पहिले सोलीसिटर जनरल सान्याल की हत्या हो चुकी है। छुरे दिखाने की वारदातें नेहरू जी के जीवन में कई वार हुई। मारने की धमकियों के समाचार भी अखवारों में आते रहते हैं। हमारे देश में शस्त्रों की विक्री पर कड़ा नियन्त्रण है। फिर भी वारदातें हुई। रास्ते निकाल लिए गये। अमरीका के जो नेता शस्त्रों पर रोक लगाने की वात कह रहे हैं, उसमें क्या इस सवाल का जवाव है कि यह देश रुग्ण है या हत्यारों का है। शस्त्रों पर रोक लगाने से तो मानसिक रुग्णता दूर नहीं होगी। अगर कोई जानवूझ कर ही मारने पर तुला हुआ है तो मौत के हजार शस्त्र हैं, लाख रास्ते हैं। वह ढूंढ़ ही लेगा। मैं यह नहीं कहना चाहता कि

हथियारों की खुली छूट कोई अच्छी चीज है, लेकिन मैं मानता हूं कि इस समस्या का सम्बन्ध हथियारों से उतना नहीं है । अगर ऐसी कोई बात होती तो भारत में हत्याएं क्यों होतीं ?

राजनीतिक हत्याओं का या आकस्मिक हत्याओं का सम्बन्ध एक ही चीज से नहीं है, अतः सब दुर्घटनाओं को एक धरातल पर नहीं रखा जा सकता । सेनेटर केनेडी की हत्या का कारण अभी सामने नहीं आया है अतः उस पर जो कुछ कहा जा रहा है वह अटकल मात्र है । उस पर कोई निष्कर्ष निकालना भी अभी ठीक नहीं होगा, लेकिन जिन अमरीकी नेताओं ने मानसिक रुग्णता का निदान किया है, उन्होंने एक ही सामाजिक समस्या को उभार कर सामने रखा है । मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस समस्या के समाधान से हत्याओं को भविष्य में रोका जा सकता है, लेकिन सामाजिक रुग्णता के अध्ययन की अपने आप में बड़ी उपादेयता है । अमरीका की जिस सामाजिक रुग्णता की चर्चा इस समय सामने आई है, उसका एक प्रमाण यह दिया गया है कि जितने मानसिक अस्पताल और रोगी इस देश में हैं, अन्य किसी भी देश में नहीं हैं । अच्छा हो, सेनेटर केनेडी की विपत्ति के निमित्त एक सामाजिक रोग का उपचार ही संभव हो । इस रोग का कारण भी किसी से छिपा नहीं है, असाधारण जीवन प्रचुर भोग्य पदार्थ एवं निर्वाध स्वतन्त्रता । सर्वत्र अति है और अति सर्वत्र वर्जयत । नीति का यह श्लोक मैं बचपन से सुनता आ रहा हूं ।

केनेडी की हत्या के इस प्रयत्न में इस बात की जरूर पुष्टि होती है कि अमरीका में जड़ता और जर्जरता के विरुद्ध आवाज उठाने वालों को सहन नहीं किया गया । प्रेसीडेण्ट केनेडी, मार्टिन लूथर किंग और राबर्ट केनेडी को गोली मारना मनुष्य के चैतन्य को, जागृति को और प्रगति को गोली मारना है । उपचार अगर किया जाना है तो इस रोग का किया जाना चाहिये । हत्या मात्र कोई बड़ी समस्या नहीं है । दूसरा विचारणीय प्रश्न इस घटना से यह सामने आया है

कि सेनेटर केनेडी ने अपने चुनाव अभियान में जिन मुद्दों को जोर से उठाया है, उनको अब सारा समाज उठाये वरना उन सब लोगों को बड़ा आघात पहुंचेगा, जो सेनेटर केनेडी की आवाज के पीछे थे। ये मुद्दे वियतनाम युद्ध और गरीबी से सम्बद्ध थे और सेनेटर मेकार्थी भी इस मार्ग के अनुयायी हैं। यदि इन मुद्दों का हल नहीं किया गया तो अमरीका की घरेलू पेचीदगियां भविष्य में ज्यादा बढ़ने वाली हैं। वैसे अमरीका की राजनीति में नया दौर शुरू हो गया है, नया मोड़ आने लगा है और उसकी पहल की है अपनी उम्मीदवारी की घोषणा के साथ ही सेनेटर मेकार्थी ने। सेनेटर केनेडी को गोली लग जाने का असर इस दौर पर पड़े बिना नहीं रहेगा क्योंकि दोनों सेनेटर एक ही दृष्टिकोण के हैं, केवल व्यक्तित्व का संघर्ष है।

सेनेटर केनेडी का व्यक्तित्व अमरीका में काफी विवाद का विषय बना हुआ है। इस चुनाव में एक वर्ग उनका इसीलिए विरोध कर रहा है कि धनवान घर के हैं और उनके जीतने पर प्रेसीडेण्ट का पद एक धनाढ़्य परिवार की बपौती बन जायेगा। अभी उम्र में वे युवक हैं और दस-बारह वर्ष तक आसानी से उन्हे हिलाने की गुंजाइश मालूम नहीं होती। इस बीच उनके छोटे भाई टैड केनेडी का व्यक्तित्व बनता जा रहा है और लोगों को लगता है कि टैड के बाद स्व. केनेडी का पुत्र तैयार हो जायेगा। सेनेटर मेकार्थी को केनेडी के विरुद्ध धनी-वर्ग का भारी समर्थन मिलता है। एक माने में यह संघर्ष वैसा ही है जैसा कि हमारे यहां बिड़ला और मोरारका का रहा है। दूसरा विवाद सेनेटर केनेडी ने खुद मोल लिया है या उसे अपना मुद्दा बना लिया है और वह गरीबों का या नीग्रो लोगों का। इस मुद्दे को लेकर वे जॉनसन-हम्फ्रीगुट को आडे हाथों लेते रहते हैं। इस तरह विरोधाभासों से भरी हुई राबर्ट केनेडी की राजनीतिक भूमिका जनसामान्य के लिए पहेली बनी हुई है और एक अनजान लड़के की गोली ने इस पहेली को भी नया ही रंग दे डाला है।

— २१ जून, १९६८

ग्रेन्ड केनयन : देखते ही रहो

'देखो, गेण्ड केनयन देखे विना अमरीका से वापिस मत आना' यह आदेश पूर्ण परामर्श मुझे अमरीका रवाना होते समय 'मदर इण्डिया' के जाने - माने सम्पादक वावूराव पटेल ने दिया था और कहा था — प्रकृति ने हर देश को कुछ न कुछ दिया है, लेकिन ग्रेण्ड केनयन व न्याग्रा प्रपात सिर्फ अमरीका को ही दिया है, जिसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। मैं ग्रेण्ड केनयन देखने के वाद यह महसूस करता हूं कि अगर मुझे अमरीका भर में कुछ भी देखने का अवसर नहीं मिलता तो इस एक चीज को देखकर ही मैं अपना अहोभाग्य समझता।

ग्रेण्ड केनयन अमरीका के राजस्थान जैसे एरिजोना राज्य की मरुभूमि में कोलेरेडो नदी की एक चट्टानी रचना है, जो देखने पर मुझे ऐसी लगी जैसे कि पृथ्वी का गोलक एक पके हुए अनार की तरह इस जगह पर तड़क गया हो और भीतर से उसकी पारदर्शी आभा झांक रही हो, जैसे त्रेता युग में भगवती सीता को अपनी गोद

में समेट लेने के लिए धरती माता इसी जगह पर फटी थी और फटी की फटी रह गई। यह ग्रेण्ड केनयन का एक भौगोलिक रूप है परन्तु उसका जो सौन्दर्य है उस पर लेखनी चलाना मेरे बूते की बात नहीं है। न जाने कितने चित्रकार, कवि और लेखक ग्रेण्ड केनयन के अनन्त अक्षुण्ण सौन्दर्य को आंकते-आंकते हार गये हैं किन्तु उसकी एक झलक भी नहीं पा सके। भूगर्भ-वेत्ताओं के लिए यह आज भी अध्ययन का विषय है। ऋतु विज्ञान का यह एक कौतूहल है। वनस्पति एवं जीव शास्त्र का विद्यालय है और रंगों का पल पल बदलता हुआ एक मेला है। रंगों की दृष्टि से ग्रेण्ड केनियन एक स्थिर चलचित्र है जिस पर लाख लाख इन्द्र धनुष न्यौछावर होते हैं।

ग्रेण्ड केनयन प्रकृति देवी की या पंचभूतों की एक सामूहिक रचना, है, जिसमें कोलेरेडो नदी एरिजोना राज्य की सर्द-गर्म हवाओं के थपेड़ों, शीत ऋतु में होने वाले हिमपात आदि ने न्यूनाधिक मात्रा में योगदान किया हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि ग्रेण्ड केनयन को काट कर तराश कर वर्तमान रूप देने में प्रकृति को सत्तर से नब्वे लाख वर्ष तक का समय लगा होगा। पृथ्वी की सात जलवायु पट्टियों का इसमें समावेश है और भूगर्भ विज्ञान के इतिहास के तीन अध्याय यहां प्रगट रूप में हैं। भूगर्भ के इतिहास का प्रथम अध्याय इन चट्टानों में निहित है। ग्रेण्ड केनयन नेशनल पार्क में प्रागैतिहासिक काल के पांच सौ प्रमाण सुरक्षित रखे हुए हैं। केनयन की लम्बाई दो सौ सत्रह मील और चौड़ाई चार से अट्ठारह मील तक है। इसका पता सबसे पहिले डॉन लोपेजद कार्डेनस नामक व्यक्ति को लगा था। बाद में लोग आने लगे, देख कर प्रशंसा करने लगे। आज वह एक नेशनल पार्क है, जो संसार भर के पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। इस पार्क में अमरीका का ऐश्वर्य, आडम्बर आदि कुछ भी नहीं दिखाई देता। हर चीज को इस तरह बनाया गया है कि वह ग्रेण्ड केनयन के महत्व की रक्षा करे, वृद्धि करे और उसके निकट प्रतीत हो।

अपनी भाषा में प्रकट करने के लिए मैं केनयन को खुली कन्दरा कहना चाहूंगा। ग्रेण्ड केनयन एक विशाल कन्दरा है। कोलेरेडो नदी ने शायद सृष्टि के आरम्भ में एरिजोना की इस पठारी धरती को काटना शुरू किया होगा। हो सकता है, धरती का पर्वतीय अंश स्थिर रह गया और मरु भाग कटता गया। कटे हुए पर्वतीय खण्डों को पवन के झकोरों ने लाखों बरसों तक घिसा, अनवरत हिमपात के कारण उनमें एक निखार आया और कन्दरा एक नई ही सृष्टि बन गई। कोलेरेडो नदी का प्रवाह संभवतः काल की भांति ही प्रचण्ड रहा होगा, जिसके कटाव के कारण ग्रेण्ड केनयन की गहराई धरती की सतह से नीचे एक मील तक चली गई। कहीं-कहीं वह सात हजार फीट गहरी भी हो गई है। एक मील गहरी अट्ठारह मील तक चौड़ी और दो सौ सत्रह मील लम्बी एक खाई, जिसके बीच में छोटेछोटे पर्वत शिविर गलता और नाहरगढ़ जैसे इस तरह कटे हुए, तराशे हुए और संवारे हुए खड़े हैं जैसे मिश्र देश के पिरामिड यहां स्वतः ही बन गये हैं, रंग जैसे तांबे का पोता गया हो।

बीच-बीच में सफेद, मटमैला, नीला और काला रंग भी नजर आता है। वनस्पति की हरियाली, सूरज की सुनहरी धूप और चांद की रूपहली चांदनी, बादलों की छाया इत्यादि मिल कर ग्रेण्ड केनयन को न जाने क्या-क्या रूप रंग दे देते हैं। दिन में जब बादल छा जाते हैं। या शाम को जब सूरज ढलने लगता है, ग्रेण्ड केनयन का अपार गह्वर ऐसा लगता है कि धरती ने आसमान को अपनी गोद में भर लिया हो। एक छोटा सा आकाश आपके पैरों तले लेटा सा नजर आता है। केनयन में आकाश की नीली आभा के बीच से झांकते हुए पर्वतीय खण्ड मेघदूत की अलकापुरी के यक्षप्रासादों की तरह नजर आते हैं। पलक मारते ही उनके रंग बदल जाते हैं। देखते ही रहो, लेकिन आंखें नहीं थकतीं।

ग्रेण्ड केनयन में नीचे उतरने के लिए खच्चरों के रास्ते बने हुए हैं, लेकिन पैदल उतरने में करीब चौदह घण्टे का समय लगता

है। खच्चरों पर चढ़कर उतरने वाले थक कर चूर हो जाते हैं। शरीर इस तरह अकड़ जाता है जैसे कि पहिले पहिले किसी शहरी आदमी ने ऊंट की सवारी की हो। नीचे नदी का घुमाव इतना टेढ़ा-मेढ़ा है कि धरती के ऊपर सात मील की दूरी तय करने में जल की धारा को करीब ३५६ मील चलना पड़ता है। एक एक मील की दूरी पर सात सौ तक प्रपात देखने को मिलते हैं। जल धारा का प्रवाह अड़तीस मील से लेकर ढाई सौ मील प्रति घण्टे तक पहुंच जाता है। हाल ही में ग्रेण्ड केनयन से कुछ दूरी पर एक बांध बना दिया गया है, वरना कोलेरेडो नदी चौबीस घन्टे में पांच लाख टन मिट्टी अपने साथ बहा कर समुद्र में ले जाया करती थी।

ग्रेण्ड केनयन एक एकांत स्थल है। यहां कोई बड़ी आबादी नहीं है। जो आबादी है, वह पर्यटकों की और उनके लिए आवश्यक साधन जुटानेवालों की है। यह स्थान इतना एकान्त और निर्जन है कि भारतीय ऋषियों के लिए एक आदर्श तपोभूमि बन जाती। इतना शून्य एवं एकान्त कि जिसे योगियों ने 'अनहद नाद' कहा है, यहां सुना जा सकता है। जलधारा या निर्झरों की कल कल या पक्षियों का कलरव इस कन्दरा के ही अनहद अनन्त संगीत में विलीन हो जाता है। एक मील ऊपर से देखने पर कोलेरेडो की धारा भी स्थिर मेखला की भांति प्रतीत होती है।

नैसर्गिक सौन्दर्य का यह वह स्थल है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसकी प्रतीति या अनुभूति मात्र की जा सकती है। यह रचना कोलेरेडो की जलधारा ही कर सकती थी और एरिजोना की धरती ही वह सामग्री प्रस्तुत कर सकती थी जो ग्रेण्ड केनयन के चित्र-वास्तु शिल्प के काम में आई है। अमरीका का सारा बल-वैभव इसके सामने अकिञ्चन सा लगता है। मैं बचपन में हरि-कीर्तन में एक गाना सुना करता था—धन धन रे तेरी कारीगरी रे करतार। ग्रेण्ड केनयन उस करतार की कुछ ऐसी ही अद्भुत कारीगरी है।

— २२ जून, १९६८
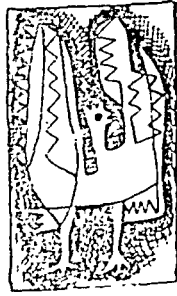
नई पीढ़ी : बदले तेवर

क्या अमरीका की जवान पीढ़ी बगावत के रास्ते पर है ? जी हां, वह बगावत के रास्ते पर है और रुकेगी नहीं। अमरीकी लड़के-लड़कियों को यह सुनकर शर्म आती है कि भारत के जवान लोग उनको तफरीबाज या शौकीन मिजाज समझते है। मैं यह बात कहना चाहता हूं, एक महीने में सैकड़ों अमरीकी लड़के-लड़कियों से बातचीत करके और एक बार खुलासा बहस करके। अमरीका की नई पीढ़ी एकदम जागरूक है और अपना अच्छा-बुरा अर्थात् अमरीका का अच्छा बुरा अच्छी तरह समझती है। वियतनाम-युद्ध में अमरीकी सेना पर जो ब्रेक लगा है, वह सिर्फ इसलिए नहीं कि केनेडी या मेकार्थी ने इसे अपने चुनाव अभियान का मुद्दा बना लिया था, बल्कि इसलिए कि इन दोनों ही सेनेटरों को अमरीका की जवान पीढ़ी का पुरजोर समर्थन प्राप्त है और यह पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी के अगुवाओं से हर तरह निपटने पर तुली

हुई है। पिछले साल विद्यार्थियों ने युद्ध के विरुद्ध जो देश-व्यापी प्रदर्शन किये थे, अमरीकी जनमानस और प्रशासन पर आज तक उनकी छाप है। काले और गोरे का, गरीब और अमीर का फर्क अमरीका की नई पीढ़ी में सबसे कम है और उसे भी मिटा देना चाहती है।

वाशिंगटन से मैंने शुरू-शुरू में एक लेख लिख कर भेजा था जिसमें हिप्पियों के बारे में चालू तौर पर छोटीसी टीका-टिप्पणी कर दी थी लेकिन अब मैं महसूस करता हूं कि वह जल्दबाजी थी। हिप्पीज के बारे में मैंने अपने आप से यह प्रश्न पूछा ही नहीं कि भरा-पूरा घर छोड़कर उसने फुटपाथ क्यों पकड़ा? फैशन और डिजाइन के इस स्वर्ण युग में वह चिथड़े क्यों पहिनता है? वह न तो नीग्रो जवान की तरह दंगा या जुर्म करता है और न गोरे अधेड़ों की तरह ऐश करता है। वह शायद दोनों के बोझ को अपने कन्धों पर ढोये हुए है। वह अपने समाज में 'मिसफिट' है, बेतुका है और समाज को किसी नये रूप में देखना चाहता है।

अमरीकी लड़के-लड़की बेशक हेम्बर्गर खाते हैं और कोक [कोका कोला] पीते हैं लेकिन 'पिल' [गर्भ निरोधक गोली] और ड्रग [मादक पदार्थ] भी उनकी अतिरिक्त खुराक बन गई है। क्या यह उनके जीवन का क्रम बन जायेगा और क्या वे स्वेच्छाचारी हैं? क्या वे अपने वर्तमान एवं भविष्य के बारे में कुछ सोच विचार नहीं करते? क्या अमरीकी युवा में रोमान्स जैसी कोई प्रवृत्ति शेष रह गई है? क्या वह महत्वाकांक्षी है? क्या वे भारत के युवक-युवतियों से अलग किस्म के हैं? इन सवालों पर कुछ चर्चा कर लेना शायद ठीक होगा। यह जरूरी नहीं है कि इन सवालों का जवाब मिल जाय, लेकिन आज ये सवाल सामने हैं और जवाब चाहते हैं।

'डेटिंग' [लड़के-लड़की के मिलन का एक तरीका] अमरीकी युवा के लिए क्या अर्थ रखता है? कोर्टशिप जैसी कोई चीज

अब नहीं रह गई है या डेटिंग में ही समा गई है। यह अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव के साथ ही समाप्त हो गया। अंग्रेजियत अब पुराने युग की चीज रह गई है। अंग्रेजी से मेरा मतलब ब्रिटिश से है, भाषा से नहीं, हालांकि अमरीका की अंग्रेजी भी कई अर्थों में अलग है। अमरीकी युवक का रोजगार व अर्थतन्त्र में क्या स्थान है और वह अपने भविष्य के प्रति क्या अपेक्षाएं रखता है? ये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके बारे में हमारे नवयुवक जानने को उत्सुक रहते हैं।

अमरीका बीसवीं सदी के शुरू से ही समृद्धि की ओर बढ़ता रहा है, लेकिन दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का सितारा डूबने के साथ ही अमरीका की समृद्धि दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ गई। उसने यूरोप के अन्य अग्रगामी देशों और जापान का बाजार भी अपने हाथ में कर लिया और स्थिति ऐसी हो गई कि विश्व में डालर का एक छत्र प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसके साथ ही साथ अमरीका की अपनी समस्याएं भी बढ़ने लगी। बड़े शहरों में आबादी के जमाव का बेहद बढ़ जाना, विज्ञान एवं टेकनोलॉजी का विस्तार, ट्रेड यूनियनों का मजबूत होना, नीग्रो लोगों की जागृति, विदेशों में अमरीकी दायित्व एवं हस्तक्षेप का बढ़ना और रूस-चीन की चुनौतियां कुछ इस तरह की समस्याएं हैं, जिन्होंने अमरीका की नई पीढ़ी को नये सिरे से और नये तरीके से सोचने को बाध्य कर दिया या यों कहा जाय कि एक नई ही पीढ़ी अमरीका में तैयार हो गई है, जिसकी मानसिक रचना अपनी पुरानी पीढ़ी से बिल्कुल ही मेल नहीं खाती। भारत में भी आजादी के बाद की या दूसरे महायुद्ध के बाद की एक नई पीढ़ी पैदा हुई है जिसकी अपनी एक दृष्टि है और अपनी ही समस्याएं हैं, लेकिन वे दूसरी ही तरह की हैं।

मैंने ऊपर लिखा है कि अमरीकी युवक बगावत के रास्ते पर हैं लेकिन वह किसके खिलाफ बगावत कर रहा है? वह अपनी सरकार और अपने समाज के खिलाफ भी नहीं है लेकिन पुरानी पीढ़ी की विरासत के खिलाफ और स्थापित मूल्यों के खिलाफ अवश्य है।

मैंने करीब पांच सप्ताह के अपने दौरे में विद्यार्थी वर्ग से सम्पर्क स्थापित किया, मैं राज्य सेवा में रत युवकों से मिला, पत्रकारों के बीच गया और अन्य कई क्षेत्रों में काम करने वाले युवा वर्ग से मिला। एक वार के अलावा मेरी सभी मुलाकातें विना किसी आयोजन के हुईं और एक वार योजनावद्ध रूप से भी हुई, किन्तु मेरे ही आग्रह पर जव कि मैंने विश्वविद्यालय के छात्रों से मिलने की इच्छा प्रकट की। सव मिलाकार मैं करीब तीन सौ व्यक्तियों से मिला, जिनमें से एक ने भी वियतनाम युद्ध का समर्थन नहीं किया। यह प्रश्न उल्टा मुझसे पूछते रहे कि अमरीका वियतनाम में स्वयं क्यों लड़ रहा है? टेलीविजन पर प्रायः रोज ही वियतनाम के वारे में कुछ न कुछ दिखाया जाता है, लेकिन मैंने यही पाया कि उसमें दर्शक रुचि नहीं दिखाते। इसके वजाय वे विज्ञापन सम्बन्धी प्रसारण में ज्यादा रुचि दिखलाते हैं। अमरीकी दर्शक खासतौर पर युवक वर्ग वियत-नाम से जैसे ऊब गया है। मेरे सम्पर्क में आने वाले युवकों में ९९ प्रतिशत गरीवों के समर्थक नजर आये और नीग्रों लोगों की सम-स्याओं के प्रति संवेदनशील थे। 'आखिर ये लोग जायेंगे कहां? उनके लिए एक मात्र आसरा अमरीका है।' कुछ ऐसे भी थे, जो इतना कहते थे कि नीग्रो लोगों को भी नये जमाने की मांग के अनु-सार अपने आप को जरा ढालना चाहिए अर्थात् सीख-पढ़कर तैयार होना चाहिए। उनका कहना था कि पिछले एक साल में रोजगार की सम्भावना ज्यादा वढ़ी है और वाजार में ग्रेजुएट की कीमत सात सौ डालर प्रति मास है। मई के महीने में अकेले न्यूयार्क शहर में बाईस हजार काम की जगह खाली पड़ी रही, जिन पर गोरे-काले कोई भी उपलब्ध नहीं थे।

फिर भी युवक वर्ग में यह जवर्दस्त अहसास है कि सरकार को वड़े पैमाने पर कार्यक्रम हाथ में लेकर गरीवी की समस्या को तुरन्त दूर करना चाहिये। सीनेटर केनेडी और मेकार्थी ने युवक पीढ़ी की इस भावना को मद्देनजर रख कर ही अपना चुनाव अभियान चलाया

और उन्हें गरीव तवके के वोट करीव करीव वरावर ही मिले। इनमें भी केनेडी को कालों के वोट ज्यादा मिले। आजकल विश्वविद्यालयों में आखिरी परीक्षाएं चल रही हैं, अतः विद्यार्थी अपना सारा समय उसी में लगा रहा है। मैदान में उनकी कोई हलचल नहीं है, वरना पूरे साल वे अमरीकी जनजीवन पर छाये रहे हैं। उनकी एक ही आवाज थी—युद्ध वन्द करो, गरीवी दूर करो। उनकी अपनी शैक्षणिक समस्याएं भी थीं पर उनके लिए स्थानीय आधार पर आन्दोलन किये गये, लेकिन युद्ध के विरुद्ध देश भर में आन्दोलन-प्रदर्शन हुए।

इस दृष्टि से युवक पीढ़ी में चेतना पैदा करने में हिप्पी-आन्दोलन ने भी उल्लेखनीय भूमिका निभाई, भले ही उनको वह श्रेय नहीं मिला। मैंने नक्सावील [टेनेसी] में एक हिप्पी से करीव तीन घण्टे वातचीत की और उसने दार्शनिक पुट के साथ मुझे वताया कि हमें—अमरीका को—एक दिशा और एक मंजिल अपने लिए निश्चित करनी पड़ेगी और तव तक अपनी दौड़ को वन्द करना पड़ेगा। आखिर हम जाना कहां चाहते हैं यह सवाल हमें अपने आप से पूछना पड़ेगा। ठीक है कि हमारे देश में वहुत कम लोग गरीव हैं, करीव चार प्रतिशत, लेकिन सवाल यह है कि वे गरीव क्यों हैं जव कि दुनिया भर में अमरीका धन कुवेर माना जाता है और यह सही भी है। हिप्पी युवक ने वताया कि वे एक अतीव धनी परिवार के वंशज हैं लेकिन मेरी समझ में ही नहीं आता कि इतने धन का क्या होगा? हम लोग एक तरह का खाना खाते हैं, एक ही तरह का कपड़ा पहिनते हैं और एक ही तरह की कारें रखते हैं क्योंकि सव चीज एक तरह के मानदण्ड की, एक स्तर की [डिजाइन और क्वालिटी में थोड़ा ही भेद होता है] हैं फिर दौलत किस काम आयेगी? मकान और जवाहिरात में कुछ ज्यादा खर्च हो सकता है लेकिन वह भी रोजमर्रा तो नहीं हो सकता। उन्होंने वताया कि जवान होते ही लड़के-लड़के भी अपना अपना अलग घर वसा लेते हैं। उनको रोजगार

की कमी नहीं। फिर दौलत बटोरकर जायदाद को बढ़ाने से फायदा ? यहां मुझे याद आया 'पूत कपूत तो क्यों धन संचय, पूत सपूत तो क्यों धन संचय ?' मैंने हंसी के साथ एक अटपटी सी बात कही कि वह दौलत मां-बापों के वाद तो आपको ही मिलेगी। मेरी ही तरह की हंसी के साथ हिप्पी ने जवाव दिया 'मरने के वाद अगर वे मेरे लिए छोड़ जा सकते हैं तो जीते जी ही क्यों नहीं खर्च करूं। बहुत लोगों को जरूरत है।'

मैंने पूछा कि हमारे यहां यह प्रचार है कि हिप्पी लोग मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। उन्होंने कहा—यह प्रचार ही नहीं है सच बात है लेकिन आप इसमें अपनी नैतिकता क्यों घुसेड़ना चाहते हैं। हम मादक पदार्थों के प्रचारक नहीं हैं। हम लोग मौजूदा समाज में मिसफिट हैं, लेकिन ऐसे भी तो हैं और ज्यादा हैं, जो फिजूल बदनाम हैं। हमारी निगाह में वदनामी का कोई महत्व नहीं है। हम तो इन मूल्यों को ही नहीं मानते। हम एक चीज के लिए प्रयत्न कर रहे हैं और वह यह कि मनुष्य जो घर में है, वह वाहर भी रहे, जो अन्तरंग में है वह वहिरंग में भी रहे। अगर कोई शान्ति की वात करता है तो युद्ध से विमुख रहे और समृद्धि का प्रचार करता है तो गरीवी का नामोनिशान मिटाने का व्रत पहिले ले। हम मनुष्य को विकृत व्यक्तित्व से मुक्ति दिलाने की वात पर जोर देते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व एक हो, एकत्वमय हो और एकाकार हो। व्यक्तिगत द्वैत या वैषम्य ही सामाजिक वैषम्य का मूल है और हम यह मानते हैं कि व्यक्ति ही समाज-रचना का मूल है।

प्रश्न—क्या सभी हिप्पी इसी तरह सोचते हैं ?

उत्तर—या तो वे इसी तरह सोचते हैं या इन वातों को समझने की कोशिश करते हैं। कई लोग यों ही साथ वैठते उठते हैं। उनको इसी में अच्छा लगता है। पढ़ते भी हैं।

प्रश्न—क्या हिप्पियों की कोई खास वेशभूषा है ?

उत्तर—नहीं, देखा देखी लोग एक तरह का पहिनावा या

वनाव करने लगे हैं।

प्रश्न—क्या अमरीकी समाज में हिप्पी आंदोलन का सम्मान है?

उत्तर—हमें मालूम नहीं। सम्मान और असम्मान की भावना से हम मुक्त रहना चाहते हैं। ऐसे लोगों की तादाद वढ़ती जा रही है। मैं एक वात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हमारी पिछली पीढ़ी में सफल व्यक्तियों की प्रतिष्ठा होती थी। केल्वीनिस्ट चर्च का यह मानना था कि जिसको प्रभु का आशीर्वाद है, वही संसार में सफल होता है। अव वह वात नहीं है। सम्मान के माप-तौल बदल गये हैं। अव कोई भी अदना आदमी असम्मान की नजर से नहीं देखा जाता। फिर भी हम इस मामले में अपना सिर नहीं खपाना चाहते। यह व्यर्थ-सी वात है।

हिप्पी की वातचीत में मुझे बनावटीपन नजर नहीं आया। उसकी वाणी में विनय और कोमलता थी। आंखों में निश्छलता, हंसी में आकर्षण और वेशभूषा में विरक्ति। इस तरह के लोग जहां-तहां कई देखने को मिल जाते थे और अब तो यह वेशभूषा और बनाव जैसे रिवाज वन गया है। विद्यार्थी - वर्ग में मैंने यहां शृंगार और मेकअप का आजकल नितांत अभाव देखा। वह सिर्फ पेशे की जरूरत रह गई है। लड़कियों पर भी यही वात लागू है। केश अव लम्बे नजर आते हैं।

मैं इंडियाना विश्वविद्यालय में लोकवार्ता संस्थान को देखने गया तो कुछ छात्रों से मेरा परिचय हो गया। मैंने कुछेक को अपने निवास पर बुलाया। काफी देर वातचीत की और अच्छी लगी। ये छात्र पढ़ते भी हैं और काम धन्धा करके अपना खर्च भी चला लेते हैं। उनकी वातचीत से मुझे यह वात ज्यादा सही नहीं लगी कि वे सिर्फ़ मौज-वहार या नारेवाजी ही करते हैं। वे पढ़ते भी हैं और कमाते भी हैं, इसलिए संक्षेप में यों कहना पड़ेगा कि वे जो कुछ करते हैं अपने वलवूते पर करते हैं याने मां वापों के पैसे पर गुल-छर्रे नहीं उड़ाते। हाई स्कूल, ग्रेजुएट वनने के साथ ही अमरीकी

युवकों का संघर्ष शुरू हो जाता है। इसलिए वे कहते हैं कि वे तो पैदा होते ही ग्रेजुएट हो जाते हैं और आज के युग का हर युवक ऐसा ही है, अतः उसे छोकरा कह कर उड़ा देना भारी भूल है। यही दावा अमरीका की हाई स्कूल पास छात्रा करती है और वह पीछे नहीं रहना चाहती। आमतौर पर दो-तीन लड़कियां एक मकान लेकर रहती हैं या विश्वविद्यालय द्वारा दिये गये कमरों में रह कर कमाती हैं और पढ़ती हैं। कमाने और पढ़ने के अलावा उनके पास फुर्सत का समय शनिवार और रविवार का रहता है। इन्हीं दो दिनों को ये लड़के लड़की अपनी इच्छानुसार जीने का समय मानते हैं और जीते हैं। इन्हीं दो दिनों में पिकनिक, डिनर कंसर्ट, डेटिंग और सिनेमा-थियेटर होते हैं। इन्हीं दो दिनों में घर साफ करना, खरीददारी करना और कपड़े धोना होता है। इस तरह का जीवन बिताने वाले की नैतिकता, उसका अनुशासन, उसकी मानसिक रुझान व रचना किस तरह की होगी, उसको हमारे देश के लोग आसानी से नहीं समझ सकते।

अमरीका में आजकल शादी की उम्र बीस साल के नीचे आ चुकी है और उसका एकमात्र कारण परिस्थितियां हैं। बेशक शादी का आधार आपसी पसन्द ही होता है, लेकिन लड़के-लड़की अपना घर बसाकर एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। मैंने मालूम किया कि कई लड़कियां कमाई करती हैं और उनके पति अध्ययन करने में पूरा समय लगाते हैं। उच्च परीक्षा पास कर लेने पर उनकी आमदनी बढ़ जाती है और जिन्दगी ज्यादा सुविधापूर्ण हो जाती है। कुछ पति-पत्नी दोनों ही पढ़ते हैं और काम करते हैं तथा घर का काम बांट लेते हैं। घर बसाने की भूमिका विद्यार्थी जीवन में ही हो जाती है और जिस 'पिल' का बहुत ज्यादा शोरगुल है, इस भूमिका में बेहद मदद करती है। आजकल अधिकांश मामले इस तरह के सामने आए हैं कि 'डेटिंग' का दायरा सीमित हो गया है। डेटिंग को मैं आधुनिक वैज्ञानिक एवं औद्योगिक सभ्यता का स्वयंवर कह सकता

हूं, जैसा कि सामन्ती सभ्यता में दुष्यन्त और शकुन्तला का वर्णन है। केवल उत्तरार्द्ध में परित्याग का प्रसंग भिन्न भिन्न है, लेकिन वह भी बदलता जा रहा है। पिछले एक साल में वफेलो राज्य में कई मामले ऐसे सामने आये हैं कि तलाक के बाद पति-पत्नी फिर मिल गए और एक साथ जीवन विताने लगे हैं। स्वच्छन्दता का स्थान समझौता लेने लगा है, लेकिन ज्यादा नहीं है। आर्थिक स्वतन्त्रता व सुरक्षा की भावना ने समझौते को जरा मंहगा बना दिया है।

जैसा कि मैंने ऊपर जिक्र किया है, टेनेसी में मैंने कुछ विद्यार्थियों एवं अन्य युवकों से मिलने की इच्छा प्रकट की। एक घर पर आयोजन हुआ। लगभग आधे दर्जन लड़के-लड़की एक प्रोफेसर के घर पर इकट्ठे हुए। समाज शास्त्र, भौतिक विज्ञान, गणित और अर्थशास्त्र के स्नातक थे। प्रोफेसर श्री विक रसायन शास्त्र के गुरु थे। शाम को ओलों की वरसात में मुझे लिवाने आ गए। बड़े खुश हुए। घर जाकर सब लोगों से राम-राम और कुशल क्षेम हुई। कॉकटेल और सिगरेट तो मानी हुई बात थी। चर्चा शुरू हुई और ज्यादातर भारत पर केंद्रित रही या भारत अमरीका के सम्बन्धों पर। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि ये विद्यार्थी हर समस्या पर बातचीत करने में समर्थ थे और युग की आवश्यकताओं के प्रति बेहद जागरूक थे।

बातचीत होते होते अलग अलग मोर्चे खुल गये। मैंने सबको एक तरफ लाने के लिए बीच ही में एक सवाल रखा। मैंने पूछा: सीनेटर केनेडी का कहना है कि अमरीका को दुनिया भर की चौकीदारी का ठेका नहीं लेना चाहिए, इस कथन की व्याख्या आप किस तरह करते हैं। मेरी बात में सचमुच सभी को दिलचस्पी हुई। एक ने आगे बढ़कर कहा—हमने सैनिक सन्धियां बनाईं। एक सन्धि के अन्तर्गत पाकिस्तान को शस्त्रास्त्र दिये, कम्यूनिस्टों का प्रसार रोकने के लिए, लेकिन उन हथियारों का उपयोग भारत के खिलाफ हुआ। हमारे हथियार बर्बाद हुए और दो देशों की दोस्ती में नाइत्तफाक पैदा

होने की सूरत वन गई। इस चौकीदारी से क्या फायदा ? मैं सच-मुच हैरत में पड़ गया और कूटनीतिक वार को संभाल नहीं पाया। फिर भी मैंने दूसरा रवैया अपनाया। मैंने कहा हमें पाकिस्तान से इतना खतरा इस बात का नहीं है, लेकिन खतरा इस वात का है कि वह चीन को शह देता रहता है, रास्ता देता है और मौका देता है। इस तरह हमें अब पाकिस्तान को चीन के रूप में देखना पड़ता है।

प्रोफेसर साहब मेरे पैंतरे को शायद भांप गये, बोले—भारत परमाणु सन्धि पर स्वीकृति क्यों नहीं देना चाहता ? पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि इस सवाल का जवाब मुझे नहीं देना पड़ा। एक लड़की आगे आई। उसने कहा—आत्मरक्षा का अधिकार कभी किसी दूसरे को नहीं देना चाहिये। यह तो आत्मघात के ही समान होगा। यह लड़की अलबामा विश्वविद्यालय से छुट्टियों में आई थी। अलबामा केप कनेडी रॉकेट केन्द्र का योजक और सहायक है; जहां गवेषणा भी होती है और ट्रेनिंग भी। इस लड़की की बात सुनकर सभी उछल पड़े। प्रोफेसर साहब ने भी मुक्त कण्ठ से यह सिद्धान्त स्वीकार किया। बातचीत का रुख बदला। आर्थिक और सामाजिक विषयों पर भी बात चली और यहां तक पहुंच गई कि जब दुनिया के सारे देश उद्योगों के विकास की ओर बढ़ेंगे तो कच्चा माल कहां से आयेगा। इस प्रश्न पर भी अकारण ही काफी विचार विमर्श हो गया लेकिन मैंने यह कह कर एक विराम लगाया कि जव दुनिया इतनी तरक्की कर जायेगी तो कच्चे माल का रूप ही बदल जायेगा।

अमरीका में आज कम्प्यूटर का युग आ गया है। कल शायद किरणों का या ध्वनि का युग आ जाय। तव कच्चे माल का अर्थ क्या रह जायेगा। इस पर किसी ने कोई विवाद नहीं किया। शायद बात कुछ नई सी लगी और गले उतरने वाली भी। कई तरह की बातें हुईं, खुल कर, उन सवका उल्लेख करने की जरूरत यहां नहीं है। मैंने यह चर्चा शुरू की थी, अमरीका की नई पौध की एक

झलक पेश करने के लिए। मुझे यह लगा कि ये लोग उदासीन नहीं हैं। विश्वविद्यालयों में लाखों की तादाद में तैयार हो रहे हैं और पुरानी पीढ़ी की जमी हुई दूकान को चुनौती देने वाले हैं।

रात के करीब ग्यारह बज गये। मुझे इसके बाद कुछ भारतीय विद्यार्थियों से भी मिलने को जाना था। देर बहुत हो चुकी थी। उठने को हुआ तो जाते जाते दो तीन लड़कों ने, शायद सोच कर ही पूछा भारत का भविष्य मुझे कैसा लगता है ? मैंने तुरन्त जोर के साथ कहा 'बहुत अच्छा, बहुत ही अच्छा। हमारी नई पीढ़ी बहुत तेजी से सामने आ रही है।'

एक ने बड़े उत्साह से पूछा—भारत को संभलने में कितना समय चाहिए। मैंने उठते उठते कहा—मेरे आगे आने वाली पीढ़ी भारत को अच्छी तरह संभाल लेगी—आज़ादी के बाद तैयार हुई पीढ़ी। तब तक वह पीढ़ी एकदम समाप्त हो जायेगी, जो आजादी के समय देश पर हावी थी और वह पीढ़ी गौण हो जायेगी जो आज जमी हुई है। हमारी नई पीढ़ी में बहुत योग्य, ईमानदार और परिश्रमी प्रशासक, व्यवसायी, किसान, वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर आदि तैयार हो रहे हैं। आज उनको अवसर नहीं है, सब कुछ धुंधला लगता है, लेकिन वह अभी पौध के रूप में है। फसल बहुत अच्छी है।

यह बात सुनकर सब लोग बहुत खुश हुए, इतने कि मुझसे ऑटोग्राफ मांगने लगे। मैंने हंसकर कहा—मुझे अंग्रेजी लिखना नहीं आता और आप लोगों को हिन्दी नहीं आती। मैं जितना बोल लेता हूं, उतना हमारे अंग्रेजी होटलों के खानसामे भी बोल लेते हैं।

बड़ा हो हल्ला रहा और हो हल्ले के साथ महफिल उठ गई। लड़के अपनी कार में मुझे भारतीय विद्यार्थियों के अपार्टमेंट [फ्लैट] तक पहुंचा कर गये।

— २३ जून, १९६८

देश काल का संकट

देश और काल का जो संकट अमरीका के सामने आज है, वह पहिले कभी नहीं था और न जाने अन्य किसी देश के सामने है भी अथवा नहीं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। देश से मेरा अभिप्राय स्थान से है और काल का अर्थ समय से है। अमरीका का इन्सान चाबुक खाये हुए घोड़े की तरह या चाबी भरे हुए खिलौने की तरह दौड़ा जा रहा है। कभी कभी उसे महसूस होता है कि पांव फूल गये हैं और दम भरने लगा है, लेकिन वह सुस्ताना नहीं चाहता या सुस्ताने की उसे फुर्सत नहीं है। चलते चलते ही वह दम ले लेगा अथवा अन्य उपायों से पांवों की थकान मिटा लेगा और चलता ही रहेगा।

अमरीका के पास अपार भूमि है और जन संख्या बहुत कम है, लेकिन जहां देखो भीड़ नजर आती है, जैसे तिल रखने की जगह नहीं। लगता है वीस करोड़ अमरीकी लोग एक ही साथ एक ही जगह रहते हैं, एक ही साथ चलते हैं, एक ही जगह खाते-पीते हैं। लगता है कि बीस करोड़ की जन संख्या एक ही 'गोखुर' [गाय के खुर] में रहना चाहती है। १९६५ में जव न्यूयार्क में एक

सौ दो मंजिल ऊंची एम्पायर स्टेट विल्डिंग बनी, लोग समझते थे कि इफरात का धन है जिसे शान दिखाने के लिए खर्च किया जा रहा है, लेकिन नहीं। अब तो पूरा मेनहट्टन द्वीप गगनचुम्बी भवनों से भर गया है, इसलिए कि मकानों के फैलाव की जगह नहीं है। आज भी पुराने मकानों को तोड़ कर गगनचुम्बी मकान बनाये जा रहे हैं, क्योंकि धरती पर जगह नहीं। न्यूयार्क ही नहीं, अब तो छोटे शहरों का भी यही हाल है। इन ऊंची इमारतों के कारण न्यूयार्क, शिकागो, लासएंजिल्स जैसे शहरों में तो वायु के दूषित होने की गंभीर समस्या पैदा हो गई है और वैज्ञानिक लगे हुए हैं वायु शुद्ध करने के उपायों की खोज में। दूसरी ओर कारखानों के जमाव के कारण नदियों का जल दूषित हो रहा है, जिसे साफ करने के लिए बड़े बड़े प्लांट बन रहे हैं। यह समस्या नई नहीं है और स्थानीय भी नहीं है कि पार्किंग का क्या किया जाय? अमरीका में मोटरें इतनी ज्यादा हो गई हैं और जो भारत के एक गरीब घर के बराबर की जगह अपने लिए चाहती हैं। मोटरों की बहुतायत ने घरों को भले ही छोटा कर दिया हो, सड़कों को रेसकोर्स का मैदान बना दिया है।

पार्किंग की समस्या छोटे से छोटे शहर में पैदा हो गई है, यहां तक कि दस हजार की आबादी वाले [केप केनेडी] कोको शहर में भी और साढ़े तीन हजार की आबादी वाले चिलीकोट [इलिनॉय राज्य] में भी। अमरीका में इस समय कोई नौ करोड़ मोटरें सड़कों पर हैं जिनमें पैट्रोल भरने के लिये, पार्किंग के लिये, मरम्मत के लिये, पुरानी पड़ने पर बेचने के लिये और बेकार हो जाने पर फेंकने के लिये तथा दौड़ने के लिये जगह चाहिये लेकिन जगह नहीं है। छोटे छोटे शहरों में साठ सेण्ट और न्यूयार्क में दो डालर प्रति घण्टे तक पार्किंग का भाव है, बशर्ते कि जगह मिल जाय। जमीन के नीचे पार्किंग है तो ऊपर चार-पांच मंजिल तक पार्किंग है, सड़क के आस-पास है और मकानों के इर्दगिर्द है, फिर भी जगह की कमी है। वाशिंगटन में मुझे भवानीमल जी माथुर ने अपना ही तजुर्बा बताया

कि उनको न्यूयार्क में पार्किंग के लिये एक घण्टे से ज्यादा देर तक भटकना पड़ा। एक शादी में पहुंचने में देर भी हो गई।

मेरे सामने भी इस तरह की समस्या कई बार आई। मैंने एक घटना तो ऐसी देखी कि हैरत में रह गया। लॉस एंजिल्स में एक जगह है फार्मर्स मार्केट। मैं मिसेज लुडमिल के साथ जब वहां पहुंचा तो एक महिला दूसरी किसी महिला से याचना कर रही थी कि वह अपनी मोटर में उसे घर पहुंचा दे, क्योंकि उनको अपनी कार नहीं मिल रही है। उनको उतार कर पति महाशय कार पार्क करने के चक्कर में निकले थे जो एक घण्टा हुआ, वापिस नहीं लौटे हैं। बोस्टन के एक पार्किंग प्लॉट में हमारी कार दो ऐसी कारों के बीच फंस गई, जिनमें से एक निकलना चाहती थी और दूसरी हमारे पीछे आ लगी थी। जब सड़क का ट्रेफिक खुलासा हुआ तब जाकर रास्ता निकला। लास एंजिल्स में जब हम डिस्ने लेण्ड पहुंचे तो टाइम्स की मिस कुक ने अपनी कार को पार्क तो जरूर कर दिया लेकिन उनको यह पक्का भरोसा नहीं था कि वापसी में कार को आसानी से ढूंढ़ लेंगे, अतः उन्होंने अपनी कार के रेडियो वाले एरियल को एक दम ऊपर खींचा और उस पर गुलाबी रंग की रिबन बांध दी। डिस्ने लेण्ड में करीब पन्द्रह हजार कारें रोज आती हैं और वहां दस हजार के लिये जगह है।

अमरीका के शहरों में कचरा डालने के लिये जो ढोल रखे रहते है, उनमें कचरे के नाम पर सबसे ज्यादा माल भरा हुआ मिलता है—पढ़े हुए अखबारों का या पत्रिकाओं का। दूसरा स्थान होता है कागज की गिलासों और प्यालों का। अखबारों को घर में जमा करने के लिये जगह नहीं। अखबार भी भारत के किसी पुराण से कम नहीं होते, उनको कहां कहां ढोया जाय। नगर परिषदों के सामने भी समस्या है। वे इस कीमती रद्दी को कहां रखें। मुझे ऐसे अवसरों पर सांगानेरी कागज के देशी कारखाने की याद आती है, जिसके लिये पुरानी रद्दी की खरीद होती रहती है। यहां तो यह भी सम्भव

नहीं। अगर कागज के कारखाने रद्दी वटोरना शुरू कर दें, तो उनको मुफ्त की रद्दी भी मजदूरी की वजह से महंगी मिले। आखिर यह भार नगर परिषदों को उठाना पड़ता है। वे अखवारों व अन्य प्रकार की रद्दी को शहर से वाहर ले जा कर जला देती हैं। अभी अभी शिकागो में एक कम्पनी ने रद्दी की गांठे वांधने की एक मशीन सिटी कौन्सिल को भेंट की। यह मशीन रद्दी को गीला करके रूई की तरह उसकी गांठे वांधेगी और उन गांठों का उपयोग समुद्र तट या झील तट की टूटी फूटी जमीन के भराव के लिये किया जायेगा। जगह की तलाश के लिये मैंने न्यूयार्क, शिकागो, ईवान्स्टन आदि कई शहरों में जमीन का भराव होता हुआ देखा है, परन्तु वह वहुत महंगा पड़ता है। शायद यह मशीन कुछ सस्ता कर दे।

जगह और जमीन के अभाव की इस समस्या का एक मोटा रूप आपने ऊपर देखा है, लेकिन समस्या इतनी ही नहीं है। शिकागो एवं केलीफोर्निया राज्य के कई शहरों में वैज्ञानिक इस खोज में लगे हुए हैं कि अंडे टमाटर आदि गोल चीजें चौकोर रूप में कैसे पैदा हो सकती हैं, क्योंकि गोलाकार होने के फल-स्वरूप उनमें माल कम निकलता है। और वे चीजें जगह ज्यादा घेरती हैं। चौकोर होने पर उनको कम जगह में रखा जा सकता है और अपेक्षा कृत छोटे पेकिंग में दिया जा सकता है। मैंने भी स्थान और समय को ध्यान में रख कर ही कुछ मोटे मोटे नमूने पेश कर दिये हैं, लेकिन ऐसी समस्याएं अमरीका में अनेक हैं और अजीवोगरीव हैं।

मैं अपने आप से ही पूछता हूं कि आखिर यह क्या गोरख-धन्धा है। यह समस्या किसकी पैदा की हुई है: भारत से ढाई गुनी जमीन व चालीस प्रतिशत आवादी इस देश में है, फिर भी जगह नहीं। हे भगवान, यह भी कोई अभाव है और यह भी किसी अभाव का रोना हुआ। भरा पूरा घर और भूखों मर रहे हैं। यह तो इंसान की अपनी ही माया है, उसकी अपनी ही लीला है और अपनी ही आदत है। फिर भारत की आवादी पर इतना शोरगुल किसलिए? इस-

लिए कि हम अपना पेट भी नहीं भर सकते। अगर हम अपना गुजारा करने लायक हो जाएं तो क्या हमारी आवादी फिर दुनिया को अच्छी लगने लगेगी ? यह एक सवाल है, जो मेरे मन में वार वार उठता रहता है। आवादी की रोकथाम का अभियान वैसे अमरीका में भी पूरे जोरों पर है लेकिन उसका अमल कुछ और ही तरह का है। गर्भ निरोध के जितने उपाय एवं उपकरण उपलब्ध हैं, उनका अधिकांश प्रयोग अविवाहितों में होता है। विवाहितों में वहुत ही कम है।

अव मैं थोड़ी सी चर्चा समय संकट के वारे में करना चाहूंगा। समय की कीमत और पावन्दी के वारे में शायद भारत के सिवाय सभी देश वढ़े चढ़े मिलेंगे, परन्तु कीमत के मामले में अमरीका से वढ़ कर शायद ही कोई देश मिले। इस पूंजीवादी देश में अगर कोई भी चीज महंगी है तो वह श्रम है अर्थात् मनुष्य का समय है। दिमागी काम को भी यहां श्रम की ही श्रेणी में गिना जाता है, जिसे उचित कीमत देकर हायर [किराये] कर लिया जाता है। समय की कीमत की मोटी जानकारी मेरे पाठकों को है, यह मैं मानकर चलता हूं, लेकिन अमरीकी दैनिक जीवन व अर्थ - व्यवस्था में कुछ नईं प्रवृत्तियां चल पड़ी हैं, जिनका सम्वन्ध श्रम या समय की वचत से है।

मैंने अपने एक लेख में पहिले जिक्र किया है कि वड़े वड़े स्टोर चोरी का घाटा पूरा करने के लिये अपने वजट में पहिले ही प्रावधान रखते हैं। इस प्रावधान का श्री गणेश ही इसलिए हुआ है कि स्टोरों में हर काउण्टर पर सेल्समेन और चौकीदार रखने पर खर्च न करना पड़े। अमरीकी व्यापारी की राय है कि चोर भी जिन्दा रहेगा अतः वह अपना रास्ता हर जगह निकाल लेगा। हमारे यहां भी कहावत है—चोरों के लिये क्या ताला। अमरीकी स्टोरों नें इस कहावत के सत्य को पहिचान लिया और ग्राहकों को अपने ही ईमान पर छोड़ दिया है। ग्राहक आते हैं, सामान उठाते हैं और दरवाजे पर केशि-यर के पास जाकर भुगतान कर जाते हैं। इस व्यवस्था द्वारा चोरी से जितना घाटा होता है, उससे कहीं ज्यादा वचत वेतन भत्ते आदि की

हो जाती है। स्टोर के लिये सेल्समेन और चौकीदार हायर करना ज्यादा महंगा हो गया है, क्योंकि उनके वेतन बहुत बढ़ गये हैं। निगरानी का काम यथासम्भव मशीनों से ले लिया जाता है।

अमरीका में क्रेडिट कार्ड [उधार खाते] की प्रथा बहुत प्रचलित है। इस प्रथा में आजकल एक नई सुविधा जोड़ दी गई है। वह यह है कि अगर किसी को स्टोर से कुछ भी नहीं चाहिये और सिर्फ डॉलर ही चाहिये, तो स्टोर बैंक का काम भी कर देता है। चेक काटो और नकद डॉलर ले लो। इस प्रणाली से किसी का काम कभी नहीं रुकता। छुट्टी का दिन है और अचानक पिकनिक जाने का प्रोग्राम बन गया। पास में डॉलर नहीं है। स्टोर पर जाइये; चेक काटिये और डॉलर ले आइये। अलग अलग स्टोरों ने अपनी सीमा बांध रखी है, जो पच्चास, पचत्तर या सौ डॉलर होती है। चेक पर दस्तखत ठीक है या नहीं, बैंक के खाते में रुपया है या नहीं, इतना देखने की फुर्सत किसी को नहीं है। अगर बारीकी से छान-बीन करना शुरू किया जाय तो उस पर अकाउण्टेंट हायर करने का खर्च इतना ज्यादा हो जायेगा कि बर्दाश्त न हो। अगर कोई चेक बट्टो खाते भी गया तो स्टोर को अन्ततः घाटा नहीं होता। ग्राहकों को सुविधा देने से स्टोर की जो लोकप्रियता बढ़ती है, उससे वह कमा लेते हैं, लेकिन ग्राहकों की साख छानते फिरना उसे महंगा पड़ता है।

यही हाल बैंकों का है। हर बैंक के सामने एकाध खिड़की होती है। कहीं-कहीं चार पांच भी होती हैं। हर खिड़की पर बिजली का बटन है जो सामने वाली सड़क से आने वाले ग्राहकों की कारों को संकेत देती है। जिस खिड़की की लाइन खुली हो, उस पर अपनी कार ले जाइये। कार में ही बैठकर चेक काटिये। चेक बुक वापिस अपने बेग में रखते-रखते आपके चेक का भुगतान हो जायेगा। लीजिये और अपनी कार आगे बढ़ाइये। कोई बात नहीं, यदि आपके खाते में रकम नहीं है। उसकी चिन्ता बैंक बाद में कर लेगा। अभी आप अपना काम चलाइये और समय बर्बाद मत करिये। अगर आपकी

क़ार में बच्चा साथ में बैठा है तो रकम के साथ बच्चे के लिए केण्डी, चॉकलेट वगैरह भी अपने आप मिल जायेगी। चेक पर यह भी कोई नहीं देखता कि वह क्रॉस चेक है, एकाउण्ट पेयी है या बेयरर है। किसे फुर्सत है कि आपको बेईमान समझे। आपका धर्म ईमान आपके पास। वहां अलग अलग तरह के चेक ही नहीं होते।

अमरीकी अर्थ व्यवस्था अपने आप में इतनी विकसित हो चुकी है कि उसने आम आदमी के ईमान को सिद्ध कर लिया है। आप बेई-मानी करें, बेशक करें, लेकिन जो लोग आपको ईमानदार मानकर चलते हैं, उनको कतई फुर्सत नहीं है कि आपकी छानबीन करें। मालिक और देगा। इस प्रणाली का नतीजा यह हुआ कि गड़बड़ी आटे में नमक के बराबर हो गई है। चोर भी हैं, उचक्के भी हैं, लेकिन जैसे उनका होना कोई माने ही नहीं रखता। वह भी कभी पकड़ में आयेगा ही। पुलिस भी तो है।

समय की कीमत बढ़ जाने से आम आदमी की जिन्दगी पर क्या असर पड़ा है, यह ऊपर लिखे कुछ उदाहरणों से जाना जा सकता है। मेरे लिखने का अभिप्राय मेरे देखे हुए रोजमर्रा की अमरीकी जीवन की झलक पेश करने का है, इसलिए मैंने चमत्कृत करने वाली बातें बटोरने पर निगाह नहीं रखी। मुझे मेरे मिलने वालों ने यहां अक्सर यह सवाल पूछा है कि मेरी अमरीकी यात्रा का उद्देश्य या प्रयोजन क्या है? मैंने सबसे यही कहा है—मैं आप लोगों से मुलाकात करने और आपको जानने के लिए आया हूं। जितना जानूंगा और जितना आप मुझे बतायेंगे, उतना ही मैं देशवासियों को बताऊंगा। स्थान और समय अमरीकी दिन-चर्या का मुख्य अंग है, इसलिए मैंने इस प्रसंग पर एक अलग लेख में चर्चा की है। यहां मैं यह उल्लेख करना जरूरी समझूंगा कि समय की पाबन्दी का यहां वैसा हौवा नहीं है, जैसा कि हमारे 'भारतीय अंग्रेज' दिखा दिया करते हैं।

यहां समय की उपयोगिता पर ज्यादा जोर है, न कि सेकिंड

और पल-छिन वाली फौजी पाबन्दी पर। मैंने यहां दूकानों पर यह भी आमतौर पर देखा है कि एक ग्राहक चाहे एक डॉलर की चीज का ही खरीददार हो, जब तक उसको तसल्ली नहीं हो जायेगी और उसे निपटा नहीं दिया जायेगा—तब तक दूसरे ग्राहक से बात करना पहले ग्राहक के प्रति अशिष्टता समझा जाता है। कई दूकानों पर इस तरह की खुदरा बिक्री होती है, जहां ग्राहक को दूकानदार या सेल्समेन की मदद की जरूरत पड़ती है, वहां ग्राहक को पूरी-पूरी तवज्जह दी जाती है। मैंने ऊपर जिन स्टोरों का जिक्र किया है, वे बड़े पैमाने पर या शृंखला के रूप में काम करने वाले स्टोर हैं, जहां व्यापक खपत का सामान बिकता है।

— २४ जून, १९६८

न्यूयार्क में हवाई कम्पनियों का एक टर्मिनल शहर के बीचो-बीच है, जहां हर उड़ान से आने वाली सवारियों को लिम्यूशिन सर्विस के जरिये पहुंचाया जाता है। इस टर्मिनल पर टेक्सी लेने के लिए खास तरह का इन्तजाम है। सवारियों की भीड़ के कारण टर्मिनल के दरवाजे पर एक मशीन लगी हुई है जिसमें से बटन दबाकर एक टिकिट निकालना पड़ता है। टिकिट पर नम्बर छपा हुआ होता है जिसको लेकर सवारियां एक कतार में खड़ी रहती हैं। नम्बर आने पर ही यहां टेक्सी मिल सकती है। यह व्यवस्था मैंने सिर्फ न्यूयार्क में ही देखी है, क्योंकि यहां हवाई उड़ानें सबसे ज्यादा होती हैं और टर्मिनल पर बहुत भीड़ रहती है। टेक्सियों का तांता कभी नहीं टूटता।

लॉस वेगस : क्या जिंदगी जुआ है ?

नहीं, ऐसी बात नहीं है कि जिन्दगी एक जुआ है या जुआ ही जिन्दगी है। दुनिया भर के जुवारियों का सबसे बड़ा तीर्थ लॉस वेगस एक नया ही पहलू सामने रखता है। लॉस वेगस नेवादा राज्य का सबसे ज्यादा रंगीन शहर है, जो रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह चमन है। नेवादा राज्य अमरीका के परमाणु बमों का परीक्षण केन्द्र है, जहां जुआ कानूनी तौर पर होता है और राज्य की आमदनी का एक मुख्य स्रोत है। केरल की गैर कांग्रेसी सरकार के राज्य में जुआ शुरू करने की चर्चा सुनी, तो मैं अच्छी तरह समझ नहीं सका था उसका मतलब। लॉस वेगस ने यह बात मुझे समझा दी और यह भी समझा दिया कि राज्य की आमदनी बढ़ाने की नियत से ही यहां जुआ शुरू किया गया है।

भारत में लॉस वेगस के बारे में कई तरह की चर्चा चलती मैंने सुनी थी और मेरी आदत में भी जुआरी-

पन की मात्रा काफी है। अमरीका ने जब अपने घर को मेरे सामने खुला कर दिया तो मैं लॉस वेगस गये बिना किस तरह रह सकता था? एक दिन के लिए ही सही, गया और जितना बन पड़ा देखा। यहां जुआ खुल कर होता है और करोड़ों का होता है, लेकिन सचमुच 'चीर हरण' की नौबत नहीं आती। चीर हरण होता है, लेकिन हस्तिनापुर की कौरव द्यूत सभा का नहीं, बल्कि यमुनातट का। द्रोपदी के चीर की यहां धृतराष्ट्र भी यन्त्र-चक्षुओं से रक्षा कर लेते हैं। जुआ बुनियादी तौर पर व्यसन है, लेकिन लॉस वेगस में वह एक उद्योग है, व्यापार है, खेल है और सख्त से सख्त कायदों में बंधा हुआ है। इन कायदों पर अमल के लिए कानूनी अधिकारों से सम्पन्न एक कमीशन बना हुआ है।

आस पास की बस्तियों को मिलाकर लॉस वेगस करीब ढाई लाख की आबादी का शहर है जिसमें एक लाख से ज्यादा मजदूर हैं और करीब दस हजार कर्मचारी परमाणु परीक्षण एवं गवेषणा केन्द्र में हैं। अपने पांच सप्ताह के दौरे में अमरीका के करीब सभी चुने शहरों में जा चुका हूं और मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि लॉस वेगस इस देश का सबसे ज्यादा सुन्दर शहर है, सबसे ज्यादा स्वच्छ है और सुसंस्कृत है। यह बात अतिरंजित नहीं है। मैंने अब तक कोको बीच को सबसे ज्यादा सुन्दर समझा था, लेकिन लॉस वेगस उसको भी मात करता है। कोको तट से इसकी आबादी भी दस गुनी है। लॉस एंजेल्स और सेन फ्रान्सिस्को को अभी तक मैंने नहीं देखा है। सुना है कि वे सुन्दर शहर हैं।

लॉस वेगस को देखने साल में करीब डेढ़ करोड़ पर्यटक बाहर से अर्थात् अमरीका के अलावा लगभग साठ देशों से आते हैं। रोजाना १५६ हवाई उड़ानें इस शहर से होती हैं, जिससे मोटे तौर पर आमद-रफ्त का अनुमान किया जा सकता है। इस समय यहां जितने होटल हैं उनमें कुल पच्चीस हजार प्रथम श्रेणी के कमरे हैं। इनके अलावा कुछ मोटल व अपार्टमेन्ट भी हैं। जिस होटल में ठहरा हूं उसका दावा है

कि वह दुनिया का सबसे बड़ा होटल है। मेरे कमरे का नम्बर २४७७ है। मुझे सारी दुनिया की जानकारी नहीं है, इसलिए मैं भी मान लेता हूं कि यही सबसे बड़ा होटल होगा। शहर में कुल चौदह प्रथम श्रेणी के होटल हैं।

ग्रेण्ड केनयन से उड़कर मैं करीब सवा चार बजे लॉस वेगस पहुंचा। हवाई अड्डे पर ही मैंने शहर की शान का अन्दाज लगा लिया। यह पहिला हवाई अड्डा देखा, जिसकी दो फर्लांग लम्बी इमारत में दोनों मंजिलों के फर्श पर आलीशान गलीचे बिछे हुए थे। अपना सामान छुड़ाने के लिए बरामदों में जा रहा था कि एक रेक में अखबार पड़े हुए देखे। रेक पर लिखा हुआ था 'फ्री, पिकअप वन' [एक ले जाइए, मुफ्त है] अखबार उठाया, नाम था 'वेगस विजिटर।' एक दो कदम पर ही खरखट की आवाजें। कुछ स्त्रियां, कुछ पुरुष खड़े-खड़े मशीनों के हेण्डल घुमा रहे थे। मशीनें कतारों में रखी हैं। नजदीक गया तो देखा, लोग मशीनों में सिक्के डाल रहे थे, पांच सेण्ट वाले। अमरीका में मशीनीकरण का इतना ज्यादा जोर है कि पहिले मैंने समझा कोई चीज खरीद रहे होंगे, लेकिन एक दो मिनट तक कोई चीज आती हुई नजर नहीं आई, लेकिन सिक्के गटागट भीतर जा रहे थे। कुछ कुछ आभास हुआ कि इन मशीनों का ताल्लुक भी जुए से होगा। तभी जाकर मशीनों के पीछे खंभे पर नजर पड़ी, जिस पर लिखा था नाबालिगों के लिए नहीं। मेरा कयास ठीक ही था, लेकिन मैंने ज्यादा उलझने की कोशिश नहीं की। अपने कौतूहल को मन ही में दबाये हुए सामान छुड़ाने की राह ली। टेक्सी करके होटल पर पहुंचा।

उतरते ही ऑटो रिक्शा की तरह चलने वाली ट्राली सामने आई, क्योंकि टैक्सी होटल की साम्राज्य सीमा से कुछ दूर ही खड़ी रह गई थी। सामान उतार लिया गया। मैं काउण्टर पर पहुंचाया गया। नाम लिखवाकर चाबी संभाली। उसी ट्राली पर वापिस बिठाकर मुझे अपने कमरे पर पहुंचा दिया गया। इस बीच होटल के

एक विशाल कक्ष में फिर देखी वही मशीनें, सैकड़ों की तादाद में, वही खरंखट !

कमरे में पहुंचकर सवसे पहिले लिखने की फिक्र हुई। कुछ अधूरा था। और इस वीच मेरा दौरा इतना तेज रहा कि हर शहर में एक या दो दिन से ज्यादा नहीं टिका। लिखने का वक्त वहुत कम मिला। वहुत सामग्री इकट्ठी होती जा रही थी। अपनी ओर से मैं कोशिश कर रहा हूं कि रोज ही कुछ न कुछ लिखता रहूं और पाठकों की नजर में वना रहूं, लेकिन पिछले एक सप्ताह से परिस्थितियों ने साथ नहीं दिया। लिखने पर मेरा जोर इसलिए है कि मैं अपना जयपुर का गोरखधन्धा अच्छी तरह जानता हूं। न जाने वहां पहुंचने पर समय भी मिले या न मिले और मैं अपनी लम्वी यात्रा पर आप लोगों के सामने कुछ चर्चा कर सकूं या नहीं। इसके अलावा एक और कारण भी है। गोपालदास जी वैजल, जो जयपुर में आकाशवाणी के केन्द्र संचालक थे, उन्होंने मुझे यह सलाह दी कि हो सके तो मैं रोज ही अपना यात्रा वृतान्त लिखकर भेजता रहूं जिससे वह ताजा वना रहे। इसका कारण यह कि इकट्ठा होने पर एक जगह का असर दूसरी जगह के असर से वदल जाय या दव जाय। यात्रा वृतान्त में अगर कोई भूल रह जाय तो वाद में सुधारी जा सकती है, लेकिन उसका रंग वदल जाय तो नहीं सुधारा जा सकता, तीसरा कारण यह कि डायरी रखने की मेरी आदत नहीं है। जो चीज हाथों हाथ काम में आ गई, वह आ गई, वरना आई गई हुई। इसीलिए लॉस वेगस में सवसे पहला काम मैंने एक अधूरे लेख को पूरा करने का किया। वाद में 'वेगस विजिटर' को उलट-पुलट कर पढ़ा, वड़ा लाभ हुआ। शहर की एक सप्ताह की गतिविधि की विशद् एवं रोचक जानकारी। करीव दस वजे रात को कमरे से वाहर निकला। होटल के उस कक्ष में गया, जहां की खरंखट मेरे कानों में लगातार गूंज रही थी।

अव तो वात ही वदल गई। पांच घण्टे के भीतर भीतर दुनिया

ही बदल गई। विशाल कक्ष में चलने फिरने को जगह नहीं। जगह-जगह खरखट। एक तरफ साज-संगीत की पैं पैं, भन-भन, नाच की महफिल। बीच बीच में मेजों पर ताश के खेल, पाशों के खेल, कहीं घूमने वाले चक्कर। रह रह कर हल्के ठहाके। केफीटेरिया, कॉफी शॉप, बालरूम, डिनर लाउन्ज। अजीब समां। कोई एक हजार की भीड़ होगी उसी कक्ष में और आसपास की गेलरियों में। सब खड़े हैं, सिर्फ बार में लोग बैठे हैं। किसी को इधर-उधर देखने की फुर्सत नहीं। हर आदमी हर औरत अपने रंग में मस्त है लेकिन रंग भी तो एक ही है। यों कहना चाहिए कि अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। कान पड़ी आवाज सुनाई नहीं देती।

लेकिन बात ऐसी भी नहीं थी। संगीत के स्वरों में एक लय थी, नृत्य में एक गति थी, मशीनों की खरखट में भी एक क्रम था, तालियों की गड़गड़ाहट में थिरकन और उत्तेजना थी। शोरगुल या कोहराम नहीं था। वातावरण में शान-शौकत, आडम्बर, रंगीनी, सब कुछ और खटकने वाली कोई बात नहीं। घुसते ही एक बार कुछ झिझक हुई, लेकिन अपने संस्कारों के ही कारण। झिझक का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं था, बल्कि नई जगह और नई जिन्दगी। पांच-पांच, चार-चार मिनट एक एक जगह रुक कर करीब एक घंटे तक सारा समां देखा। अब कुछ हौसला हुआ, जानकारी भी और अनुभव भी। बात करना चाहता था, लेकिन किससे? फुर्सत अगर किसी को थी तो उसकी वर्दी पर लिखा था—सिक्योरिटी, लेकिन नीचे यह भी लिखा था 'स्ट्रॉडस्ट होटल'। यह मेरे होटल का नाम था जिसे हम अपनी भाषा में कहेंगे 'खाखला' या लकड़ी का बुरादा भी कह सकते हैं। मैंने सीधे ही एक सिक्योरिटी वाले से कह डाला कि मैं नया नया हूं, विदेशी हूं, मुझे जरा मदद करो। बेचारे ने यहां तो सभी विदेशी ही देखे थे, लेकिन फिर भी उसने एक अन्य वर्दी धारी को संकेत किया। वह फौरन आया, बेयरा था। मुझे उसने बड़े अदब से उन मशीनों का कार्यकलाप समझाया, मेजों पर होने वाले खेलों की विधिवत्

जानकारी दी और यह भी बताया कि बार और रंगमच के उपयोग के लिए यहां कुछ देना नहीं पड़ता और विशेष कार्यक्रमों के लिए अलग रंगमंच है, जहां बैठना बड़ा महंगा है। मैंने अपनी जानकारी इस रात को देखने और सुनने तक ही सीमित रखी और कोई सवाल जवाब नहीं किये। हकीकत तो यह थी कि वहां किसी को फुर्सत ही नहीं थी। यह उसकी कृपा ही थी कि उसने अनावश्यक काम के लिए मुझे समय दिया लेकिन पचास सेण्ट की टिप हाथ में पाकर वह अदब से काफी नम्र हो चुका था।

एक सूत्र हाथ में आ गया था, जिसे पकड़ कर जरा आगे बढ़ा। एक बूथ पर जाकर एक डॉलर के पांच सेण्ट वाले सिक्के भी लिए और एक मशीन पर खड़ा हुआ। खर्रखट का छन्द अलापने लगा। ग्यारह सिक्के निगलने के बाद मेरे उल्लास के लिए उस मशीनी डायन ने एक साथ पचास सिक्के उगले। इस बीच एक मिनट का समय भी नहीं हुआ होगा और अगले पांच मिनटों में सब सिक्के साफ हो गये। बीच में कभी दो, कभी पांच तो कभी तेरह निकले और एक एक कर सब चले गये। अपने आस पास भी नजर रखे हुए था। ज्यादातर लोग खोने वाले ही थे और बीच बीच में रेजगी खरीद रहे थे। रेजगी बेचने के लिए जगह जगह लड़कियां मशीनें बगल में लटकाये घूम रही थीं। पांच से लेकर पच्चीस सेण्ट और एक डॉलर तक के सिक्के। बार में लोग अपने ऑर्डर पहुंचाते रहते थे और सप्लाई होती रहती थी। इधर मंच पर कभी आर्केस्ट्रा, कभी गान और कभी नृत्य। कोई साढ़े ग्यारह बजे होंगे। खाने की सुध आई। पास ही डाइनिंग बोर्ड था जिस पर रिजर्वेशन न्यून साइन भी था। मैंने दरवाजे पर कहा कि रिजर्वेशन तो नहीं है लेकिन खाना खाना चाहता हूं। भीतर जगह थी, इसलिए मुझे जाने दिया गया।

प्रवेश नाबालिगों के लिए वर्जित था, इसलिए कि सरकारी कानून ऐसा था, यह बात मुझे बाद में दूसरे दिन मालूम हुई। डाइ-निंग रूम क्या था, अच्छा खासा ऑपेरा हाउस था, जिसकी तुलना

अमरीका के श्रेष्ठ रंगमंचों से की जा सकती है। पुराणों में इन्द्रपुरी का जो वर्णन पढ़ा था, वह कुछ इसी तरह की होगी और ऐसी ही अप्सराएं होती होंगी और इसी तरह रहती होंगी। अरेबियन नाइट्स का कोई दृश्य था। मैंने यमुना तट के चीर हरण का जो जिक्र ऊपर किया है, वह इसी प्रसंग में किया, लेकिन मैं कह सकता हूं कि इस मंच में ललित कला के तत्व भी कम नहीं थे और न्यू आर्लियन्स के उस नाइट क्लब से कहीं श्रेष्ठ था जिसका जिक्र मैं पहिले कर चुका हूं।

मंच पर एक दृश्य समाप्त ही हुआ था कि मेरे सामने एक वेटरेस ऑर्डर लेने के लिए पहुंची। शायद उसने मेरी सूरत से टपकने वाली बेवकूफी के निशान पढ़ लिये या मुझे नया नया समझ कर कुछ धारणा बनाली। पहिले तो यह जानकारी चाही कि मेरा रिज-र्वेशन है या नहीं। मैंने जब 'नहीं' कहा, तो उसने कहा कि मुझे कम से कम तीन ड्रिंक्स का नौ डालर देना पड़ेगा। इस बीच मेज पर पड़े हुए मेनू पर मैंने पढ़ लिया था कि खाने की कम से कम दर साढ़े सात डॉलर है। इस तरह कुल मिलाकर करीब बीस डॉलर का नुस्खा था। मैं यह नुस्खा बहुत बड़ा नहीं समझता था, लेकिन मुझे उसके ऑर्डर लेने का यह ढंग कतई अच्छा नहीं लगा और मैं नाराज होकर वहां से उठ खड़ा हुआ। अपनी नाराजगी को मैंने साफ साफ बता भी दिया, जिस पर उसने माफी भी मांगी, लेकिन मैं मुक्त होकर भी काहे को टांग फंसाता। मेरा अभिप्राय इतना ही तो था कि मैं उस दुनिया की एक तस्वीर देखना चाहता था और इतना ही काफी था, जितना देख लिया। एक चावल से सारी हंडिया का अन्दाज लगाया जा सकता है। यहां मुझे रहना नहीं, जीना नहीं सिर्फ देखना है। अगर किनारे खड़े रह कर नहीं, तो डुबकी लगाकर। मैं इसी रवैये में चल रहा हूं। मेरी समझ में उस औरत ने गलती की कि मुझे रंगरूट समझ कर अपने मालिक का एक ग्राहक खो दिया। मैंने अमरीका में यह सुना है कि जो सेल्समेन एस्किमो को रेफ्रीजरेटर बेच दे, वह सफल और श्रेष्ठ समझा जाता है। इस औरत ने मेरी

धारणा वदल दी। मेरी राय में यह कहावत ठीक निकली कि कावुल में भी गधे होते हैं।

खा पीकर रात को जव कमरे में पहुंचा तो उस समय पौने दो वजे थे। होटल के कासिनो [जुआ घर] व रगमंच पर अभी आखिरी दौर शुरू हुआ था और सुवह तक चलेगा। दो वजते वजते सो गया। सवा सात वजे ही नींद खुल गई। टेलीफोन करके चाय मंगवाई क्योंकि दूरी वहुत थी। नौ वजते वजते नहा धोकर तैयार हो गया और मैं असलियत की धरती पर चल निकला। टेलीफोन किया 'वेगस विजिटर' के कार्यालय में। तुरन्त ही प्रकाशक व सम्पादक वाव केम्प-वेल से वात हो गई। मिलने का समय मांगा और फौरन मिल गया। उन्होंने यह जानते ही मेरे पास एक युवक अधिकारी को कार लेकर लिवाने भेज दिया कि मैं भारत से यहां आया हूं और अखवार नवीस हूं। मैं उनके शानदार दफ्तर में दाखिल हुआ। अभिवादन की रस्म पूरी होने से पहिले तो उनके सहायक ने मेरे हाथ में मेरी फोटो सौंप दी। मैं जव कुर्सी पर बैठा तो दूसरी फोटो मेरे सामने रख दी। कुछ गीली जरूर थी लेकिन ताजी थी। केमरे को खोलकर निका-लने का ही समय लगा होगा, बटन दवाने में तो एक सेकण्ड भी नहीं और फोटो तैयार। मुझे याद आया कि राजस्थान का सार्वजनिक सम्पर्क विभाग भी इतना तो कर लेता है कि प्रेस कान्फ्रेन्स का फोटो जाते समय संवाददाताओं या मुख्य अतिथि को दे दे, लेकिन यहां नया ही अनुभव हुआ।

वातचीत में सम्पादक केम्पवेल ने वताया कि वे दो जगह से अखवार निकालते हैं और लॉस वेगस विजिटर की बीस हजार प्रतियां मुफ्त वांटते हैं। उनकी आय का एक मात्र साधन विज्ञापन है और वह इतना है कि अखवार में देने को जगह नहीं होती। मैंने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि शहर को दिखाने में मेरी मदद कर सकते हैं। उसी युवक को उन्होंने मेरे साथ भेज दिया। मैं चेम्वर ऑफ कॉमर्स व जुआ कमीशन के दफ्तर में गया और सूचना विभाग

से मोटे-मोटे आंकड़े लाया। 'लॉस वेगस सन' दैनिक पत्र के कार्यालय में गया। प्रबन्ध संपादक से भेंट की। उन्होंने भी प्रारम्भिक बातचीत के वाद एक रिपोर्टर को मेरे जिम्मे किया। रिपोर्टर ने मेरे प्रति इतनी दिलचस्पी दिखाई कि समाचार या इन्टरव्यू लेने के पहिले उन्होंने मुझे अपना शहर दिखाना चाहा।

अब मेरे पास दो सहायक महानुभाव थे। दोनों ही इस बात से खिन्न थे कि मैं उसी दिन तीसरे पहर वहां से जाने वाला था। मुझे पास ही फ्री स्ट्रीट में ड्राइव करके ले गये। यह शहर का मुख्य भाग है और यह स्ट्रीट जुए की राजधानी कहलाती है। करीव तीन चौराहों तक जितने शो रूम हैं, वे कासिनो हैं। हजारों मशीनें और मेजें इनमें लगी हुई हैं और यहां सुबह शाम नहीं होती। मैं जिस इलाके में ठहरा था वह 'स्ट्रिप' [पट्टी] कहलाता था। यह ऊंचे दर्जे का है, लेकिन फ्री स्ट्रीट भी किसी माने में कम नहीं। रास्ते चलता आदमी भी वहती गंगा में हाथ धो सकता है। यहां मुझे 'सन' के रिपोर्टर महोदय पट्टी पर वापिस ले गये जहां शहर का सवसे पुराना होटल है। यह होटल भी चोटी का था। उन्होंने बताया कि होटल में सब काम मशीनों से होने के वावजूद तीन हजार कर्मचारी हैं। इस होटल का निर्माण उनके पिता की देखरेख में हुआ था और रिपोर्टर महोदय चाहते थे कि मैं उसे देखने के वाद लॉस वेगस की जिन्दगी की झलक देख सकता हूं। सचमुच यह वात सही थी। मैं अपने होटल में एक ग्राहक ही था, लेकिन होटल 'ड्रून' में आकर वास्तव में मेहमान बन गया। मैंने रंगमंच, रसोई, लॉण्ड्री, बिजली घर, गोदाम, खजाना, प्रबन्ध मण्डल के दफ्तर, सब तरह के रेस्तरां, सभा भवन, बार रूम और वे स्थान जहां धृतराष्ट्र के यन्त्र चक्षु लगे रहते हैं और जिनका जिक्र मैं इस लेख के शुरू में ही कर चुका हूं।

होटल के प्रेसीडेण्ट महोदय से भी मेरा परिचय करा दिया गया, जिन्होंने वताया कि होटल सात साल तक लगातार संकट में

रहा, लेकिन अब करीब दस करोड़ डॉलर सालाना का धन्धा करता है। तेईस मन्जिल ऊंचा है। खजाने में जाकर देखा तो भीतर ही पट बन्द कर दिये गये। सिक्कों के अम्बार और उनकी छंटनी व गिनती करने वाली मशीनें। एक मशीन एक दिन में करीब दस लाख डॉलर, क्वार्टर, डायम, निकल आदि की गिनती करती है। वापिस अलग अलग पुड़ियों में उनको एक, दो या दस डॉलरों की कीमत में पैक किया जाता है और रेजगी बेचने वाले बूथों पर पहुंचाया जाता है। रेजगी इन होटलों को बैंकों से या सरकारी टकसाल से मिलती है और टनों के वजन में।

मुझे यह स्थान दिखलाया गया जहां धृतराष्ट्र के यन्त्र चक्षु लगे रहते हैं, अर्थात् जुआ कमीशन की आंखें। ऊपर की मंजिल पर एक स्थान, जो कासिनों के विशाल कक्ष में लगी हुई मेजों के ठीक ऊपर होता है। मेजों के पास खड़े होने पर लगता है, कि छत पर दर्पण लगे हुए हैं, जिसमें पूरी मेज का खेल चलता हुआ प्रतिम्बिवित होता रहता है, लेकिन बात इतनी ही नहीं है। इन दर्पणों की पीठ पर कमीशन के 'जासूस' बैठे रहते हैं और देखते रहते हैं कि द्यूत सभा में कोई कौरवों के काने मामा शकुनि की कारीगरी तो नहीं कर रहा है। वे दर्पण में पीछे से भी देख सकते हैं लेकिन स्वयं दिखाई नहीं देते। उनके पास सूक्ष्म एवं द्रुतगामी यन्त्र होते हैं। किसी ने जरा सी गड़बड़ी की और हाथोंहाथ उसका फोटो खिंच जाता है और दूसरी ओर सिक्योरिटी के आदमी का पंजा मेज पर पहुंच जाता है। मेज पर डॉलर और पासे समेटने से पहिले तो वे पंजे के नीचे आ सकते हैं। यह निगरानी मेजों पर जुआ खिलाने वाले डीलरों पर रहती है, लेकिन मशीनों पर नहीं।

मशीनों में गड़बड़ी की गुंजाइश भी नहीं होती। सब कुछ स्वचालित है। मशीनें भी आय का बहुत बड़ा साधन है, क्योंकि संख्या में हजारों होती हैं। मशीनों पर आम तौर पर मेरे जैसे टटपूंजिये शौकीन लोग छोटे-छोटे सिक्के डालते हैं और अपनी मृग तृष्णा को

शांत करने का व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं। इनकी बाजी चालीस पचास डॉलर तक सीमित रहती है, लेकिन इन मेजों के खेल में हार जीत लाखों तक पहुंचती है। मुझे बताया गया है कि सप्ताहान्त [शुक्रवार, शनिवार और रविवार] की रातों में एक एक बड़ी मेज पर दस-दस लाख डॉलर तक की हार जीत होती है। मेज पर जगह मिलना भी मुश्किल होता है। किसी पर ताश का इक्कीस का खेल होता है जो नौ लाख से मिलता-सा होता है और किसी मेज पर गोलियों का। मैं खाक भी नहीं समझ सका। देखने मात्र ही से सब कुछ नहीं जाना जा सकता, जैसे कि पानी में घुसे विना तैरा नहीं जा सकता। यहां मैं यह बताना भूल गया कि जहां से निगरानी की जाती है, वहां हर कोई नहीं जा सकता, यह एक वर्जित स्थान है।

चेम्बर ऑफ कॉमर्स व जुआ कमीशन से प्राप्त आंकड़ों से मुझे यह पता चला कि नेवादा में जुए का कारोबार पिछले दस सालों में करीब १८० प्रतिशत बढ़ गया है। अगर सरकार को १९५८ में एक डॉलर की आमदनी शुल्क से होती थी तो वह आज १८२ डालर पहुंच गई है। जुए के लाइसैन्स और आमदनी पर यहां कर व शुल्क वसूल किया जाता है। १९६७ में सम्पूर्ण नेवादा राज्य को [सरकार को नहीं।] जुए से ३७,५५,७४,४५० डॉलर की आय हुई जिसमें सरकार का हिस्सा १,८३,२१,१३७ डॉलर का था। अकेले लॉस वेगस शहर की आमदनी २१,४१,००,९५३ डॉलर थी जिसमें सरकार का हिस्सा १,०५,३६,७१० डॉलर था। १९५८ में राज्य की आय केवल ६४,२९,०७७ थी। राज्य में हर किसी के लिए संभव नहीं है कि वह जुआ घर या कासिनों का लाइसैन्स ले ले। लाइसैन्स के लिए बहुत ही सख्त कानून बने हुए हैं। सबसे ज्यादा जोर दिया जाता है लाइसैन्स मांगने वाले के चाल चलन पर। उसका पिछला इतिहास ठीक बजाकर देखा जाता है। अमरीकी कानून के अनुसार जुआ घर चलाने वाला व्यापारी शायद

सबसे ज्यादा ईमानदार साबित हो।

मैंने लॉस-वेगस के बारे में ऊपर जो कुछ लिखा है, वह एक दिन की सरसरी जानकारी पर आधारित है और वह भी चन्द घण्टों की। यह भी संभव हुई मेरे अखबार नवीस साथियों की मदद से, जिन्हें मैं टेलीफोन करके खोज सका। मैं करीब तीन बजे अपने होटल में पहुंचा। खाना 'ड्यून' होटल में खा लिया था। मेरे कमरे में पहुंचते ही टेलीविजन को शुरू किया। न्यूयार्क के सेण्ट पीटर्स केथीडरल का दृश्य था, जहां रॉबर्ट केनेडी का शव नगरवासियों के दर्शनार्थ रखा था। बाहर हजारों लोगों की लम्बी कतारें लगी हुई थीं। मैं अपने बिस्तर पर लेट गया। देखता रहा और सोचता रहा। क्या रॉबर्ट केनेडी ने भी राजनीति में जुआ लगाया था? जीत कर अपने भाषण में हिंसा की कड़ी निन्दा की और उसके तुरन्त बाद ही वे हिंसा के शिकार हो गये। दिमाग में उथल-पुथल मचने लगी। लॉस वेगस में स्टारडस्ट होटल का कमरा, उधर शोकमग्न न्यूयार्क के केथीडरल का विषाद-पूर्ण दृश्य। चार बज कर पचास मिनट पर विमान से लॉस एंजिल्स जाना था। वक्त का तकाजा। चार बज कर पन्द्रह मिनट पर हवाई अड्डे की गाड़ी होटल से रवाना होती थी। करीबन् एक घण्टे का समय था। इधर सिर पर लिखने का दबाव। अपने काम का तकाजा था। उठ बैठा। यही लेख लिखने बैठा। लॉस वेगस में शुरू किया और लॉस एंजिल्स में आकर पूरा किया।

चार बज कर तीस मिनट पर हवाई अड्डे पहुंच गया। वहां पहुंचने पर घोषणा की गई कि विमान पांच बज कर पैंतीस मिनट पर रवाना होगा। मौसम खराब था, अतः देर हो गई। एक घंटे का समय फिर बच गया। एक कुर्सी पर आंख मीचे बैठा रहा। कुछ आराम मिला। आधे घण्टे की नींद मिल गई। जैसे पांच बच गये। उठकर कॉफी के दो प्याले पिये। कॉफी काउण्टर पर फिर वही खर्रखट की आवाज। लॉस वेगस की जानी पहिचानी आवाज!

—२६ जून, १९६८

खुली दौड़ लेकिन क़दम कदम पर रोक

अमरीकी अर्थ-व्यवस्था को समझना मेरे लिए आसान काम नहीं है। एक अर्थ शास्त्री या वहुत वड़े तजुर्वे वाला पत्रकार यह काम कर सकता है और वह भी यहां रह कर। हम लोग भारत में बैठे जो कुछ जानते आये हैं या सुनते आये हैं वे या तो ऐसी घटनाएं और ऐसे तथ्य हैं जो पौराणिक कथाओं की तरह विस्मयकारी लगते हैं या ज्योतिष शास्त्र की तरह के आंकड़े, जिनकी गिनती अरवों-खरवों से भी ज्यादा होती है। हमने यह भी जाना कि अमरीका में कुतुवमीनार से कई गुनी वड़ी ईमारतें हैं, करोड़ों मोटरें हैं, टेलिवीजन सैट हैं, घर-घर में रेफ्रीजरेटर और टेलीफोन हैं। कम्प्यूटर एक आम चीज हो गई है, लेकिन हमें यह अच्छी तरह मालूम नहीं कि ये सब क्यों हैं? मेरा मतलव जन साधारण की जानकारी से है। वैसे अमरीका के वारे में वात करने वाले वड़े वड़े ज्ञाता हमारे यहां बैठे हैं। हमने जाना कि अमरीकी लोग वड़े मेहनती होते हैं और यह ठीक भी है, लेकिन मेहनत मात्र ही काफी नहीं है। कुछ और भी चीज है

जो इस मुल्क को इतना बड़ा बना सकी ।

एक बार प्रधान मन्त्री नेहरू ने कहा था—अमरीकी लोग कितना ही बर्बाद कर दें, लेकिन फौरन ही उससे ज्यादा कमा लेते हैं, कमाल करते हैं । मैं यहां जब से आया लगातार पूछ-ताछ करता रहा हूं । यह जानने के लिए कि अमरीकी समृद्धि का रहस्य क्या है ? मैं जो कुछ समझ सका हूं उसे मैं यों कह सकता हूं कि अमरीकी वित-रण तन्त्र एक फव्वारे की तरह है, जिसमें से जितना पानी धाराओं में फूट कर निकलता है उतना ही वापिस चला जाता है । आज भी वियतनाम युद्ध और विदेशी सहायता में जितना धन अमरीका खर्च कर रहा है वह उतना ही है कि फव्वारे का पानी कुछ भाप बनकर उड़ जाता है । यहां का उत्पादन तन्त्र एक प्रपात की तरह शायद न्याग्रा प्रपात की तरह से है, जिसकी प्रबल धाराओं से बिजली बनती रहती है लेकिन पानी खर्च नहीं होता । अमरीका ने सम्पूर्ण जीवन को अर्थ प्रधान बना रखा है । सम्पूर्ण जीवन दर्शन, नीति-शास्त्र और समाज संगठन अर्थ पर आधारित है । अर्थ का उपार्जन करने में अमरीका ने औद्योगिकरण को सर्वोपरी महत्व दिया और उसमें आज भी तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है ।

एक अर्थ शास्त्र के प्रोफेसर ने बर्कले में मुझे बताया कि अम-रीका जैसे बड़े देश का औद्योगिकरण करने के लिए करीब अस्सी साल लगे हैं । आज से सौ साल पहिले अमरीका में करीब पिचहत्तर प्रतिशत लोग खेती करते थे, जो १९४५ तक करीब ग्यारह प्रतिशत रह गये और अब तीन प्रतिशत हैं । तीन प्रतिशत लोग भी खेती को उद्योग की तरह करते हैं, लेकिन अब वे इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि अनाज की खेती पर निर्भर नहीं रहना पड़े ।

अमरीका ने इस धारणा को मिथ्या सिद्ध किया है कि मशीनों से बेकारी फैलती है । शिकागो के एक इन्जीनियर ने मुझे बताया कि मशीनीकरण जब से शुरू हुआ है तब से अमरीका में बेकारी कम होती गई है और समृद्धि बढ़ती गई है । नये नये काम निकल गये हैं और

रहन सहन का स्तर कहीं ऊपर उठ गया है।

तीन हजार डॉलर से कम कमाने वालों की तादाद अब चार प्रतिशत से कम रह गई, जिसमें सब गरीब बेरोजगार और अर्द्ध बेरोजगार शामिल हैं। इनमें भी अधिकांश वे लोग हैं जो उद्योगों में काम करने के लिए शिक्षित नहीं हैं। नये जॉब का ट्रेनिंग कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद यह समस्या भी दूर हो जायेगी। फिलहाल अमरीका समाज-कल्याण निधि के जरिये इन लोगों की सहायता कर रहा है। इस निधि में आठ अरब डॉलर हर साल खर्च होते हैं और अब यह विचार चल रहा है कि आयकर कानून में ऐसा संशोधन हो जिससे उन लोगों की पूर्ति कर दी जाय जो आयकर देने लायक नहीं कमाते। अमरीका का पूंजीवाद भी एक सीमा तक एक पौराणिक कथा ही है, वरना अब अर्थ-व्यवस्था पर सामाजिक नियमन बहुत कुछ हो गया है। बिजली, रेल, बस, हवाई जहाज, टेलीफोन आदि की दरें सरकार तय करती है और कई स्थानों पर बिजली का उत्पादन भी सरकार द्वारा गठित स्वायत्त-निगम करते हैं। मजदूरी की न्यूनतम दर सरकार तय करती है। आजकल यह दर एक डॉलर साठ सेण्ट प्रति-घण्टा है।

अमरीका की मजदूर यूनियनें उतनी शक्तिशाली हैं, जितनी कि इण्डस्ट्री। ज्यादातर मसले बातचीत से निपटाये जाते हैं। हड़ताल अमरीकी उद्योगों में एक ऐतिहासिक घटना बन जाती है। आम तौर पर हड़तालें होती ही नहीं, लेकिन एक बार हड़ताल हो गई तो लम्बी चलती है। आजकल कई जगह टेलीफोन कर्मचारियों की सांकेतिक हड़ताल चल रही है, जैसे हमारे यहां जीवन-बीमा निगम के कर्मचारियों की। न्यूयार्क टाइम्स व फोर्ड मोटर कम्पनी की हड़तालें मशहूर हैं, जिन पर किताबें लिखी जा चुकी हैं। मजदूर संगठन की शक्ति का अनुमान मुझे न्यूयार्क टाइम्स के कार्यालय में लगा जहां प्रबन्ध संपादक पामर ने मुझे बताया कि उनके प्रेस में मुझे दिखाने लायक कोई खास चीज नहीं है क्योंकि न्यूयार्क टाइम्स

अभी भी पुरानी रोटेरी मशीनों पर ही छपता है। मैंने भी कहा कि मैं वाशिंगटन पोस्ट में इस तरह का प्रेस देख चुका हूं। पामर ने मुझे वताया कि मजदूर यूनियन की रजामन्दी के विना वे मशीनें वदल नहीं सकते। इस तरह की समस्या मैंने अन्य कुछ उद्योगों में भी देखी।

अमरीका में सवसे बड़ा तवका मध्यवर्गीय है, जो करीव अस्सी प्रतिशत है और उसकी आय छः हजार डॉलर से सोलह हजार डॉलर तक की है। सोलह से पचास हजार डॉलर कमाने वाले उच्च मध्यम वर्ग में आ जाते हैं और इससे ऊपर वाले सम्पन्न माने जाते हैं। तीन हजार से छः हजार डॉलर कमाने वाले करीव दस प्रतिशत हैं और वे निम्न मध्यवर्गीय हैं। इससे नीचे गरीव माने जाते हैं। मध्यवर्गीय लोगों में ड्राइवर, क्लर्क, टेलीफोन ऑपरेटर, शिक्षक, इन्जीनियर, पुलिसमेन, सफाई कर्मचारी, वेयरे, वटलर सभी आ जाते हैं और इनके रहन सहन में कोई खास फर्क नहीं होता। मुझे जितने लोग मिले, वे सव यह कहते थे कि समाजवाद में उनको ज्यादा क्या मिल जायेगा?

अमरीकी अर्थ व्यवस्था का आधार आज भी प्राइवेट एण्टरप्राइज या निजी व्यवसाय है, लेकिन उसका रूप वह नहीं रह गया है, जो १९३० की मन्दी के पहिले था। उद्योगों पर कई तरह के अंकुश लग गये हैं, जो मजदूर संगठनों के द्वारा, कर प्रणाली के द्वारा, वीमा, स्वास्थ्य नियमों के द्वारा, सुरक्षा नियमों के द्वारा, मूल्य निर्धारण के द्वारा लगाये गये हैं। इसके वाद भी अगर कॉर्पोरेशन इतना शक्तिशाली हो जाय कि वह अमरीकी अर्थ व्यवस्था या समाजतन्त्र पर हावी होने लगे तो उस पर रोक लगादी जाती है।

पाठकों को याद होगा कि भारत में कुछ ही सालों पहिले स्टेण्डर्ड वेक्यूम ऑइल कम्पनी के नाम की एक पेट्रोल कम्पनी व्यापार करती थी, जो आजकल एस्सो वन गई है। क्यों? इसलिए कि यह कम्पनी अमरीका में और अपनी शाखाओं के रूप

में बेशुमार बढ़ गई थी। इसे एण्टी ट्रस्ट कानून के जरिये तोड़कर टुकड़े टुकड़े कर दिया गया। अमरीका में यह अब पांच अलग अलग कम्पनियों के नाम से काम करती है। आजकल जनरल मोटर कम्पनी के बारे में इसी तरह की चर्चा सुनने में आती है। पिछले साल की हड़ताल के कारण फोर्ड मोटर कम्पनी का मुनाफा कम हो गया अर्थात् पांच सौ करोड़ डॉलर रह गया, वरना इस कम्पनी की भी बारी आने वाली थी, कानूनी कुठार के नीचे आने की। फिर भी कानून का लक्ष्य कारोबार कम करने या प्राइवेट हित को हानि पहुंचाने का कतई नहीं होता, बल्कि उसकी सत्ता पर अंकुश रखने का होता है। १९६१ में केनेडी शासन में जब रॉबर्ट केनेडी एटर्नी जनरल थे, उन्होंने केलीफोर्निया की दो कम्पनियों को एक होने की अनुमति दे दी थी, जिसकी भारी आलोचना हुई थी। अन्ततः सुप्रीम कोर्ट ने मोनोपोली कानून के मातहत इस अनुमति को रद्द कर दिया।

अमरीकी अर्थ व्यवस्था के वर्तमान विकास में सबसे बड़ा योगदान व्यापारियों की स्पर्द्धा, उत्पादन के साधनों और वितरण संगठन का रहा है। खपत के लिए गुंजाइश बनाना और उत्पादन पर कम लागत रखना अमरीकी उद्योग का मूलमन्त्र है। यहां जो कुछ बनता है बड़े पैमाने पर बनता और बिकता है। अमरीका अगर कम्प्यूटर बना रहा है तो वह यह भी कोशिश कर रहा है कि उसका उपयोग हर जगह होने लगे, इसलिये उसकी लागत भी कम आयेगी और खपत भी बढ़ जायेगी। खपत के लिए रास्ते भी व्यापारी बता देता है। खरीदने के लिए ग्राहक के पास धन की कमी नहीं क्योंकि देश की पूरी कमाई का अच्छा खासा हिस्सा जन साधारण के पास पहुंच जाता है। इस समय प्रति व्यक्ति आय का औसत करीब पैंतालीस सौ डॉलर है और राष्ट्रीय आय के अनुसार यह औसत करीब आठ हजार डॉलर है। मशीनीकरण के बावजूद मजदूरी की दर बढ़ी, वेतन बढ़े और बेरोजगारी कम हुई। रहन सहन बहुत ऊंचा

हुआ, यह अमरीकी अर्थ व्यवस्था की महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं।

मुझे पत्रकारों, प्रोफेसरों, इंजीनियरों आदि ने बताया कि वे सब व्यक्तियों को मूल इकाई मान कर चलते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति से समाज बना है और समाज की रचना व्यक्ति ने अपने हितों और सुखों के लिए की है, अतः वह अपने हित में समाज के नाम पर कुछ समझौता करता है, दायित्व उठाता है और कुछ बन्धन मोल लेता है, जो कानून के रूप में है। वे राज को व्यक्ति व समाज के आपसी सम्बन्धों का नियामक या निर्वाहक एजेण्ट मानते हैं, न कि मालिक। मुझे एक सवाल हर जगह पूछा गया—क्या मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता में विश्वास करता हूं? मुझे जगह जगह यह बताया गया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को वे मूल तत्व मानते हैं।

इतिहास और सिद्धान्त को मिला कर एलपासो के एक प्रोफेसर ने मुझे बताया कि औद्योगीकरण के शुरू में यहां व्यापारियों को जो स्वतन्त्रता थी वह आज नहीं है, क्योंकि समाज व्यवस्था को बनाये रखना भी हमेशा जरूरी समझा गया है और यह क्रम भी आज चल रहा है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह समाज व्यवस्था को हानि पहुंचाये। मैंने पूछा कि इस तरह की बात तो सोवियत रूस भी मानता है। प्रोफेसर ने कहा कि ऐसी बात नहीं है। सोवियत व्यवस्था में व्यक्ति जैसी कोई स्वतन्त्र इकाई अपना अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि मैं तो यही मानता हूं कि साम्यवाद का जन्म ही पूंजीवाद की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचार के कारण हुआ है। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ और पूंजीवाद के अनियन्त्रित विस्तार पर एक बड़ा अंकुश लग गया, लेकिन मैं यह दावा करता हूं कि सोवियत रूस का ढांचा भी बहुत जल्दी ही बदल जायेगा। उसे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को मान्यता देनी पड़ेगी, वरना वह आर्थिक क्षेत्र में आज की तरह पिछड़ा ही रहेगा। आज जो सोवियत रूस की तरक्की नजर आती है, वह एकांगी है, इकतरफा है। सामान्य जन जीवन उन सब आधुनिक सुविधाओं से वंचित है, जो स्वतन्त्र विश्व के अन्य

उन्नत देशों में है। अभी वह यूरोप के अपने पड़ौसियों के बराबर भी नहीं पहुंचा है। मुझे सोवियत रूस के बारे में कोई जानकारी नहीं, इसलिए मैं आत्म-विश्वास के साथ कोई बात नहीं कह सकता था, लेकिन ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक पृष्ठ-भूमि के रूप में अमरीका के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा उसे मैंने जरूर समझा और माना। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को हमारा संविधान भी मानता है।

समाजवाद के नाम पर जो कुछ ताना-बाना कांग्रेस ने बना रखा है, वह हालांकि संविधान में निहित नहीं है, लेकिन व्यक्ति की स्वतंत्रता को मान्यता देता है और समाजवाद के पहिले लोकतांत्रिक शब्द भी जोड़ा जाता है। मैंने अमरीका में यदाकदा लोकतान्त्रिक समाजवाद की बात चलाई तो मुझे यह दावा करने वाले भी कई मिले कि अमरीका को लोकतान्त्रिक समाजवाद के आदर्श के रूप में रखा जा सकता है। 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' का ऐसा कोई गुण-तत्व नहीं है जो अमरीका में नहीं है।

और इस बात की पुष्टि करती है अमरीका की नई पीढ़ी। यहां के विश्व-विद्यालयों में नये अमरीका को देखा जा सकता है। हिप्पी, तान्त्रिक, योगी, बीटल आदि जिन वर्गों की चर्चा मैंने पहिले की है, वे संख्या व शक्ति में नगण्य हैं, लेकिन वे भी समाज व्यवस्था के किसी न किसी असंतुलन या व्यतिक्रम की सृष्टि हैं। अमरीका की नई पीढ़ी में उदारवादी दृष्टिकोण है। वे बहुचर्चित पूंजीवाद के समर्थक नहीं हैं, युद्धवादी नीतियों के सख्त विरोधी हैं, गरीबी जो भी है, उसे एकदम मिटाने के हिमायती हैं, रंगभेद का बीज इन लोगों में कतई नहीं रह गया है और वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के भी पुजारी हैं। वे पुरानेपन का हर क्षेत्र में विरोध कर रहे हैं, पुरानेपन से मेरा मतलब जमी हुई दुकानों से है। वे शासन में नया नेतृत्व देखना चाहते हैं और समाज में भी। वर्तमान नेतृत्व के दो विरोधियों स्व. रॉबर्ट केनेडी और यूजिन मेकार्थी को प्राइमरी चुनावों में जो सफलता मिली है, उसमें विश्वविद्यालयों को नई पीढ़ी का सबसे बड़ा हाथ रहा है और

वही नीग्रो वर्ग के साथ रही है। भले ही चुनावों में पुराना नेतृत्व-रिपब्लिक या डेमोक्रेट कायम रह जाय, लेकिन वह बहुत कुछ बदला हुआ होगा और नई अर्थ-नीतियों का सूत्रपात होगा। नये अमरीका को नया प्रेसीडेण्ट दरगुजर नहीं कर सकेगा।

अमरीकी लोगों में सोवियत साम्यवाद का अब वह हौवा नहीं है। अमरीकी अर्थ व्यवस्था सोवियत रूस को अपना शत्रु नहीं मानती है, लेकिन राजनैतिक क्षेत्र में भी उसके साथ समझौता करने को अमरीकी नेतृत्व तैयार है। वियतनाम युद्ध अगर बाधक न होता तो यहां यह माना जाता है कि सोवियत और अमरीका ज्यादा नजदीक होते। प्रेसीडेण्ट जॉन्सन का बस चलता तो आज भी नहीं चूकते। न्यूयार्क टाइम्स ने अपने १२ मई के अंक में लिखा है :

'सोवियत-अमरीकी सम्बन्धों का दौर सदैव जॉन्सन सरकार की इच्छाओं के अनुसार नहीं चलता। अगर जॉन्सन सरकार अपनी इच्छानुसार चलने को स्वतन्त्र होती, तो वह एक ओर उत्तर वियतनाम में सोवियत रॉकेट अड्डों पर बम भी बरसाती रहती और दूसरी ओर सोवियत रूस को मशीनें कम्प्यूटर आदि भी बेचती रहती तथा पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार भी करने को होती लेकिन इस तरह की दलील न तो अमरीकी कांग्रेस को ही रुचती और न सोवियत रूस के नेताओं को ही।'

अभी इसी महीने में प्रेसीडेंट जॉन्सन ने सोवियत रूस का आव्हान किया है शान्ति पूर्ण सहयोग का, जिसे मंजूर करने में सोवियत रूस ने वियतनाम समस्या को बाधक बताया है। मेरे कहने का मतलब यह है कि अमरीकी लोगों में जहां आर्थिक हितों का सवाल सामने आता है, वे हर तरह की स्थिति के लिए तैयार रहते हैं और अपने आप को हर परिस्थिति में ढाल लेते हैं। अमरीकी अर्थ-तंत्र स्वतंत्र होने के साथ साथ लचीला भी है।

— २८ जून, १९६८

नारी : द्रुत गामिनी , मृदु भाषिणी

अमरीकी स्त्री का एक पैर घर में है और एक बाहर है। मैंने अपने छः सप्ताह के दौर में अमरीका के विभिन्न शहरों और गांवों में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाली विभिन्न प्रकार की बीसियों स्त्रियों का न्यूनाधिक परिचय पाया। मैं नहीं कह सकता कि इतने मात्र से मैं अमरीकी स्त्री के बारे में जो राय जाहिर करूंगा वह ठीक ही होगी, क्योंकि मेरा आधार भले ही बड़ा बन गया हो, लेकिन कुल मिलाकर वह अल्पजीवी था और एकांगी भी था। मैंने अमरीका की उस स्त्री को देखा है, जो पुराने जमाने की है लेकिन सम्पन्न है। उस स्त्री को भी देखा, जो नये जमाने की है, लेकिन गृहिणी है और उस स्त्री को भी देखा जो उपार्जन में लगी हुई है और उस स्त्री को भी देखा है जो अभी जीवन की दहेली पर है अर्थात् विश्वविद्यालय में है। पुराने जमाने की अर्थात् बड़ी उम्र वाली स्त्रियों को ज्यादातर मैंने स्वयं-सेविका के रूप में देखा है। उनके पास फुर्सत होती है, जीने के साधन होते हैं और सामाजिक काम करने की दिलचस्पी होती है।

मैंने इस वर्ग की स्त्री पर एक लेख में पहले कुछ चर्चा की है लेकिन उसके सामाजिक कार्य-कलाप की। उसका एक मानसिक व्यक्तित्व भी है। अमरीकी परिवार-व्यवस्था पर उसकी एक निश्चित राय है और वह एक पीढ़ी के अनुभव के बाद बदली हुई नजर आती है।

अमरीकी स्त्री की चर्चा करने के लिए उसके परिवार की जानकारी बड़ी जरूरी है। परिवार के नाम पर अमरीका में केवल पति, पत्नी और बच्चे माने जाते हैं। एक परिवार में तीन पीढ़ी एक साथ नहीं रहती। ऐसे तो उदाहरण देखने में आये हैं कि पत्नी की माता उनके पास आकर रहने लग जाय, लेकिन इस तरह के मामलों में पारिवारिक सम्बन्ध प्रमुख न होकर आर्थिक स्वार्थ अधिक देखने में आता है। माता, यदि वह परित्यक्ता है या विधवा है, तो वृद्धावस्था में अपने पुत्र के बजाय पुत्री के पास रहना ठीक समझेगी और पुत्री उसकी वसीयत को दृष्टि में रख कर अपने पति को भी राजी कर लेगी।

ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं और जो हैं उनका भी अनुभव सुखद नहीं होता, परन्तु आर्थिक समझौते पर व्यवहार जैसे तैसे निभ जाता है। जिन वृद्धाओं के पास पर्याप्त धन होता है, वे आम तौर पर सरकारी वृद्धालयों में रहना पसन्द नहीं करतीं, इसलिए वे पुत्री का घर चुनती हैं। पुत्र-वधू पर वे ज्यादा निर्भर नहीं रहतीं, अतः पुत्र के पास वे नहीं रहना चाहतीं। उनके सामने दूसरा प्रश्न यह भी रहता है कि यदि पुत्र-वधू तलाक दे दे, तो फिर उसे देखरेख के लिए मुहताज रहना पड़ेगा, जिससे अलग रहना ही अच्छा। परिवार में दादा-दादी को वैसे कोई स्थान नहीं है। लड़के लड़कियों के घर बसाते ही वे उनके लिए मेहमान हो जाते हैं। समय समय पर वे एक दूसरे के यहां जाकर खैर खबर ले लेते हैं और कुछ समय बिता लेते हैं। परिवार की इस रचना का मूल कारण आर्थिक है। आर्थिक परिवर्तनों ने संयुक्त परिवार प्रथा को असंभव बना दिया है। मैंने वृद्धाओं के जिस वर्ग का ऊपर जिक्र किया है वे अब यह मानती हैं कि

परिवार व्यवस्था में कुछ सुधार की जरूरत है।

वफेलो की एक वृद्धा ने इस वात पर खेद प्रकट किया कि अमरीकी लोग ज्यादा क्यों जीते हैं ? इतना जीने पर वुढ़ापे में उनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं होता। शिकागो के एक स्टोर के प्रवेश द्वार पर मैंने एक वृद्धा को इस उम्मीद में कमर झुकाये खड़े देखा कि कोई दरवाजा खोले तो वह भी अपनी ट्रॉली लेकर खरीददारी करने के लिए भीतर जा सके। उसके हाथों व पैरों में इतनी जान नहीं थी कि वह एक हाथ से हल्की-सी ट्रॉली को पकड़ कर दूसरे से दरवाजा भी खोल ले। मैंने जब दरवाजा खोला तो उसने लाख लाख शुक्रिया अदा किया और वह भी लड़खड़ाते स्वर में। मुझे उसकी अवस्था पर करुणा हो आई और वृद्धावस्था की यातना की एक हल्की सी झलक देखने को मिली। संयोग से उस समय वह भी आई और मैं भीतर जा रहा था यदि दूसरा भी कोई होता या स्टोर के कर्मचारी की उस पर नजर पड़ जाती तो वह दौड़कर मदद के लिए जरूर आता। हवाई अड्डों पर एकाधिक वार मैंने वृद्धाओं को पहिये वाली कुर्सी पर वैठे देखा, जिनको लोग यात्रा के लिए सहारा दिए हुए थे। न जाने यात्रा में उनको कितना कष्ट उठाना पड़ता होगा और वे यात्रा क्यों करती हैं ! खैर !

ऊपर जिस वर्ग की महिलाओं का जिक्र मैंने किया है, उनकी राय में अमरीका की परिवार व्यवस्था या गृहस्थी के मामले में अभी तक स्त्री को ही घाटा उठाना पड़ा है। बफेलो की मिसेज पोटर इस वात से दु:खी हैं कि अमरीका में तलाकों की संख्या वहुत वढ़ गई है। उनकी शिकायत है कि शादी के मामले में मर्द लोग जैसे अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं समझते हैं और शादी को सिर्फ स्त्री की चीज मानते हैं।

एलपासो में एक कर्नल की पत्नी श्रीमती तोविन ने वताया कि तलाकों की तादाद देखकर वे यह तय नहीं कर पा रही हैं कि हिंदुओं की गृहस्थी ज्यादा अच्छी है या अमरीकी लोगों की। वे दंपति जीवन में स्थायित्व पर वल देती हैं। उन्होंने अपने जीवन में दो विवाह

किये हैं और दोनों ही पति तलाक दे चुके हैं। दोनों से एक पुत्र और एक पुत्री है, जो अपनी मां के जिम्मे हैं। श्रीमती तोविन ने मुझे वताया कि अदालत से उनको वच्चों के पालने का खर्च मिलने की व्यवस्था की गई थी, परन्तु उन्हें मिलता नहीं है। चूंकि मेरे पिताजी मेरे लिए वहुत कुछ छोड़ गये हैं, इसलिए मैं आराम से अपना जीवन विता रही हूं, लेकिन उनकी राय यह जरूर है कि तलाक वहुत ज्यादा नहीं होने चाहिए। तलाक प्रथा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तो जरूर है और जरूरी भी है, लेकिन हर छोटी वड़ी बात पर तलाक हो जाना भी बुरी वात है। अमरीका में कई तलाक इस तरह के हुए हैं, जिनका कोई ठोस कारण नहीं कहा जा सकता, लेकिन तलाक देने वालों ने उसे वहुत तूल दिया है। उदाहरण के तौर पर पत्नी इस वात पर तलाक कर दे कि उसके पति का व्यवहार वड़ा ठण्डा-ठण्डा नजर आता है या इस बात पर कि वह शाम का समय साथ नहीं बिताता। दूसरी शिकायत का परिणाम तो यह भी देखने में आया कि कई युवक अपनी पत्नी के तलाक के डर से नई-नई परीक्षाएं देकर भी अपनी योग्यता नहीं वढ़ा पाते। इसके विपरीत ज्यादातर पति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और पसन्द को महत्व देकर तलाक का रास्ता लेते हैं। तलाकों की तादाद लगभग पच्चीस प्रतिशत है। पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों का खयाल अव यह होता जा रहा है कि परिवार में स्थायित्व बहुत जरूरी है और बच्चों के विकास के लिए तो अनिवार्य है।

लॉस एंजिल्स टाइम्स के विज्ञापन विभाग में काम करने वाली एक महिला लुडमिला संतोरा ने दूसरी ही बात कही। उनका कहना था कि तलाक कोई सामाजिक समस्या ही नहीं है, जिस पर चिन्ता प्रकट की जाय। उनकी राय में आज-कल ज्यादातर तलाक नये नये लड़के-लड़कियों के वीच हो रहे हैं। इस आयु के लोग जल्दवाजी में शादी कर लेते हैं और गृहस्थी की जिम्मेदारियों का उनको अनुभव नहीं होता, इसलिए एकाध साल

में पहला बच्चा होते ही कुछ खींचतान शुरू हो जाती है। टाइम्स की ही एक दूसरी युवती ने बताया कि शादी का रूप ही बदल जाना चाहिए। वे वर्तमान परिवार प्रणाली के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने वर्तमान विवाह के तीन उद्देश्य बताये—भोग, वंशवृद्धि, एवं गृहस्थी। भोग एवं वंशवृद्धि के लिए वे शादी को जरूरी नहीं मानतीं, खास तौर पर आज के युग में। वंशवृद्धि के लिए उनकी राय है कि पुरुष या स्त्री, जिसको सन्तान की इच्छा हो वह शादी कर ले और वही सन्तान का पालन-पोषण का भार या दायित्व ग्रहण करे। वर्तमान में हर तलाक में सन्तान का दायित्व स्वेच्छा से भी और कानून से भी स्त्री पर आता है। यह गलत है।

सेन फ्रान्सिस्को की हिप्पी सम्प्रदाय की लड़की पेट्रीशिया ने इस राय को एक कदम आगे बढ़ाया। इस लड़की का कहना था कि वंशवृद्धि किस लिए? यह जरूरत सिर्फ सम्पति को लेकर पैदा हुई है। यह क्यों जरूरी है कि मरने के बाद अपनी सन्तान ही जायदाद की मालिक बने? अपनी बला से कोई भी खाय। बुढ़ापे में तो आज भी सन्तान का सहारा नहीं मिलता। इस बात को अमरीकी लोग मान्यता देते हैं। वे मरने के बाद की फिक्र क्यों करते हैं? उनको चाहिए अपने मरने तक का बीमा करवालें। बीमा कम्पनियां उनकी सारी देखरेख कर लेंगी। शेष सम्पति को वे दान कर दें। ऐसी व्यवस्था हो जाने के बाद बेकार की सम्पति बटोरने की प्रवृत्ति ही खत्म हो जायेगी।

मैंने सवाल किया—क्या, तुम व्यक्तिगत सम्पत्ति के अमरीकी सिद्धांत के विरुद्ध हो, तो उसने जवाब दिया—'नहीं, बिल्कुल नहीं, लेकिन धन को बटोरकर बेकार पड़े रखना मुझे पसन्द नहीं। इससे तो अच्छा है, दान करो, शेयरों में लगादो या फूंक डालो।' लॉस एंजिल्स की दोनों महिलाओं ने दो दिनों तक बारी बारी से मुझे लॉस एंजिल्स व डिस्ने लेण्ड दिखाया था और हिप्पी लड़की से वैसे ही एक कॉफी हाऊस में भेंट हो गई थी।

वर्कले विश्वविद्यालय के पास टेलीग्राफ एवेन्यू हिप्पियों का अड्डा है। मैं यहीं एक कॉफी हाऊस में जा बैठा था। मैंने पेट्रीशिया से फिर पूछा कि क्या वात्सल्य रस को वह कोई महत्व नहीं देती। उसने कहा कि वात्सल्य के लिए कोई जरूरी नहीं है कि अपनी ही सन्तान पैदा की जाय। उसने यह भी कहा कि वात्सल्य रस कोई वुनियादी वृत्ति नहीं है। वह प्रेम का ही एक अंग है या रूप है। मुझे लगा कि कहीं इसने नन्द और यशोदा की जीवनी या कृष्ण की वाल लीला तो नहीं पढ़ी है। मैं पूछने ही वाला था कि एक दूसरी लड़की वहां आई और पच्चीस सेण्ट मांगने लगी। पेट्रीशिया ने मेरी ओर संकेत किया कि अगर जेव में हों तो मैं दे दूं। मैंने दिये और वह चली गई।

मुझे पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। पेट्रीशिया ने खुद ही वताया कि वे जरूरत पड़ने पर किसी से भी विना संकोच के मांग लेती हैं। हम इसे बुरा नहीं मानतीं। जरूरत से हमारा मतलव भी जरूरत ही है, भीख मांगने की आदत नहीं है। जरूरत पूरी करने में हम किसी को पराया नहीं समझतीं। वातचीत का प्रसंग तो वदल रहा था, लेकिन मैंने पूछ ही लिया एक सवाल। क्या इससे भिक्षा-वृत्ति नहीं पैदा होगी? मुझे जवाव मिला कि दुनिया में हर आदमी भिखारी है। कोई कर्ज के नाम और कोई धर्म के नाम पर। भिक्षा कोई नयी चीज भी नहीं है। फिर भी वटोर कर रखने या चोरी डाका करने से यह अच्छी है।

यह लड़की बिल्कुल फटे चिथड़ों में थी, जिसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह किसी वड़े घर की बेटी हो सकती है। वाप एक रिटायर्ड प्रोफेसर हैं और घर भरापूरा है, अमरीकी मापदण्ड से भी। इसके पहिले लॉस एंजिल्स की जिन दो महिलाओं का नाम मैंने लिया वे स्वयं दस हजार डॉलर के आस पास कमाने वाली हैं और स्वयं-सेविकाओं के पुराने वर्ग में जिनका उल्लेख मैंने किया है, वे सव धनी परिवारों की हैं। सवके पहिनावे में और दृष्टिकोणों में फर्क है। अपनी अपनी रीति है, अपनी अपनी राय है।

इसके अलावा ऐसे दम्पत्ति भी मेरे सम्पर्क में कई आये जिन्होंने अपने जीवन में कभी कोई असंतुलन या खिंचाव नहीं देखा (दाम्पत्य जीवन में) , तलाक का खयाल भी जिनको नहीं आया । इन घरों में स्त्री को प्राय: गृहस्थी तक ही सीमित देखा । उनकी जीवनचर्या यह रही है कि वह छोटे बच्चे के रहते हुए घर गृहस्थी को सम्भालती हैं और अवसर अनुकूल होते ही काम पर लग जाती हैं । बच्चा होने तक पति-पत्नी या तो शिक्षा पाते रहते हैं या दोनों काम करते रहते हैं । शिक्षा का मापदण्ड यहां हाई स्कूल है । ग्रेजुएट तक या पोस्ट ग्रेजुएट तक की शिक्षा पाने वालों का अनुपात अपेक्षाकृत कम है ।

स्त्री का स्थान अमरीका में जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी पहलुओं में बराबरी का है , लेकिन सक्रिय राजनीति में भारत की अपेक्षा बहुत कम है । इसका कारण अवसरों की कमी नहीं है , पर राजनीति को यहां की स्त्री आमतौर पर ज्यादा आकर्षक क्षेत्र नहीं मानती । स्त्री के प्रति दृष्टिकोण भी रोमांस वाला नहीं है । अमरीका की स्त्री से बात करने पर मुझे लगा कि मानो मैं ठेठ अपने देश देहात में पहुंच गया , जहां स्त्री एक पुरुष से बिल्कुल सहज और स्वाभाविक रूप में बात करती है । भारत की शहरी सभ्यता में पली हुई स्त्री में यह स्वाभाविकता मिट गई है । भारत की शहरी सभ्यता की स्त्री किसी पुरुष से व्यवहार करने में पहिले कोई न कोई लेविल तलाश करना जरूरी समझती है । मेरा मतलब शहरी से यहां आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री से है । वह पहिले यह देखती है कि किसी पुरुष को व्यवहार में लेने के लिये पहिले काका, दादा, भाई, भतीजा, भानजा आदि बनाया जा सकता है या नहीं । हमारे देहात की स्त्री को इतनी परेशानी नहीं उठानी पड़ती । या तो उसके सम्बन्ध पीहर या ससुराल के गांव के हिसाब से बंधे बंधाए होते हैं या वह सीधे सादे ढंग से व्यवहार शुरू कर देती है । भाई साहब का सम्बोधन हमारे यहां काफी हास्यास्पद हो चुका है , लेकिन वह व्यवहार में आज भी काफी जमा हुआ है । अमरीका में यह बीमारी कहीं भी

देखने को नहीं मिलेगी। यहां का पुरुष भी स्त्री को खयाली दुनिया की चीज नहीं मानता।

औद्योगिक सभ्यता की अतिशयता ने अमरीकी स्त्री को बदला भी बहुत है। कोई कोई अमरीका की स्त्री पुरुष की बराबरी में अपने स्त्रीत्व को भी पीछे छोड़ आई है। भारत के काव्य-साहित्य में स्त्री के लिए जिन विशेषणों एवं उपमाओं की योजना है, अगर उनको किसी तरह अमरीकी स्त्री के चित्र पर लागू किया जाता तो सचमुच ऊंचे दर्जे का कार्टून बन जाता। गज-गामिनी कहने पर गज के समान अमरीकी स्त्री भी चलने में हरिणी की तरह लगेगी। यही बात वेशभूषा पर लागू होती है। शिकागो की एक कम्पनी ने अभी अभी एक सर्वेक्षण किया है, जिससे यह निष्कर्ष निकला है कि पुरुषों के कपड़ों की खरीददारी में अमरीकी स्त्रियों की संख्या ज्यादा है। वे न केवल अपने घर के पुरुषों के लिए ही कपड़े खरीदती हैं, बल्कि अपने लिए भी वैसे ही कपड़े खरीदती हैं, वैसी ही टाई खरीदती हैं और वैसी ही दूसरी चीजें पहिनती हैं।

एक तरफ उसने पुरुषों से बराबरी करने की होड़ की है और अपनी पोशाक की काट छांट करने में भी कमाल कर डाला है। काट छांट से भी जी नहीं भरा तो ऊब कर उसने कपड़े ही उतार फेंके हैं। नाइट क्लबों और थियेटरों की बात छोड़िये, सड़कों पर आपको कई अमरीकी स्त्रियां कच्छे और बनियान पहिन कर घूमती हुई मिलेंगी। उनको यह पहिनाव अटपटा भी नहीं लगता। बाल कटवाने में भी वह पुरुषों से पीछे नहीं है। कई कई स्त्रियां तो बाल कटवाकर ऐसी लगने लगती हैं जैसे ऊन कतरी हुई भेड़ें हों। टेनेसी के नाक्सविल शहर में एक ऐसी ही स्त्री को देखकर मेरे साथ चल रहे एक अमरीकी सज्जन ने व्यंग करते हुए अपने आपसे ही कहा— "अमरीकी स्त्री को अपने आपको संवारने में तो कमाल हासिल है।" इधर कपड़ों की सिलाई में भी हाथ की सुई का काम मशीनों ने ले लिया है इसलिये करीने का पहिनावा अब विशेष मौकों के लिए ही रह गया है।

पहिनावे में सव तरफ रेडीमेड का ही रिवाज है। इस औद्योगिक परिवर्तन ने स्त्री को वदलने में भी वड़ा काम किया है। प्रकृति ने पुरुष और स्त्री में जो भेद कर दिया है उसे तो किसी तरह अमरीकी स्त्री वनाये हुए है लेकिन मनुष्य ने प्रकृति के इस भेद को प्रकट में रखने के लिए जो कुछ किया है, उस पर प्राय: पानी फेर डाला है। अपने डेढ़ महीने के प्रवास में मुझे सवसे पहिले यों तो न्यू आर्लियन्स के नाइट क्लव में यह महसूस हुआ कि मैं स्त्री के सामने हूं और एक दूसरी ही जाति का हूं, या मैंने होनोलूलू में महसूस किया कि अमरीका में संस्कारगत स्त्री अभी मौजूद है। मैंने हवाई द्वीप समूह की राजधानी में देखा कि स्त्रियां के जूड़ों में फूल सजाये, साड़ी की तरह कन्धे से एड़ी तक सुन्दर सुरुचिपूर्ण 'मूमू' पहिने हुए थी। उन्होंने यह धारणा मिथ्या सावित कर दी कि काम काज करने वाली स्त्रियों के लिए शालीन वेशभूषा वाधक होती है। होनोलूलू में सड़कों और दफ्तरों में ही नहीं, वल्कि वड़े कारखानों में मैंने स्त्री को 'मूमू' में ही देखा है।

यहां दुनिया का सवसे वड़ा कारखाना है जो साल में अनन्नास के करीव तीस करोड़ डिब्बे तैयार करता है। इस कारखाने के नौ हजार मजदूरों में सात हजार से ज्यादा स्त्रियां हैं, जो काम करते वक्त भी चम्पा के फूल धारण किये रहती हैं; भले ही ऊपर कारखाने की सफेद वर्दी पहननी पड़ती हो। अमरीका भर में अन्यत्र मैंने यह वात नहीं देखी। दूसरी ओर अमरीकी स्त्रियां मर्दानगी की दौड़ में सिगरेट फूंकने में भी शायद दुनियां में सवसे आगे निकलें। नावालिग लड़-कियों से लेकर वड़ी बूढ़ी तक इस आदत की शिकार हैं। उन्होंने एक गुण अभी तक वचा रखा है और वह यह कि वे मृदु भाषण में या शिष्ट व्यवहार में आज भी अनेक देशों की स्त्रियों से श्रेष्ठ हैं। भारत की स्त्रियों से वे इस माने में लाख गुणा श्रेष्ठ है। यह वात उनसे व्यवहार करके ही जानी जा सकती है। मृदु भाषण या शिष्टता उनके स्वभाव का अंग है। यह अमरीका की एक स्त्री मात्र का स्वभाव है और चरित्र का एक उदात्त गुण है। इसमें वनावट का पुट भी

नहीं होता ।

अमरीका के किसी भी कौने में चले जाइये, स्त्री मृदु भाषिणी ही मिलेगी । उसकी शिष्टता का दूसरा नमूना यह है कि अगर रास्ते चलते भी आपकी नजर उसकी नजर से मिल गई, तो वह अनदेखा करके कभी नहीं जायेगी, वल्कि मुस्करा कर आपका अभिवादन करती जायेगी । उसके पास समय होता तो वह आपकी कुशल क्षेम भी पूछती, लेकिन समय की सीमा को देखते हुए या जिन्दगी की तेज रफ्तार के दौर में वह मुस्कान से अपना कर्तव्य वखूवी निभा देती है । अमरीकी शिष्टाचार में, खास तौर पर स्त्रियों के व्यवहार में यह ख़ास वात है । अगर अनजाने में भी आपको कोई वात करने की जरूरत पड़ गई और उसे यह मालूम पड़ा कि आप विदेशी यात्री हैं तो वह यह कहना कभी नहीं भूलेगी कि 'आपकी यात्रा सुखद हो' मैंने कदम कदम पर यह अनुभव किया है ।

मैंने अमरीकी स्त्री में भारत के प्रति गहरी रुचि देखी है । मैंने वाशिंगटन के एक घर में भारत के ढंग का ख़ाना खाया जो गृहिणी ने अपने हाथों से वनाया था । उसने अपने वच्चों के वोलते नाम भी रानी, राजा आदि रख छोड़े थे । वह अपने आपको अनीता कहती थी । एक अन्य घर में भी जहां मैंने खाना नहीं खाया था, लेकिन पति-पत्नी को भारतीय ढंग का खाना खाते हुए देखा ।

पहिनावे में अमरीकी स्त्री साड़ी को ग्रहण करने को तैयार है, वशर्ते कि उसे पहिनना आ जाय और साड़ी उपलब्ध हो जाय । साड़ी पर हर अमरीकी स्त्री की नजर टिक जाती है । मुझे जयपुर की ही एक छात्रा गृहिणी कुसुम वख्शी ने सान फ्रांसिसको में वताया कि उसके पास अमरीकी लड़कियां साड़ी पहिनना सीखने के लिए पहुंच जाती हैं । वूर्स्टर में एक गृहिणी, मिसेज मिलर जितनी देर मेरे साथ रहीं, भारत के इतिहास पुराणों की ही वात करती गईं । वहां के अखवार टेलीग्राफ एण्ड गजट के कार्यालय में तो एक महिला ने मेरे सामने गीताञ्जलि का अंग्रेजी संस्करण रख कर मुझे विस्मय में डाल दिया ।

यह उसकी दराज में ही रखा हुआ था और वह उसे पढ़ भी रही थी। अनेक स्त्रियां भारत भ्रमण की साध रखती हैं। बोस्टन में एक महिला ने मुझे भारत की कई महिलाओं के नाम गिनाये, जो राजनीति में या सामाजिक क्षेत्र में काम करती हैं। उनके परिचय भी दिये। अमरीकी स्त्रियां भारत की स्त्री को घर की मालकिन समझती हैं तो बड़ी खुशी होती हैं।

भारत भ्रमण की साध रखने वाली अमरीकी स्त्रियों में मैंने ज्यादातर युवतियों को देखा और उसका कारण भी योग तथा ध्यान का प्रचार है, जो आजकल इस वर्ग में काफी है। न्यू आर्लियन्स के प्रसंग में पिछले एक लेख में मैंने एक कृष्ण भक्त युवती का जिक्र किया था—वह इसी वर्ग की है। वह बार में ग्राहकों को मदिरा बेचते बेचते ही बीच बीच में 'हरे कृष्ण' कह कर छत पर आंखें भी टिका देती थी। उसने मुझे बताया कि वह जल्दी से जल्दी भारत भूमि का दर्शन करना चाहती है। मैंने मन ही मन अपने राम को याद किया और प्रार्थना की कि वह अपनी अमरीकी भूमि में ही हरे कृष्ण के बजाय 'हरेकृष्ण का जाप' करती रहे तो अच्छा हो, उसे निराश नहीं होना पड़ेगा। न जाने उसके मानस में हरे कृष्ण और भारत के प्रति किस तरह की धारणाएं हैं और उन्हें समझने की उसकी कितनी तैयारी है। भारत भूमि के दर्शन करने मात्र से तो कुछ बनेगा नहीं।

— २८ जून, १९६८
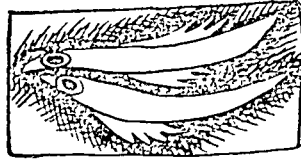
नेहरू जेकेट और बम महादेव

अमरीका और भारत के बीच मैत्री सम्बन्ध हैं और सरकारी तौर पर उनका प्रतिफलन राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक क्षेत्रों में होता रहता है, लेकिन दोनों ही देशों के बीच कुछ अन्तर्धाराएं भी वह रही हैं, जो नई नई चीजों को एक-दूसरे देश में पहुंचाती रहती हैं। मैं यह देखता था कि भारत में अमरीकी चीजें फैशन के रूप में फैलती जा रही हैं। आजादी के बाद पहिला तौहफा आया पोनी टेल, फिर रॉक एन रॉल, फिर हुलाहूप, फिर कोका कोला और अव ट्विस्ट, शेक आदि आदि। आगे न जाने क्या क्या आने वाला है। नई पीढ़ी उनका स्वागत करने के लिये तैयार हो रही है।

अव जरा इधर की सुनिये। अमरीकियों को भारत की पहिली चीज का परिचय हुआ साड़ी से, फिर यहां संगीत और नृत्य पहुंचे। दोनों ही भारत की प्रतिनिधि कलायें हैं। अव यहां चल पड़ा है नेहरू जेकेट का फैशन। जेकेट यहां कोट को कहते हैं और भारत में बंडी को। नेहरू जेकेट यहां लड़के, लड़की सभी पसन्द करते हैं और फैशनपरस्त

लोग ही पहिनते हैं। लेकिन सोलह जून को अमरीका भर में फादर्स डे मनाया जा रहा है जिसे मैं अपनी भाषा में पितृ-दिवस कह सकता हूं। पितृ का अर्थ पितृ ही समझिये, श्राद्ध पक्ष वाला पितर नहीं, क्योंकि हम तो सभी पुरखों को अपना पितृ-देव मानते हैं। अमरीकी लोग अपने पिता ही को मिस्टर फादर मानते हैं, दादा और पड़-दादा की यहां कोई पूछ नहीं है।

फादर्स डे के लिये पिछले एक सप्ताह से अखबारों में विज्ञापन निकल रहे हैं। सेन फ्रांसिस्को के एक फैशन डिजाइनर ने पिता पुत्र की आदर्श पोशाक के रूप में नेहरू जेकेट पेश की है और पुत्रों से अपील की है कि वे १६ जून को यही पोशाक पहिनें और अपने पिता जी को भेंट करें। पितृ-दिवस पर सबसे अच्छी पोशाक पहिनने वाले पिताओं के लिये एक प्रतियोगिता भी घोषित कर दी गई है, जिसके लिये पोशाक के व्यापारियों ने सैकड़ों डॉलरों के इनाम निकाले हैं और एक कमेटी बनादी है। नेहरू जेकेट भी एक उम्मीदवार है और बहुत आशान्वित है।

शो रूम्स में नेहरू जेकेट का सजधज के साथ दिखावा किया जा रहा है। मैं जयपुर की तरह यहां भी जोधपुरी कोट पहिनता हूं और यहां आकर फैशनेबल बन गया हूं। मेरा कोट यहां बड़े आकर्षण की वस्तु है। काश ! कोई अच्छी पोशाक वाले पर्यटक के लिये भी इनाम निकालता। लोग देख भर लेते हैं और 'वेरी प्रैटी' कह कर रह जाते हैं। मेरे पास एक दूसरा सिल्क का कोट भी है, खुले कॉलर का। वह तो यहां रईसों की पोशाक में है। एक साहब ने मुझे बताया कि सिले-सिलाये कोट के लिये उन्होंने यहां एक सौ पचीस डॉलर खर्च किये हैं। न्यूयार्क में एक साहब ने एक सौ डालर मेरे इस कोट पर भी लगा दिये थे।

यह सब देख कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अमरीकी दूकान-दार ग्राहक की जेब पर हाथ डालना अच्छी तरह जानता है। मैंने बोस्टन में एक दूकान पर मामूली सूती कपड़े की बिना अस्तर की

नेहरू जेकेट की दर तीस डॉलर देखी है । अमरीकी खरीददार की जेव में पैसा है । उसे कोई भी नयी चीज बतायें और वह उठा कर ले जायेगा । व्यापारी इस गुर को अच्छी तरह जानता है । वह विशेषज्ञों और डिजाइनरों को भारी भरकम रकम देता है । नये नये डिजाइन निकलवाता है, विशेषज्ञों के नाम के सहारे हजारों डॉलर रोजाना विज्ञापनों पर खर्च करता है और एक के दो वसूल कर लेता है । वह यों ही दूकान खोलकर नहीं बैठ जाता । वह ग्राहक को घर से निकाल कर वाहर ले आता है ।

इधर वीटलों और हिप्पियों ने योग और ध्यान की धुन लगादी और गुरु महाराज का नाम चल पड़ा । व्यापारी ने गुरु को भी पकड़ा और ध्यान को भी । नेहरू जेकेट के साथ उसे अपने विज्ञापनों में ऐसा फिट किया कि क्या कहूं । एक नमूना देखिये ' सैकड़ों लोग गुरु-दीक्षा ले रहे हैं (guruing) ! आप क्या कर रहे हैं ? नेहरू जेकेट पहिन कर ध्यान करिये । ' और चल पड़ी काली जेकेट । इसे कुछ लोग मेडिटेशन (ध्यान) जेकेट भी कहते हैं । कारोवार यहीं खत्म नहीं हुआ है ।

अभी रवीशंकर और अलीअकवर खां बाकी हैं । उनका भी यहां काफी सम्मान है । आजकल जव ये लोग न्यूयार्क , शिकागो , लॉस एंजिल्स आदि शहरों में आते हैं तो लोगों को टिकट नहीं मिलते । अव जरा देखिये नेहरू जेकेट के साथ भारतीय संगीत किस तरह फूटता है । मैंने एक विज्ञापन देखा जिसमें लिखा हुआ था—'द रागा स्प्रिट–(शुद्ध राग तत्व)' । मानते हैं आप अमरीकी व्यापारी का कमाल । यह कोई छोटा-मोटा कारोवार भी नहीं है । वड़े पैमाने पर लाखों डॉलरों की लागत पर होता है । संगठित रूप में होता है । कई शहरों में मैंने भारतियों की दूकानें भी लगी हुई देखी हैं , लेकिन ये दूकानें उन लोगों ने लगा रखी हैं, जो यहां नौकरियां करते हैं और सपरिवार रहते हैं । अपनी वचीखुची पूंजी से या जोड़ तोड़कर माल मंगा लेते हैं और जो कुछ मिलता है कमा खाते हैं । भारतीय वस्तुओं की

खपत के लिये यहां इतनी गुंजाइश है कि मैं आश्चर्य ही करता हूं। इस ओर भारत सरकार ने कोई योजनावद्ध प्रयत्न क्यों नहीं किया ? भारत का व्यापारी भी इस ओर से क्यों उदासीन है ? मुझे यह देख कर वरावर अफसोस ही होता है।

भारतीय नाम की चीज में यहां आजकल सवसे ज्यादा प्रचार योग का है। सारे देश में योग का वातावरण है। मुझे जितने अमरीकी स्त्री-पुरुष मिले, उन्होंने किसी न किसी रूप में योग की चर्चा जरूर की है। कोई उसे ध्यान के रूप में, कोई दर्शन के रूप में और कोई उसे व्यायाम के रूप में जानने लगा है। महर्षि महेश का नाम एयर इंडिया के महाराजा या भू. पू. महाराजाओं की तरह 'गुरु महाराजा' के नाम से जाना जाता है। टेलीविजन पर भी इसका प्रचार होता है। योग का प्रचार यहां वड़ी तेजी से हो रहा है और उसके कई लाभ भारत को मिलते हैं, लेकिन भारत को 'प्रगतिशीलता' ने इस वीच यहां बड़ा संशय पैदा कर दिया है।

भारत में महर्षि महेश के आश्रम को लेकर जव तथाकथित प्रगतिशील लोग सी. आई. ए. का शोर करने लगे, तो यहां भी उसका असर पड़ा है। कुछ लोगों ने मुझसे भी प्रश्न पूछे। जव सोवियत रूस के कुछ लोग ऋषिकेश आश्रम में पहुंचे तो यह शोरगुल वन्द हुआ और फिर वातावरण कुछ सुधरने लगा। मैं योग के वारे में कुछ कहने का अधिकारी नहीं हूं। लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य में पातञ्जलि के योगदर्शन का सार जरूर एक बार पढ़ा है, लेकिन अपने जीवन में कभी योग से वास्ता नहीं रहा। पातञ्जलि की भी परिभाषा मात्र याद रह गई है जो मैंने यहां एकाध को सुना भी दी। 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।' मेरे कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि योग का अच्छा प्रचार होने पर कुछ अन्य दर्शनों का तथा शास्त्रों का भी प्रचार यहां संभव था और यह भी संभव था कि अमरीकी लोग भारतीय जीवन पद्धति एवं जीवन दर्शन में रुचि लेते। धीरे धीरे वे हमारी समाज व्यवस्था की रचना को समझने

लगते, परिवार पद्धति को जानते। इतिहास में भी इसी तरह रुचि पैदा की जा सकती थी और वे जान पाते कि इतनी पुरानी भारतीय समाज व्यवस्था किन आधारभूत मूल्यों पर टिकी हुई है।

मैं जब लोगों से यहां कहता हूं कि जाति प्रथा का संबंध धर्म से नहीं है और इसका उद्गम अर्थ-व्यवस्था है — जब कहता हूं कि धर्म की हमारी परिभाषा ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों की परिभाषा से अलग है, तो लोगों को आश्चर्य होता है। ये लोग इतना ही जानते हैं कि हिन्दू ऐसी एक जाति है जो गाय नहीं खाती। मुझे न्यू आर्लियन्स की वह सधवा लड़की याद आई जो हरे कृष्ण नाम जपती थी और ध्यान लगाने के लिए भारत जाने की साध रखती थी। वह अगर अमरीका में ही योग को जानना चाहे तो यहां कौन है योग का अधिकारी, जो उसे यह विद्या या दर्शन समझाए। यहां कोई नहीं है, इसीलिये यहां योग के नाम पर कुछ भी कहा जा सकता है। महर्षि महेश को भी उसने तो दूर से खड़े होकर कारों में जाते हुए ही देखा था। वह धन्य हो गई थी। अब भारत जाने को उत्सुक है।

अमरीकी जनसाधारण भारत के बारे में करीब करीब कुछ नहीं जानता। जानकारी देना हमारा काम है। निश्चय ही केवल सरकार का यह काम नहीं है। सरकार का काम अवसर देना है किन्तु मुझे यह देख कर सचमुच हैरानी होती है कि हम किसी भी चीज पर शक करना फौरन शुरू कर देते हैं। महर्षि महेश वाले मामले में यही हुआ। मुझे मालूम नहीं कि महर्षि महेश क्या हैं और वे क्या सिखाते हैं। मैंने यहां योग और ध्यान के नाम पर कई भ्रष्ट चीजें भी देखी हैं, लेकिन इस भ्रष्टता का निवारण कौन करे? अगर एक चीज का खुल कर प्रचार हो तो उसके सत्यासत्य का निर्णय भी हो और अच्छी चीज के नाम पर बुरी चीजें नहीं भी पनपें।

मुझे सचमुच खेद हुआ यह देखकर कि योग एवं ध्यान के नाम पर यहां वाम मार्गियों के कुकर्मों का प्रचार भी हो रहा है, हालांकि वह अन्दरुनी दुनिया है। चन्द भटके हुये लोग ही उसमें लिप्त हैं

लेकिन इसलिये कि हमारे देशवासियों की ओर से कोई रुचि नहीं दिखाई जाती। सेन फ्रान्सिस्को की इस अन्दरुनी दुनिया में एक बार कुछ देर के लिये मैं किसी तरह घुस गया। 'वम वम वम महादेव' के साथ गांजे की फूंक देखी। मुझे पता लगा कि यह मन्त्र एक हिप्पी कलकत्ता के नीमतल्ला के एक साधु से सीख आया था। उसने यहां आकर अपने कुछ साथियों को वता दिया कि गांजे का दम लगाने पर ध्यान अच्छी तरह होता है अर्थात साधक परमपद पर पहुंच जाता है। मुझे याद आया शरतचन्द्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्र-हीन' का नायक सतीश और याद आया उसका 'भैरवी चक्र' वाला संग। सतीश कितना अच्छा नायक है और ये हिप्पी सचमुच कितने भोले भाले नेक दिल नौजवान हैं। मैं कह नहीं सकता इन लोगों की खूबियों को, लेकिन कितनी गिरावट की ओर। इनको कौन वताये कि गांजे का दम परमपद पर नहीं, रसातल में पहुंचाता है।

मैंने एक हिप्पी की कविता पढ़ी रेडइन्डियन की स्मृति में और गोरों की निन्दा में। उसने इन्डियन की स्तुति इसलिये की कि वह अपने ईश्वर को पृथ्वी के ऊपर नहीं मानता वल्कि नीचे मानता है। उसका इष्ट देव पृथ्वी के नीचे से दिव्य दृष्टि की अभिव्यक्ति करता है। उसने एक गोरे पादरी की निन्दा इसलिये की है कि पादरी को इण्डियन की पाताल पूजा अच्छी नहीं लगती। फलस्वरूप उसने इण्डियन को चर्च से वाहर निकाल दिया और स्वयं पादरी आकाश की ओर देख कर ईसा मसीह का ध्यान करने लगा।

इधर, मैंने होनोलूलू में दूसरा ही दृश्य देखा। यहां भी करीव करीव अन्दरुनी दुनिया थी वह, जहां मैं जा पहुंचा। एक नीची छत वाला वड़ा भारी कमरा। झुटपुट सा प्रकाश। अन्दर एक वड़े कमरे में कुछ विलियर्ड की मेजें। वाहर सभी मेजों पर वैठे लड़के लड़कियों के जमघट। सिगरेट का धुआं भरा हुआ। पास ही एक काउण्टर पर वीयर का फाउण्टेन, एक छोटा-मोटा पव था। मकान के वाहर एक साइन वोर्ड लगा था जिस पर लिखा था 'पावर हाउस।' रात

की ग्यारह बजे का वक्त होगा। यहां गर्मी के कारण मैं कोट उतार आया था, बुशशर्ट पहिने हुए। कमरे के भीतर भी गर्मी थी। एक प्लेटफार्म पर खड़े हुये कोई गिटार पर गाना भी गा रहा था। गाना-बजाना कम था और शोरगुल ज्यादा। शोरगुल, हंसी कहकहों का। मैं खाना खा पीकर आया था। एक ओर खड़ा हो गया। मुझे देख कर कुछ कानाफूसी हो रही थी। मैंने स्वाभाविक होकर गाने पर ताली बजाना शुरू किया। कानाफूसी शायद बन्द हुई और उनकी लीला शुरू हुई, मस्ती रंग लाने लगी। फिर भी खटका मिटा नहीं, एक ने मेरे पास आकर पूछा कि हम लोग कोई बुरा काम तो नहीं कर रहे हैं? मैं भी तैयार था। मैंने तुरन्त उलट कर पूछा—मुझसे क्यों पूछते हो? मैं भी तो आप ही लोगों के बीच बैठा हूं? वह चला गया, लेकिन फिर भी शायद तसल्ली नहीं हुई। एक लड़की फिर आई। पूछने लगी—क्या आपने यहां कोई खराब बात देखी? अब मैं जरा विचलित हुआ, सोचा किस मुसीबत में फंस गया। खैर, मैंने एक नाम बताया और वह खुश होकर मुझे पकड़ कर अपने टोले में ले आई। उन लोगों से बातचीत में मुझे मालूम पड़ा कि यह एक ही अवस्था के लोगों की केलि-क्रीड़ा का स्थान है। वहां छोटे और बड़े नहीं जाते। जो लड़की मुझे पकड़ कर ले गई थी उसे लोग 'जीजी' कह कर पुकारते थे और वह काफी मानी हुई मालूम पड़ती थी। एक और नाम सुना— 'जो' और दूसरा नाम सुना— 'जे'।

उन लोगों का कहना था कि इस समाज में उनके लिये इज्जत की जगह नहीं है क्योंकि 'हम लोग समाज के दकियानूसी कानून कायदों को नहीं मानते।' मैंने कहा— इस तरह की नयी पीढ़ी हमारे समाज में भी है, लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि आप लोग चाहते क्या हैं? 'कुछ नहीं चाहते, हम अपने मामलों में अपनी मर्जी के मुताबिक रहना चाहते हैं। इसमें किसी का क्या लेना देना।' मैंने पूछा—मुझसे क्यों डरते हो? जवाब मिला कि बड़े लोग हमारा स्वतन्त्र विचरण देखकर नाक भौं सिकोड़ते हैं, नुक्ताचीनी करते

हैं और कभी कभी दखलन्दाजी भी करते हैं। मैंने कहा– जब इतना डरते हो तो क्यों सिर उठाते हो ? जीजी ने जबाव दिया– हम अपने मां-बापों के दुश्मन तो नहीं हैं। हम उनकी इज्जत करते हैं, लेकिन हम किसी तरह की रोक टोक नहीं मानते। पढ़ते हैं, कमाते हैं और मौज करते हैं।

मैंने अपनी बात को थोड़े में ही समाप्त कर दिया। देश, काल और पात्र के अनुसार व्यवहार करने की नीति मैं नहीं भूलना चाहता। उन लोगों को आश्वासन दिया कि मैं उनको देखकर बहुत खुश हूं। मैं भारत से अमरीका का भ्रमण करने के लिये आया हूं। भारत का नाम लेना था कि सबके सब लोग हल्ला करके उछल पड़े। बड़े खुश हुये। मैं सोचने लगा कि न जाने भारत के बारे में इन लोगों की क्या कल्पना है। बातचीत करना मुझे उस समय बिल्कुल बेमाने लगा था। मैंने जीजी और जो से कहा कि अगर वे कुछ समय दें तो मैं कुछ बातचीत करना चाहता हूं। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने एक साथ कहा– नो फर्दर कनेक्शन्स (आगे कोई वास्ता नहीं)– हम लोग कोई प्रोग्राम तय करके नहीं चलते, हम स्वतन्त्र हैं।

मैं करीब एक घण्टे बैठकर चलने को हुआ। कई लड़के-लड़की अपना अपना बीयर मग हाथ में लेकर उठ खड़े हुये। एक एक हाथ से मुझे घेर लिया और करीब-करीब उठा ही लिया। दरवाजे तक धक्का-पेल रही होगी। मैं बीच में रुका और एक बार अच्छी तरह कमरे को देखा। सारी दीवारों पर नीचे से ऊपर तक बड़े-बड़े फोटो जड़े हुए, सीधे टेढ़े और कटे फटे भी। रंग बिरंगी लिखावट बीच बीच में। फोटो में बीटल, हिप्पी, महर्षि महेश, लिंकन, केनेडी, जान्सन और माओ त्से तुंग भी, जिसकी आंखों पर लाल रंग पोत दिया गया था। कहीं लिखा था–सावधान ! यहां जवानों की महफिल है। कहीं लिखा था—गर्भ निरोधक उपकरणों का इस्तेमाल कीजिये। कहीं कुछ और कहीं कुछ। मैं देखता देखता चलता बना। जीजी ने फिर पूछा - कोई बुरी बात तो नहीं ? मैंने कहा—नहीं, नहीं और गुड बाई। मेरे

पेट में एक साथ काफी बीयर उंडेल दी गई थी ।

इन छोकरे छोकरियों की स्वतन्त्रता और भय की मिश्रित भावना और साथ ही उस सहज अभिव्यक्ति पर रास्ते भर मुझे याद आया सूरदास का एक पद—मैया ! मैं नहीं माखन खायौ । बाहर की दुनिया को एक नजर देखा । उसमें इन लोगों की कोई हस्ती नहीं । सचमुच नहीं । वह तो खुद काफी बढ़ी हुई है !

—३० जून, १९६८

---

११ मई १९६८ को मैं बफेलो की एक स्वयं-सेविका मिसेज पोटर की कार में बैठ कर हवाई अड्डे पर गया था, जहां से शिकागो जाना था । मेरा सूटकेस पीछे की सीट पर रखा था जिसे बीच में एक बार मैंने खोला था । हवाई अड्डे पर सूटकेस उतार कर मैंने मिसेज पोटर से विदाई ली । तीन ही दिन बाद देखता क्या हूं कि शिकागो में मेरे पास डाक से एक पेकिट पहुंचता है । खोलने पर देखा कि उसमें आधे डॉलर का सिक्का था जो मेरे चाबी के गुच्छे से मिसेज पोटर की कार में गिर गया था । मिसेज पोटर ने एक स्वयं-सेविका की जिम्मेदारी निभाने के लिए उसे डाक से पार्सल करके मेरे पास भेजा था । आधे डॉलर के एक सिक्के पर उन्होंने अठारह सेण्ट डाक टिकट भी लगाये और डाक खाने तक जाने का समय और पेट्रोल भी खर्च किया ।

अमरीका में आधे डॉलर के उक्त सिक्के पर प्रेसीडेन्ट केनेडी का चेहरा अंकित है और वह दुर्लभ हो गया है । मेरा सिक्का चाबी के गुच्छे में एक कड़ी के साथ एक गोल अंगुठी में कसा हुआ था जो शायद निकल पड़ा था ।
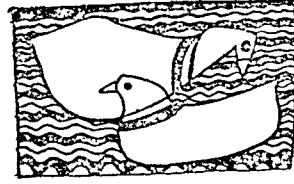
अखबार—टेलीविजन : अपना अपना राग

अगर आपका ख्याल हो कि मैं अमरीका से लौट कर आने के बाद अपने अखबार के चार चांद लगा दूंगा, तो आपको सचमुच निराशा होगी। मैं तो यह मानकर ही गया था कि मुझे वहां अखबारों से कुछ सीखने को मिलेगा या कोई नया गुर मिल जायेगा या कोई ऐसी जड़ी-बूंटी मिल जायेगी, जिससे हमारा अखबार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ जायेगा। मैं अमरीका में करीब बीस छोटे-बड़े अखबारी कार्यालयों में गया हूं। छोटे से छोटा अखबार मैंने देखा इलियोनाई राज्य के चिलीकोट कस्बे में एक साप्ताहिक—जो तीन हजार दो सौ प्रतियां छापता है और बड़े आकार के करीब छत्तीस पृष्ठों में होता है। एक दूसरा संस्करण भी सप्ताह के बीच ही निकलता है, जो दो हजार छः सौ प्रतियों का होता है। चिलीकोट की आबादी भी करीब तीन हजार पांच सौ है। यह अखबार भी लाईनो-मशीन पर कम्पोज होता है और आधुनिकतम ऑफसेट-मशीन पर छपता है। अपना फोटो एन्ग्रेविंग का यूनिट है और अपना मकान है। बड़े अखबारों में न्यूयार्क-

टाइम्स का जिक्र मैं पहिले एक वार विस्तार से कर ही चुका हूं।

लॉस एंजिल्स टाइम्स देखा तो आकार में वह उसका भी ताऊ निकला। रविवारीय संस्करण था चार सौ छिहत्तर पृष्ठों का—वारह खण्डों में और प्रति सप्ताह वह औसतन ११५० पृष्ठ निकालता है। ९६ रोटेरी मशीन के यूनिट लगे हुये हैं और चार आलीशान इमारतों में इसका प्रेस, दफ्तर, गोदाम, गैरेज वगैरह है। मशीनीकरण के उत्कर्ष के वावजूद चार हजार पूरे समय काम करने वाले कर्मचारी हैं और करीव सोलह हजार पार्ट टाइम लोग कार्य कर रहे हैं।

धाक में न्यूयार्य टाइम्स भारी पड़ता है। सवसे ज्यादा गम्भीर एवं विचार-प्रधान दैनिक मैंने क्रिश्चियन साइन्स मोनीटर (वोस्टन) देखा जो औसतन सोलह या वीस पृष्ठों में निकलता है। रविवार को छोड़ कर यहां सभी छोटे वड़े दैनिक अखबार एक ही भाव विकते हैं। दस सेन्ट। जिस तरह टमाटर और सेव का रस एक ही भाव विकता है, तीस सेन्ट में एक किलो। हर अखबार की विक्री के दायरे वने हुए हैं, जिनके वाहर उनकी पहुंच नहीं होती, क्योंकि वहुत जोरों की होड़ है। हर गांव का अलग ठाकर है। हर गांव के अपने खेतरपाल हैं।

रोटेरी और ऑफसेट, टेलीटाइप और टेलीफोटो से नीचे कोई वात नहीं करता। पुरानी मशीनें भी हैं। लेकिन वेकार पड़ी हैं। कई जगह दो तीन अखवार मिलकर एक नया प्रेस खरीद लाये हैं और एक साथ छप रहे हैं, साप्ताहिक ही नहीं, दैनिक भी। नाक्सविल में दो दैनिक करीव ३ लाख विकते हैं और एक जगह छपते हैं। दैनिकों में मैंने सवसे छोटा अखवार इंडियाना यूनिवर्सिटी, व्लूमिंगटन में देखा, जिसको यूनिवर्सिटी का पत्रकारिता विभाग निकालता है। यही कोई २० पृष्ठ का। एकदम व्यापारिक आधार पर चलता है। विद्यार्थी ही निकालते हैं और घाटा उनका विभाग उठाता है, जो १४ हजार डॉलर से ज्यादा एक साल में नहीं आता। वेतन के नाम पर नाम-मात्र का जेव खर्च ही देना पड़ता है। संपादक महोदय को एक घंटे के तीन डॉलर मिलते हैं। विज्ञापन और विक्री दोनों से अच्छी आम-

दनी हो जाती है ।

अमरीकी अर्थतन्त्र में अखवारों की भी वही स्थिति है, जो दूसरे उद्योगों की है । टेकनीक काफी वढ़ गया है । नई से नई मशीनें आ रही हैं । कम्पोज किये हुये टाईप के जस्टीफिकेशन में जल्दी करने और दुरुस्ती लाने के लिये कम्प्यूटर महाशय आ पहुंचे हैं । लॉस-एंजिल्स टाइम्स के प्रवन्ध संपादक हेंगट हावर्ड को जव मैंने वताया कि हमारे अखवार को हाथों से काटने के बाद समेट कर गिना जाता है, तो उनके मुंह से छूटते ही निकला 'हैं'—और उनका मुंह फटा का फटा रह गया । मैंने वात को जरा नया मोड़ दिया और तुरन्त ही हंसते हुए कहा कि आपके और हमारे वीच कोई ज्यादा फर्क नहीं है । मुझे भी यहां कम्पोजिंग में कम्प्यूटर देख कर विस्मय हुआ था । भेद सिर्फ मशीन के कारण है, विस्मय तो अभेद्य है । इतना सुनते ही वे ठहाका मार कर हंस पड़े और आंख का चश्मा उतार कर काफी देर हंसते ही रहे । हंसी रुकने पर उन्होंने कहा– 'तुमने एक वहुत ही अच्छी वात वहुत निराले ढंग से कही । इससे मेरे सिर का वोझ कुछ हलका हो गया । मैं एक वहुत ही पेचीदी गुत्थी में उलझा हुआ था ।' उन्होंने अपनी मेज के कागजों को उठा कर एक तरफ ट्रे में डाल दिये ।

इतनी-सी घटना से आपकी समझ में आ गया होगा कि मैं अमरीकी अखवारों से कुछ भी नहीं पा सकता हूं । जहां तक अखवारनवीसी का सवाल है उसमें अमरीका की मदद कोई ज्यादा काम आने वाली नहीं है । हमारी अपनी समस्यायें हैं, अपनी परिस्थितियां हैं, अपनी जानकारी है और अपने तरीके हैं । हम वहां से टेकनीक ही सीख सकते हैं जिसके अमल के लिये भी यदि अनुकूल परिस्थितियां हों तो । हमारे यहां से कई क्षेत्रों से कई अफसर और विशेषज्ञ यहां आते हैं, उनसे मैं भारत में भी मिला हूं और यहां भी । वे भी यही कहते हैं कि अमरीका के पास टेकनीक वढ़ा चढ़ा है । सवाल यह है कि हमारे लिये उसका उपयोग क्या ?

अव जरा अमरीकी अखवारों की आत्मा को टटोला जाय ।

पूर्णत: अर्थमूलक है । जिस तरह हमारे गांवों या शहरों का पुराना दूकानदार दूकान पर बैठने की जगह को महादेवजी की थड़ी या गद्दी मानता है और दूकान खोलकर बैठने के वक्त को राजा कर्ण का समय कहता है, ठीक उसी नजर से अमरीकी अखबार का प्रकाशक अपने व्यवसाय को देखता है । हमारा वनिया जिस तरह ग्राहक में शिवजी के ओढ़र स्वभाव या राजा कर्ण के दानी प्रतीक को देखता है उसी तरह अमरीकी अखवार की नजर सिर्फ ग्राहक और विज्ञापनदाता पर है । वह जॉन्सन की तरफ इसलिये देखेगा कि उसका ग्राहक जॉन्सन के वारे में कुछ जानना चाहता है । जॉन्सन को खुश करने के लिये अमरीकी अखवार फोटो नहीं छापता, वल्कि अपने कलेवर के आकर्षण के लिये या ग्राहक की रुचि के लिये । ग्राहक को उसकी रुचि के चालीस पृष्ठ देकर वह साठ पृष्ठ अपने विज्ञापनों के भी ग्राहक के सिर लाद देता है । विज्ञापन और समाचारों का यहां यही अनुपात है । इससे कम नहीं, ज्यादा ही विज्ञापन होते हैं । अपने काम के पृष्ठ रख कर ग्राहक पूरे अखवार को उठाकर फेंक भी देता है । काम के पृष्ठों में कुछ विज्ञापन भी जरूर होते हैं ।

अमरीकी अखवार की नीति के वारे में भी वात करनी पड़ी । पेचीदा सवाल था । नीति के मामले में ये लचीले होते हैं । समाचार पत्रों की श्रृंखलायें यहां काफी हैं । एलपासो हैराल्ड पोस्ट के सम्पादक ली ने मुझे वताया कि उनका अखवार सत्रह अखवारों की श्रृंखला की एक कड़ी है और हर कड़ी की अपनी अलग नीति है । १९६० में प्रेसीडेन्ट के चुनाव के समय नीति की उलझन ज्यादा वढ़ गई तो सम्पादकों की एक बैठक बुलाई गई और मतदान के द्वारा बहुमत से यह तय किया गया कि श्रृंखला केनेडी का समर्थन करेगी । साथ ही अपने क्षेत्र के मामले में हर इकाई का सम्पादक स्वतन्त्र भी होगा । एलपासो के मेयर के एक चुनाव में पोस्ट का प्रकाशक रिपब्लिकन उम्मीदवार के पक्ष में था और सम्पादक ने डेमोक्रेट का समर्थन किया था । डेमोक्रेट अन्ततः विजयी हुआ । ली ने वताया कि ३५ सालों के उनके

काम में कभी कोई हस्तक्षेप या दवाव नहीं आया। इसी तरह समाचार पत्र के आन्तरिक मामलों में भी स्वतन्त्रता है। रिपोर्टर, सह-सम्पादक, समाचार संपादक, विशेष संवाददाता स्वयं अपने विवेक और चयन के अनुसार समाचारों का संकलन एवं संपादन करते हैं। उन्हें संपादक से पूछना नहीं पड़ता। काम काज का वंटवारा रोज की वैठकों में हो जाता है। मूल नीति का निर्माण ग्राहक अर्थात पाठक की रुचि के आधार पर होता है। पाठक क्या अपेक्षा या आवश्यकता अनुभव करता है, वही मूल मन्त्र है।

मैंने भारत और अमरीका के मामले में जगह जगह वात की और हर अखवार के पत्रकार वन्धुओं से पूछताछ की। कुल मिलाकर मैंने यही देखा कि अखबार वाले तो भारत के बारे में कुछ जानते हैं लेकिन अखबारों में भारत का कहीं नाम ही नहीं आता। तीन चार वड़े दैनिक एवं साप्ताहिकों के अपने विशेष संवाददाता भारत में रहते हैं। उनमें कुछ जरूर छप जाता है और वह भी बहुत ही कम। न्यूयार्क टाइम्स के सहायक प्रवन्ध संपादक व दक्षिण एशिया डेस्क के इन्चार्ज से मैंने जब यह बात कही तो उन्होंने वताया कि वात विल्कुल उल्टी है। 'यहां लोग मुझसे यह कहते हैं कि मैं भारत के साथ पक्षपात करता हूं।' भारत में हमारा सीनियर मेम्वर नियुक्त होता है जो यहां आकर उसी डेस्क का इन्चार्ज वनता है।

'हमारे पास रोजाना विदेशों से कोई सौ संवाददाताओं की खबरें आती है। उसमें सवको कितनी जगह देनी है, यह भी देखना पड़ता है।' उन्होंने मुझे तेरह मई का न्यूयार्क टाइम्स का अंक वताया, जिसमें पूरे एक कालम में विदेश मन्त्री वलीराम भगत का वक्तव्य और समाचार छपा था, जो चीन-पाकिस्तान की सड़क सन्धि के वारे में था। उनका कहना था कि एक कालम जगह एक समाचार के लिये निकालना आसान काम नहीं है। फिर हमारे अपने देश के समाचार और पाठक भी तो हैं। वताइये हम क्या करें? हमारे पास रोजाना आमतौर पर वीस पृष्ठ भी नहीं होते समाचारों के लिये। कितने

पृष्ठ विज्ञापनों के होंगे, यह तय करना विज्ञापन विभाग का काम होता है और कुल कितने पृष्ठ होंगे यह तय करना प्रकाशक या उसके प्रतिनिधि का। मैं उनकी बात को समझा और यह भी मानता हूं कि अपनी ओर से ये लोग हजारों डॉलर खर्च करके संवाददाता को भारत में भेजते हैं, किन्तु मुझे यह बराबर महसूस होता है कि भारत के बारे में अमरीका में जितनी जानकारी होनी चाहिये, उसकी शतांश भी नहीं है। दो चार बड़े अखबारों में दो चार कालम यदा-कदा छपते रहने से कुछ नहीं बन सकता।

यहां तो हजारों अखबार हैं और सभी अपने अपने क्षेत्र में लोकप्रिय हैं। समाचार न सही, उनमें विशेष लेख, फीचर वगैरह भी छपते रहें तो बहुत उपयोगी होगा। यह भी सही है कि अमरीकी सरकार इस मामले में कोई मदद नहीं कर सकती। अखबार यहां राजनीतिक प्रभाव से सर्वथा मुक्त है। उनसे व्यवहार करने का काम तो भारत सरकार को अपने तौर पर अपने दूतावास के माध्यम से ही करना होगा। अमरीकी जनमत को भारत के बारे में जानकारी देना या उसे अनुकूल बनाने का काम अमरीकी सरकार का नहीं हो सकता। अमरीकी सरकार की नीति पर भी अगर कोई प्रभाव डालना हो तो वह जनमत का ही हो सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि जनमत का प्रभाव यहां बहुत काम करता है। वियतनाम शान्ति वार्ता या युद्ध-बन्दी के पीछे सिर्फ एक दो सीनेटरों का ही दबाव नहीं है, जनमत का दबाव है और अखबारों ने उसे अच्छी तरह प्रगट किया है। दबाव आज भी है और निरंतर बढ़ रहा है।

समाचारों की ही तरह जनमत की अभिव्यक्ति का एक बड़ा माध्यम यहां टेलीविजन है। वह भी प्राइवेट हाथों में है और पूर्णतः स्वतन्त्र है। टेलीविजन पर जब यहां प्रेसीडेण्ट या अन्य बड़े नेताओं की खिल्ली उड़ाई जाती है, तो वह देखने काबिल होती है। हमारे यहां बड़े नेताओं के प्रति आम तौर पर वैष्णवी भाषा या जैन भाषा का प्रयोग होता है, लेकिन यहां किसी नेता को टेलीविजन या अखबार में स्टूपिड

या फुलिश कह देना तो कोई माने ही नहीं रखता। आलोचना या हंसी मसखरी इतनी खुल कर होती है कि सुनने वाले सुनते ही दंग रह जाते हैं।

टेलीविजन पर भी ज्यादा समय विज्ञापनों को दिया जाता है, लेकिन विज्ञापनों की कमाई में से जो खर्च विशेष कार्यक्रमों के लिए किया जाता है, उसका हम लोग अनुमान नहीं लगा सकते। हॉली-वुड के कई हास्य अभिनेता आज टेलीविजन पर छाये रहते हैं। गम्भीर विचारमूलक एवं शिक्षाप्रद कार्यक्रम भी एक से एक बढ़ कर होते रहते हैं वरना ग्राहक संख्या कम हो जाने का खतरा है। दर्शकों का निरन्तर सर्वेक्षण होता रहता है। होड़ बहुत जोर की है। मैंने एक कार्यक्रम देखा है जिसमें माइक्रोस्कोप के जरिये सृष्टि की सूक्ष्म से सूक्ष्म चीज को देखने और वैज्ञानिक निष्कर्षों को निकालने में इस वैज्ञानिक उपकरण का उपयोग बताया गया था। कार्यक्रम को तैयार करने में तीन साल और दो लाख डॉलर खर्च हुए थे। इस कार्यक्रम को देखने के बाद जैन धर्म की अहिंसा का भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता। आत्मा की व्यापक सत्ता को भी प्रत्यक्ष समझा जा सकता है। आप देखेंगे कि आपके पैर के नीचे की रज का एक कण भी जीवाणु-रहित नहीं है और एक एक रोम में जीवाणु भरे पड़े हैं। कोई बात नहीं—दो लाख डॉलर खर्च होगये। इसी तरह वसूल भी हो जायेंगे। रॉबर्ट केनेडी को अपने एक घण्टे के राष्ट्रीय कार्यक्रम हेतु एक लाख डॉलर देने पड़े थे।

यहां इसी पैमाने पर बात होती है [लॉस वेगस के एक होटल को अपना न्यून साइन तैयार करवाने में दस लाख डॉलर खर्च करने पड़े थे। इस साइन बोर्ड पर एक सौ पचास डॉलर रोजाना की बिजली खर्च होती है। मैं इसी होटल में ठहरा था]— टेलीविजन यहां सब तरह की सूचनाओं का माध्यम है। अगर शिकागो में भयंकर बर्फीला तूफान आ गया है या सड़कों पर बर्फ जम गई है तो आप टेलीविजन पर बैठे देखिये। पुलिस और फायर सर्विस वाले आपको सूचना देते

रहेंगे और वे जब कह दें तब निकल पड़िये। वे आपको आकर सुर-क्षित स्थानों पर ले भी जायेंगे। इसी तरह की आपतकालीन स्थितियां यहां आती ही रहती हैं। रॉबर्ट केनेडी के गोली लगने से लेकर दफ-नाने तक की सारी प्रक्रिया मैंने टेलीविजन पर ही देखी थी।

समाचारों के अलावा मौसम, शेयर बाजार, विज्ञापनों की घोषणायें; स्कूलों की, विश्वविद्यालयों की, अदालतों की, रोजमर्रा की सूचनायें और घोषणायें टेलीविजन पर घर बैठे और हाथों हाथ मिल जाती हैं। टेलीविजन भी अमरीकी जीवन में मोटर और अखबार की तरह अनिवार्य हो गया है। अलबत्ता इसने अखबारों के विस्तार पर अवश्य कुछ रोक लगा दी है। विस्तार से जानकारी चाहने वाले या विचारों के पढ़ने के लिए लोग अखबार भी पढ़ते हैं। दोनों का अपना अलग अलग महत्व है।

— १ जुलाई, १६६८
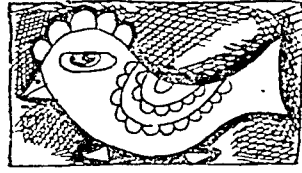
ब्रेन ड्रेन : अमरीका अमरीका बन गया

पैंतालीस दिन के सही माने में तूफानी दौरे या गर्दिश के वाद सोलह जून को मैंने अमरीका से विदाई लेली। जितना मुझसे वन पड़ा देखा सुना और पढ़ा। समझ में जितना आया वह मैं पाठकों के सामने रखता गया हूं। वहुत कुछ सामग्री मेरे पास है अर्थात् मेरे मानस-पटल पर कई चित्र हैं जो अभी तक ताजा हैं, लेकिन कागज पर नहीं उतर सके हैं। समय ही नहीं मिला। मैं घूमने फिरने के साथ साथ औसत तीन घण्टे रोज लिखता रहा हूं—चिट्ठियां और लेख। यहां रहते हुए मैंने कोई १५० चिट्ठियां और करीव तीस लेख लिखे हैं। ठीक ठीक गिनती याद नहीं। अभी पन्द्रह लेख और लिखने लायक सामग्री मेरे दिमाग में है। न जाने उनका क्या होगा, मैं नहीं जानता। मैं पश्चिम छोड़ कर एक दिन सुदूर पूर्व जापान में आ गया हूं। एक ही सूरज में दूसरी तारीख वदल गई। तीन वजे दिन को होनोलूलू से उड़ा और करीव छह वजे शाम को जापान पहुंचा तो सोलह के वजाय सत्रह जून हो गया। आठ घण्टे

की लगातार हवाई यात्रा थी । होनोलूलू में जब तीन बजे थे, जापान में सुबह के सात बजे होंगे और जब मैं यहां हवाई अड्डे पर उतरा तो होनोलूलू की घड़ी ग्यारह बजा रही थी । मैंने उसे जापान के समय पर मिला ली । तारीख भी यहां १७ जून थी ।

दो मई को वाशिंगटन पहुंचने के बाद मैंने अमरीका देखना शुरू किया । समझ लीजिए वैसे ही जैसे कि हमारे विकास विभाग की योजना के अन्तर्गत गांव के किसान भारत-दर्शन करते थे और इसी बहाने चार धाम कर आते थे । मेरी चार धाम यात्रा अमरीका में शुरू हुई । कुल मिला कर अमरीका मेरे लिए अन्धे के हाथी की तरह निकला । अगर पूंछ हाथ में आई तो मैंने समझा कि अमरीका रस्सी की तरह होगा और पैर हाथ में आया तो वह मुझे खम्भे की तरह लगने लगा । मेरे पास आंख जरूर थी, लेकिन वह अमरीकी जीवन के लिए अनभ्यस्त और अनजान थी और एक जगह टिकने से पहिले दूसरी जगह उसके सामने आ जाती थी । इसलिए यह देश फिल्म की तरह मेरी आंखों के सामने घूमता रहा । यहां मैं घूम घूम कर इसी हाथी को एकाग्रता से देखता रहा ।

सोलह जून को जब मैं विदा हुआ तब तक मेरी समझ में इतना भर आया कि अमरीका रस्सी या खम्भे जैसा तो नहीं लेकिन कोई बड़े डीलडौल वाला प्राणी है, जिसके भीतर जीवन की काफी गहरी हलचल और उथल-पुथल मची हुई है ।

मैंने अमरीका के भूगोल को प्रत्यक्ष देखा । अलास्का के बर्फीले प्रदेश को छोड़ कर पूर्व, पश्चिमी, मध्य, दक्षिण और उत्तर की झांकी देखी । दक्षिण और पश्चिम का थार जैसा मरुस्थल, लेकिन आधुनिक बस्तियों से आबाद; गंगा से बड़ी बड़ी नदियां, लेकिन सब की सब हर छोटे-बड़े शहर को बिजली देने वाली । न्याग्रा के प्रपात, उत्तर-पूर्व के हरे भरे प्रदेश, मध्य के मैदान, पश्चिम के पर्वतीय स्थल, ग्रेण्ड केनयन और अमरीका को दोनों छोरों से घेरे हुए अतलांतिक और प्रशान्त महासागर । भौगोलिक दृष्टि से शायद दुनिया का

सवसे ज्यादा भाग्यशाली देश है। रॉकेटों के विकास के पहले तो इस देश की ओर झांकना भी संभव नहीं था।

अमरीकी इतिहास को मैंने स्मारकों, संग्रहालयों एवं वस्तियों में देखा है। इतिहास ही कितना-सा है, लेकिन जो कुछ भी है उसे इतना संजोकर रखा हुआ है जैसे कि देश में वही सबसे ज्यादा मूल्यवान वस्तु है। यहां तक कि डिस्ने लेण्ड जैसी विनोद वाटिका में भी एक छोटा-सा थियेटर है जहां लिंकन के जीवन की कुछ झांकियां रजतपट पर बड़े ही प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी ढंग से दिखाई जाती हैं। विलियम्स वर्ग के पूरे कस्बे को ही अठारहवीं सदी में रखा जा रहा है ओर इसी तरह न्यू आर्लियन्स में फ्रेन्च क्वार्टर को। दुनिया में किसी कोने में कोई ऐतिहासिक महत्व की चीज मिल जाय, यहां घसीट कर ले आते हैं।

अभी अभी लन्दन का पुल खरीद लिया गया है, जिसे उठाकर लाने का आयोजन चल रहा है। यहां एरिजोना के मरु प्रदेश के एक शहर में उसे रखने का भी वन्दोवस्त हो रहा है। एक व्यापारी ने खरीदा है। यहां आकर वह दर्शनीय वस्तु वन जायेगा। उसके इतिहास पर एक फ़िल्म वन जायेगी, टेपरेकॉर्डरों में कमेन्टरी भर दी जायेगी और वह सजीव हो जायेगा—इतिहास, लन्दन के पुल का!

अमरीका का अर्थतन्त्र अर्थात् दैनिक जीवन देखा। इस अर्थतन्त्र की सफलता का एक ही प्रमाण काफी है कि अमरीका का हर औसत परिवार जीवन की वुनियादी आवश्यकताओं से मुक्त है और आधुनिकतम सुविधाओं से सम्पन्न है। वीस करोड़ की आवादी में करीव नौ करोड़ मोटर कारें सड़क पर हैं, जिसका वितरण हर परिवार में एक के हिसाव से माना जा सकता है। वाशिंगटन में जिन गरीवों ने मोर्चा लगा रखा है, उनके पास सैंतालीस प्रतिशत घरों में मोटरें हैं। मोटर यहां समृद्धि की निशानी नहीं रह गई है, वल्कि एक वहुत ही जरूरी चीज वन गई है। टेलीविजन, टेलीफोन, रेफ्रीजिरेटर, कुकिंग रेंज, वाशिंग मशीन, एयर-कन्डीशन या कूलर,

सेन्ट्रल हीटर आदि यहां हर घर में है । रेडियो यहां से निर्वासित हो चुका है या म्यूजियम में रख दिया गया है । खाने पीने की चीजों का यहां एक मापदण्ड वन गया है । संगठित उत्पादन एवं वितरण के कारण अमीर और गरीव के खाने की वस्तुओं में वेराइटी का ही फर्क रह गया है, क्वेलिटी का नहीं । कपड़ा यहां हैसियत की निशानी ही नहीं है । जेवर पहिनने की [हमारे देश के मापदन्ड से] यहां प्रथा ही नहीं है । फिर भी मैंने देखा कि मध्य वर्ग की हर स्त्री के हाथ में एक हीरे की अंगूठी जरूर होगी ।

धनवान परिवारों की महिलाएं पार्टियों में या सामाजिक अवसरों पर कान, गले और हाथों में भी जड़ाऊ जेवर पहिनती हैं । सोना रखना यहां कानूनी जुर्म है । नकली या वनावटी सोना और जवाहिरातों की यहां धूम हैं । फिर भी तीन हजार डॉलर की आमदनी से नीचे के जो लोग यहां रह गये हैं, अमरीका के लिए सिर दर्द हैं, जिसे मिटाने के लिए न जाने कितना कोहराम हो रहा है । सारा अमरीका इस समस्या पर विचार करने के लिए मौखिक मन्थन में लगा हुआ है । ये गरीव उसकी समृद्धि या शक्ति के लिए खतरा नहीं है, विल्कुल नहीं—लेकिन इज्जत पर वट्टे की फिक्र ज्यादा है । यह फिक्र भी क्यों रहे, यही सवाल है ।

अमरीकी अर्थतंत्र अभी जवान है । रोज नये नये अनुसन्धान हो रहे हैं, नये नये उत्पादन अथवा उपकरण वाजार में आ रहे हैं । राष्ट्रीय कृषि उत्पादन की वृद्धि पर जोर नहीं है । गेहूं का उत्पादन इस साल पन्द्रह प्रतिशत कम कर दिया गया है, क्योंकि भारत, पाकिस्तान, तुर्की से अच्छी फसल के सुखद समाचार आ रहे हैं । इन देशों की ओर से मांग का दवाव नहीं है । अमरीकी किसान की पूर्ति कृषि विभाग द्वारा कर दी जायेगी । मैं यह मानता था कि भारत को गेहूं भेजने में अमरीका का निहित स्वार्थ है और वह अपनी पूछ करवाने के लिए समय समय पर तरह तरह की शर्तें रखता है । मैंने इस मुद्दे को यहां कई तरह से समझने की कोशिश की है, वोल कर भी और चुप रह

कर भी। मैंने वाल स्ट्रीट जर्नल का एक संपादकीय पढ़ा, जिसमें लिखा गया था कि मेक्सिको में रॉकफेलर फाउण्डेशन को गेहूं की गवेषणा में काफी सफलता मिली और भारत, पाकिस्तान व तुर्की में भी वह किस्म बड़ी लोक प्रिय हुई, तो फाउण्डेशन ने अब अपने गेहूं-गवेषणा कार्यक्रम का विस्तार करने की घोषणा कर दी है।

मैंने कहीं से कबाड़ कर 'मेरिल लिच पियर्स फेनर एण्ड स्मिथ' कम्पनी के अन्न विश्लेषण विशेषज्ञ की रिपोर्ट पढ़ी, जिसमें कहा गया है कि भारत और पाकिस्तान की मांग कम होने से गेहूं की कीमतें अमरीका में गिरेंगी। अतः सरकार को गेहूं का अलॉटमेन्ट कम कर देना चाहिये। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत और पाकिस्तान में पिछले चार सालों में बीस करोड़ बुशल गेहूं हर साल भेजा गया है, जो अमरीका के कुल गेहूं निर्यात व आन्तरिक खपत का सातवां हिस्सा है। मैंने शिकागो की मण्डी में पता लगाया कि गेहूं का भाव एक डॉलर पिचत्तर सेन्ट प्रति बुशल से घटकर एक डॉलर चालीस सेन्ट रह गया है। मैंने वाशिंगटन के कृषि विभाग के सूत्रों से यह भी जानकारी प्राप्त की कि गेहूं का अलॉटमेन्ट कम करने पर जो जमीन पड़ी रह जायेगी, उसे भूमि संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत ले लिया जायेगा और किसान की क्षति-पूर्ति कर दी जायेगी। अमरीकी अर्थ-व्यवस्था में शायद कृषि या किसान का अब केवल राजनीतिक महत्व रह गया है, मैंने ऐसा ही अनुभव किया। वह कृषि कार्य को बीते युग के सभ्यता की निशानी मानने लगे हैं।

१९६७ में भूमि संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत अनाज, गन्ने व सब्जी के जिन कार्यों की क्षति-पूर्ति के लिये घर बैठे रकम दी गई थी, उनमें से चोटी के पांच नाम मैं यहां गिना देता हूं :

१. रान्यो सेन एन्टीनियो, गिलावेन्ड, एरिजोना :
   २८,६३,६६८ डॉलर।
२. साउथ लेक फार्म्स, फाइव प्याइंट्स, केलीफोर्निया :
   १३,०४,०९३ डॉलर।

३. जे० जी० वॉस्वेल कम्पनी, लिच फील्डपार्क :
   ४,०६,१८१ डॉलर ।

४. यू. एस. शूगर कॉर्पोरेशन, विचन्स्टन, फ्लोरिडा :
   १२,८५,६८७ डालर ।

५. हवाई कमर्शियल एण्ड शूगर कम्पनी, होनोलूलू :
   १,३५,३३,७७० डॉलर ।

औद्योगिक क्षेत्र में तो कहना ही क्या ! उसके किसी दावे में शक नहीं किया जा सकता। ऐसे वहुत ही कम काम रह गये हैं, जो मशीन नहीं करती। हाथ का काम यहां इतना मंहगा हो गया है कि लोग दुआ करते हैं—किसी से काम न लेना पड़ जाय । वाशिंगटन में अमरीकी सूचना विभाग के एक बड़े अफसर ने मुझे घर पर खाने के लिये बुलाया तो हंसी ही हंसी में यह भी कहा कि खाने के वदले मुझे उन्हें कुछ मदद देनी होगी, मकान की दीवारों पर रंग करने में। वे भारत जा रहे थे और मकान को किराये पर उठाना चाहते थे, इसलिये रात को रंग करते थे। ब्रुश और डिब्बा लिया और जुट गये पोता लगाने में। उन्होंने मुझे वताया कि अगर मजदूर लगावें, तो उस छोटे से दो वेड-रूम वाले मकान की पुताई पर कम से कम पांच सौ डॉलर खर्च होंगे, भारत के हिसाव से करीब पांच हजार रुपये। २०० वर्ग गज जमीन पर बना हुआ इकमंजिला मकान था वह। मजदूर भी मशीन से ही रंग करते हैं, फिर भी मजदूरी करीव एक घण्टे की दस वारह डॉलर ।

अमरीका में सवसे ज्यादा दिलचस्प चीज मैंने देखी यहां का इन्सान। वह मुझे हर जगह अपने ही जैसा लगा। घर वालों की तरह नजदीक, आत्मीय, मेहनती, सरल स्वभाव, हंसमुख और वेशक खुशहाल। मैं वचपन में देखा करता था, अंग्रेज लोगों का व्यवहार। हम लोगों से वे अपने आपको ऊंची जात का मानते थे। रेल के डिव्वे में उनके साथ भारतवासी सफर नहीं कर सकते थे। भारतवासी को काला आदमी कह कर वे ऊंची जात वाले आदमी

दुत्कार देते थे। अंग्रेज से वात करने की हिम्मत वालों को हम वड़ा आदमी समझते थे। राय बहादुर, सर और राजा बहादुर इसी तरह के वड़े आदमी थे। वे अंग्रेज आज अमरीका की मुट्ठी में हैं। फिर भी अमरीकी आदमी में मैंने किसी तरह की कोई हवा नहीं देखी।

वह औद्योगिक एवं वैज्ञानिक सभ्यता में पैदा और पला हुआ नया ही इन्सान है। उसे यह अहसास ही नहीं है कि वह बड़ा या ऊंचा है। करोड़पति या अरवपति का लड़का भी यहां वाप की कमाई के पीछे करोड़पति होने का दावा नहीं कर सकता। उसे खुद ही कमाना पड़ेगा। यह दूसरी बात है कि वह बाप के काबिल हो जाय या बाप के मरने के वाद करोड़पति घर का मालिक बन जाय। अमरीका का आदमी अपने आप बना हुआ (सेल्फ मेड) आदमी है। समाज उसकी मदद पर हर जगह है। फिर भी उसे अपने ही पांवों पर खड़ा होना पड़ता है।

जिस केनेडी परिवार की वात हम सुनते हैं, वेशक वह धनवान परिवार है, चोटी का तो नहीं, लेकिन दूसरी श्रेणी का। किंतु सभी केनेडी वन्धु अपना-अपना काम करते थे। सवसे वड़ा भाई जोसेफ केनेडी दूसरे युद्ध में नौ सेना विमान का चालक था और वहीं दुश्मन की गोली का शिकार हुआ था। अव सिर्फ एडवर्ड केनेडी (टेड) है। वह भी अपना काम करता है। मैंने रॉकीफेलर के लड़के के बारे में तो लिखा ही था कि वह न्यू-गायना की नदी में डूब गया था। वह भी अपनी कमाई खाता था। अमरीकी समाज के गठन का मूल यही व्यक्तित्वपूर्ण इकाई है।

अमरीका का नागरिक स्वभाव से ही मुक्त है; वह आपसे मुक्त कण्ठ से ही बात करेगा। सामंती सभ्यता की कत्रिमता या भेदबुद्धि औसत व्यक्ति में विल्कुल नहीं है। वह अपना लेन देन साफ रखेगा, एक पैसे के दो अधेले। दो टूक वात और अपने काम से काम। लेकिन दो टूक बात में ही आप पर आत्मीयता की छाप छोड़ जायेगा। वड़ा ही शिष्ट और विनम्र है। दूर देश वाले को वह जितना उच्छृं-

खल नजर आता है, पास आने पर उतना ही अनुशासित एवं भद्र लगता है। उसे झूठ वोलने या चालवाजी करने की आदत नहीं, इसलिए कई वार वह स्वयं वेवकूफ भी वन जाता है। आपको वेवकूफ वनाने की कोशिश वह नहीं करेगा। वह वेतकल्लुफ तो है, लेकिन वेअदव कभी नहीं हो सकता। यह उसका संस्कार है, उसकी संस्कृति है। उसके साथ डेढ़ महीने खुल कर रहने के वाद मेरी निगाह में उसकी इज्जत वढ़ी है और उसे ज्यादा नजदीक से समझने लगा हूं। वह सात समुद्र पार का अनजाना व्यक्ति नहीं लगता।

भौगोलिक वैविध्यता एवं रहन सहन की भिन्नताओं में अमरीका भारत से कम नहीं है लेकिन एक भाषा होने के कारण अमरीका के सव हिस्सों में काफी नजदीकी आ गई है, आदान प्रदान वहुत ज्यादा है। एक भाषा होने के कारण मुझे जो सुविधा यहां रहने और घूमने-फिरने में मिली, वह अन्यथा सम्भव नहीं थी। यह सुविधा मुझे अपने देश में भी सर्वत्र नहीं मिल सकती थी। १९५३ में रेलवे शताव्दी के टिकटों पर मैं दक्षिण घूमने निकल गया था। तुंगभद्रा के तट पर एक गांव में तो मुझे इतनी कठिनाई हुई कि चाय काफी तक मांगना मुश्किल हो गया। पन्द्रह सालों में भाषा के व्यवहार में कुछ फर्क जरूर आया है लेकिन अब वहां राजनीति ज्यादा घुस गई है। हो सकता है, मद्रास में कोई मुझसे हिन्दी में वोलना पसन्द न करे। मैं तो अंग्रेजी से भी काम चला लूंगा, लेकिन जो नहीं वोल सकते, उनकी दुर्गति हो सकती है।

अभी पिछले महीने मद्रास के मुख्य मंत्री अन्नादुराई केलीफोर्निया के वर्कले विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषियों के विरुद्ध काफी विष वमन कर गए हैं। न जाने भारत सरकार के पास उसके तथाकथित सूत्रों ने यह वात पहुंचाई भी है या नहीं। न जाने सरकार को मालूम भी है या नहीं। मैं तो यहां घूमता ही फिरता था और जो जी में आया पूछता ही रहता था। यह वात भी इसी तरह मालूम हुई।

अमरीका घूमते घूमते एक सवाल मेरे दिमाग में आया और ज्यादा

जोर से चक्कर भी काटता रहा कि आखिर अमरीका इतना आगे कैसे वढ़ गया ? मैं इतिहासकार या समाज-शास्त्री या अर्थ-शास्त्री नहीं हूं, लेकिन मुझे यह लगा कि इस देश को कुछ भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वरदान मिले हैं, जो दूसरे देशों को नहीं मिले । मैं अपनी वात का जरा खुलासा करना चाहूंगा । अमरीका की खोज सवसे पहिले १४९२ में कोलम्वस ने की । वह भारत को खोजने निकला था और अमरीका पहुंच गया । स्पेनिश लोग यहां वस गए, अंग्रेज आये, फ्रान्सीसी आये और यूरोप के विभिन्न देशों के लोग भी पहुंचे, वाद में चीनी और जापानी भी आये ।

इस देश की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि साधारण मनुष्य यहां नहीं आ सकते थे । यहां शुरू में जो भी पहुंचे वे अपने देश के चोटी के साहसी, उद्यमी एवं अध्यवसायी लोग थे । दुनिया भर के श्रेष्ठ किस्म के मनुष्य यहां आए होंगे और उन्होंने आकर इसे वसाना शुरू किया होगा—उनके चारित्रिक गुणों का प्रकाश इस देश में हुआ । हवाई-जहाज वनने से पहिले समुद्र ही एक मात्र मार्ग था । वताइये कौन आ सकता था यहां ? जिसकी मां ने दूध पिलाया होगा । उसको अपने देश की सरकार का वल भी मिला ही होगा ।

हवाई जहाज वन गए, तव भी कितने लोग यहां आ सकते थे । वे ही, जो अपने देश में किसी न किसी माने में असाधारण होंगे । भारत, मिश्र, यूनान, चीन, व्रिटेन, फ्रांस, स्पेन आदि सभी सभ्यता के चरम शिखर पर पहुंचे हुए देशों का वाहुवल, वुद्धि-वल और चरित्रवल का सार-तत्व अमरीका में आया । इससे पहिले यहां रेड-इंडियन रहते थे और आज भी जो कुछ वच रहे हैं, वे आदिवासी की तरह हैं और वदलना भी नहीं चाहते । विदेशी नर-रत्नों के आगमन का यह क्रम आज भी चल रहा है । श्रेष्ठ प्रतिभा वाले युवक यहां पढ़ने आते हैं और यहीं वस जाते हैं । उद्यमी-व्यापारी या मजदूर आते हैं और वस जाते हैं, इसी को हम व्रेन ड्रेन कहते हैं और यह अमरीका के लिए शुरू से ही वरदान रहा है । सात

समुद्रों के मन्थन से जो रत्न निकलते हैं, इसे मिलते हैं।

अमरीका की जो कुछ भी शक्ति, समृद्धि, सभ्यता, संस्कृति है, उसका रहस्य मुझे लगता है यही ब्रेन ड्रेन है और अब अमरीका की क्षमता इतनी हो गई है कि यह ब्रेन ड्रेन का क्रम रुकने वाला नहीं है। अमरीका में सब से मंहगी चीज ही 'ब्रेन' है। यह श्रम का सूक्ष्म रूप है। मैंने शिकागो में यू. एस. आई. [युनाइटेड स्टेट इन्टरनेशनल] क्लीयरेन्स और गॉस-विली डेक्स्टर के कारखाने देखे। पहली कम्पनी मोटरों की बॉडी बनाने वाली भारी मशीनें बनाती है और दूसरी कम्पनी छपाई की बड़ी बड़ी रोटेरी मशीनें तैयार करके दुनिया को बेचती है। दोनों ही कम्पनियां अपनी मशीनों के ढांचे जापान से बनवा कर मंगा लेती हैं। वे सस्ते पड़ते हैं। बारीक पुर्जे शिकागो में कस दिये जाते हैं और मशीनें जोड़कर खड़ी कर दी जाती हैं। डिजाइन और ड्राइंग अमरीका में ही तैयार होते हैं, जिसके लिए होशियार से होशियार इन्जीनियर नियुक्त किये हुए हैं। ये कम्पनियां अपने डिजाइन और ड्राइंग भी बेचती हैं और मशीनें भी। आगे से आगे गवेषणा होती रहती है। बताइये दुनिया का ब्रेन ड्रेन कैसे रुकेगा? बड़ी से बड़ी प्रतिभायें यहां आती ही रहेंगी और अमरीका को बनाती ही रहेंगी।

अमरीका वास्तव में एक अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र है। अमरीका माने ब्रिटेन, स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, चीन, और जापान। अमरीकी माने गोरे, काले, पीले और भूरे; अमरीकी माने उद्यमी, अध्यवसायी, प्रतिभाशाली विश्व-मानव के वंशज और अमरीका माने खाते-पीते, खेलते-नाचते-गाते, ढके अध-ढके स्त्री-पुरुषों का देश। क्यों न हो?

— ३ जुलाई; १९६८
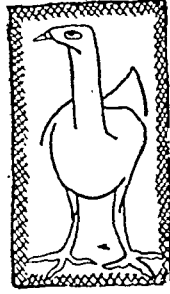
होनोलूलू : नाम ही मजेदार

हांगकांग में अपनी विदेश यात्रा की समाप्ति पर पहुंच कर मेरा जी हुआ कि आपको एक बार फिर आठ हजार मील दूर पश्चिम की ओर ले जाऊं। यह हवाई द्वीप समूह की राजधानी होनोलूलू है। होनोलूलू में मैंने अमरीका से विदाई ली थी और मैं इस नतीजे पर पहुंचा था कि वह अमरीका का सबसे ज्यादा खूबसूरत शहर है। मैं शहर के जीवन की एक झांकी आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता था, परन्तु किसी खास इरादे से यह विचार स्थगित कर दिया। मुझे जापान, फार्मूसा और हांगकांग भी देखना था और मैं यह देखना चाहता था कि पूर्व में होनोलूलू से ज्यादा खूबसूरत शहर मिलता है या नहीं। वैसे दुनिया के बड़े प्रसिद्ध शहरों के बारे में आप सभी ने कुछ न कुछ सुन रखा होगा, पढ़ रखा होगा। मैं प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता था। अब सुदूर पूर्व की यात्रा कर चुकने के बाद मैं कह सकता हूं कि होनोलूलू मेरे सामने

अब तक सर्वाधिक सुन्दर शहर आया है। यह शहर हर तरह, हर पहलू से देखने पर सुन्दर है।

होनोलूलू प्राकृतिक सौन्दर्य की राजधानी है और पर्वतीय शृंखलाओं एवं समुद्र से घिरा हुआ साढ़े छह लाख की आबादी का शहर है अर्थात जयपुर से कुछ बड़ा। सेन फ्रान्सिस्को से करीब २३०० मील दूर पश्चिम में स्थित इस शहर के हवाई अड्डे पर उतरते ही वहां का सौन्दर्य आप पर छाने लगेगा। हवाई राज्य के पर्यटक विभाग के स्वागतकक्ष में नियुक्त हवाई स्त्रियां आपके कॉलर में फूल टांगेंगी। अनन्नास के रस के साथ आपका सत्कार किया जायेगा।

कमर से घुटने तक टिली के पेड़ के पत्तों की घघरी बांधे, कन्धों के नीचे तक छींट का ब्लाउज और गले में चम्पा के फूलों का हार पहिने हुये हवाई युवतियां आपके आसपास आकर खड़ी होंगी या चलने लगेंगी। फोटोग्राफर उनके साथ आपका रंगीन फोटो लेगा। यदि आप भी अपनी प्रति खरीदना चाहें तो वह आपके पास अपनी दूकान का एक कार्ड छोड़ जायेगा। आप अपने साथ हवाई द्वीप समूह की सौगात रख सकते हैं। शहर में जाते समय पीछे की ओर प्रशान्त महासागर का जल हिलोरें लेता हुआ होगा और सामने ऊंचे ऊंचे पंक्तिबद्ध या यत्र-तत्र उगे हुये ताड़ व चम्पा के पेड़ फूलों से लदे होंगे, हरे भरे पर्वत शिखर होंगे और एकदम साफ सुथरे राज-मार्ग एवं उनके दोनों ओर बने हुए सुन्दर सुरुचिपूर्ण भवन होंगे। होनोलूलू से पहिले मैंने सेन-फ्रांसिस्को, लॉस वेगस, कोको बीच, पाम बीच आदि रमणीय शहर भी देखे जो सचमुच ही सुन्दर थे, परन्तु यह शहर सभी को मात करता है। अपनी स्वच्छता में, सुन्दरता में, यह इतना उजला है कि इसे देख कर दृष्टि भी निर्मल होने लगती है।

बेशक, यह घना बसा हुआ शहर है लेकिन ऊंचे ऊंचे मकानों की भरमार यहां नहीं है। ज्यादातर मकान छोटे हैं और नये से बने हुये लगते हैं। डिजाइन भी निराले हैं। समूचा शहर करीब

करीब समुद्र तट पर ही बसा हुआ है। होनोलूलू की एक विशेषता यह है कि यहां जल-वायु में ज्यादा उतार-चढ़ाव नहीं आते। यह ट्रेड विन्ड का प्रदेश है। मैं यहां वाईकीकी इलाके के व्हाइट सेन्ड होटल में ठहरा था। बड़ा खूबसूरत होटल, अच्छा खासा। बड़ा सुन्दर कमरा, सर्व-सुविधा-सम्पन्न, परन्तु अमरीका में पहिली बार मुझे यह देखकर हैरत हुई कि होटल एयर-कन्डीशन्ड नहीं और कमरे में पंखा भी नहीं।

मैं धूप से आया था, इसलिए पहिली नजर पंखे पर गई, लेकिन देखता क्या हूं कि कुछ ही मिनटों में धूप का ताप समाप्त हो गया। कमरे में रह कर ट्रेड विन्ड के झोंके आ रहे थे। मुझे पूछने की जरूरत नहीं पड़ी और समझ गया कि इस कमरे में पंखे की जरूरत ही नहीं, एकदम समुद्र के पास और आस-पास बड़े मकानों का घेरा भी नहीं। सभी मकान खुले हुए हैं।

होनोलूलू अमरीका और दुनिया के सभी देशों के सैलानियों का तीर्थ स्थान कहा जा सकता है। वैसे तो दुनिया में अनेक रमणीय स्थान हैं, परन्तु हवाई की भौगोलिक स्थिति ने उसे विशिष्ठ बना दिया है। यह पूर्व-पश्चिम का सन्धि-स्थल कहा जाता है। हवाई के पूर्व और पश्चिम में छह हजार मील तक प्रशान्त महासागर फैला हुआ है, अतः वह एक स्वतन्त्र देश के समान है और पृथ्वी के अन्य भूभागों से विच्छिन्न है। यहां आकर सैलानी लोग जैसे अपनी सारी दुनिया को भूल से जाते हैं और अपने आपको एकदम मुक्त, स्वच्छन्द एवं निर्विघ्न अनुभव करते हैं।

यहां आकर मनुष्य जैसे अपने सहज स्वाभाविक रूप में प्रगट हो जाता है। होनोलूलू के बाजारों में आप हजारों स्त्रियों को तैरने की पोशाक में (बिकनी और चोली) व पुरुषों को सिर्फ कच्छे में देख सकते हैं। जूते-चप्पल तो जैसे पैरों में गड़ते हैं — लोग पहिनना ही पसन्द नहीं करते।

अगर पांच मिनट पहिले आपने किसी को समुद्र में तैरते हुए या

किनारे पर चटाई पर लेटे देखा है, तो उसे उसी वेशभूषा में अर्थात् बिना वेशभूषा के दूकानों पर घूमते देख कर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह आम बात है। लोग दिन भर समुद्र तट पर बैठे रहते हैं। मैंने पान अमेरिकन एयरवेज के कार्यालय में भी लोगों को सिर्फ कच्छा पहिने टिकिट लेते हुए देखा है। रेस्तरां और बार-रूम में तो कहना ही क्या। तैरते-तैरते भाग कर एक घूंट खींच जाना जैसे इन सैलानियों का एक लुत्फ है। वाईकीकी क्षेत्र में एक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार है, जहां खरीद करने वालों का भी यही रूप है। बेतकल्लुफ [बेअदब नहीं] हो जाना जैसे हवाई द्वीप की एक विशेष प्रेरणा है या प्रवृत्ति है। औपचारिकता छूने भी नहीं पाती।

१३ जून को मैं वहां पहुंचा था। उस दिन तो मैं इस वातावरण से जरा अभ्यस्त होने में लगा रहा। लेकिन दूसरे दिन से मैंने भी जैसा देश वैसा भेष धारण किया। एक कच्छा (वेदिंग शार्ट) खरीदा, लेकिन तजुर्बे ने मंहगा सावित किया यह शौक। कीमत थी सात डॉलर। मैंने फिर हिन्दुस्तानी रुपये में फलावट शुरू कर दी क्योंकि एशिया देखना था। फिर भी जेब जरा गर्म थी, ज्यादा महसूस नहीं हुआ। कच्छा खरीद लिया तो तैरना भी जरूरी हो गया। तैरने का मुझे बचपन से शौक है। समुद्र तट पर जा पहुंचा। एक लॉकर मांगा कपड़े रखने के लिये और किराया लगा ५० सेन्ट। सर्फ बोर्ड लिया दो घन्टे के लिये और देने पड़े ढाई डॉलर। समुद्री खार से बचने के लिये शरीर पर लगाया जाने वाला लोशन ट्यूब होटल में भी मिलता है और हवाई जहाज में भी। होनोलूलू उतरने वाले यात्रियों को मुफ्त दे दिया जाता है। कुल मिलाकर दस डॉलर का नुस्खा बन गया, लेकिन सौदा बुरा नहीं रहा।

प्रशान्त महासागर के हवाई तट पर तैरना एक रोमांचकारी अनुभव है, सचमुच रोमांचकारी। जरा सी असावधानी और एक लहर की चपेट में पिद्दी-सा सर्फ बोर्ड उलटा ही समझिये। एक हिलोर में किनारे पर और दूसरी में ठीक बीच समुद्र में। क्या हस्ती है

इन्सान की, लेकिन तैर रहा है।

सैलानियों के अलावा हवाई की अपनी दुनिया भी है। एक सैलानी को आपने देखा कि वह यहां आकर कितना खुल जाता है, लेकिन हवाई के बासिन्दे को देखिये, उसका पहिनावा अमरीका भर से अलग ही है। एक हवाई स्त्री को देखिये वह आपको कन्धे से एड़ी तक मूमू [एक ही पोशाक – ड्रेसिंग गाउन की तरह लम्बी] पहिने हुए, अपने कान, कण्ठ और जूड़े में गजरे पहिने हुए मिलेगी।

'अलोहा' हवाई द्वीपों की अदब की बोली है। मुझे 'अलोहा' ने कदम कदम पर यह याद दिलाया कि मैं राजस्थान के रास्ते पर लौट पड़ा हूं। भारत में भी राजस्थान ही एक ऐसा प्रदेश है जिसमें स्वागत और विदाई दोनों अवसरों के लिये 'पधारिये' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अमरीका में यह विशेषता सिर्फ हवाई में है। हवाई का नागरिक अपने मेहमान का स्वागत भी अलोहा कहकर करता है और विदाई पर भी अलोहा कहता है। होनोलूलू में हर दूकान होटल या रेस्तरां पर लिखा हुआ मिलेगा–अलोहा। अलोहा के लिये हिन्दी में केवल एक ही शब्द है 'पधारिये' और वह भी राजस्थान की देन है। मैंने कई हवाइयों को यह बात बताई तो बड़े खुश हुये। वे मुझे हवाई का नागरिक और अपने आपको राजस्थानी कहने में प्रसन्नता अनुभव करने लगे।

हवाई में सामाजिक शिष्टाचार की दूसरी मिसाल यह भी देखने में आई की हवाई अड्डे से विदा होने वाले यात्रियों के लिये हवाई स्त्रियां मंगलाचार करती हैं अर्थात् नृत्य, गायन आदि प्रस्तुत करती हैं। पर्यटन होनोलूलू की आय का मुख्य सीगा है। राज्य की आय का और सैलानियों का मुख्य आकर्षण। 'होनोलूलू' शब्द सुनने में जितनी मौज आती है, इस शहर को देखने में उससे भी ज्यादा मौज आती है। साल में करीब दस लाख यात्री यहां मौज करने के लिए पहुंच जाते हैं।

—५ जुलाई, १९६८
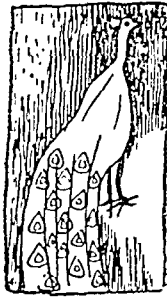
जापान : दौर दौरे में

जापान दुनिया के चोटी के उन्नत देशों में गिना जाने लगा है लेकिन टोकियो को एक नजर देखने के वाद मैंने महसूस किया है कि यह देश आज भी अपने विकास के संक्रान्ति काल से गुजर रहा है। इससे यह सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है कि जापान की क्षमता और संभावनाएं कितनी हैं और वह कितना महत्वाकांक्षी है। टोकियो आज कैसा लगता है, इसको ठीक तरह समझाने के लिए मैं इसे एक वनता हुआ मकान कहूंगा जिस पर छत पड़ चुकी है और काम चलाऊ तरीके से रहने के लिए एकाध कमरे भी वन गये हैं जिसमें पानी - विजली का फिटिंग हो चुका है। फिर भी वहुत कुछ वाकी है।

सारे सहर में निर्माण कार्य चालू हैं। सड़कें इस तरह उखड़ी हुई रखी हैं जैसे दर्जी की दूकान पर कटे हुए कपड़े। हजारों मशीनें, वुलडॉजर, रोड-रोलर, क्रेन-ट्रक वगैरह जगह जगह पड़े हैं। कहीं सड़क पर सड़क

बन रही है जिसके लिये खम्भे खड़े किये जा रहे हैं, तो कहीं भूमिगत रेलवे की नई लाइनें ढाली जा रही हैं जिसके लिये सड़क के नीचे सुरंगें खुद गई हैं और ऊपर लोहे की मोटी चद्दरें बिछी हुई हैं जिन पर ट्रैफिक चालू है, कहीं यथासम्भव सड़क चौड़ी की जा रही है। हर कदम पर नई ऊंची ऊंची इमारतों के फौलादी ढांचे खड़े हुये हैं जिनमें वेल्डिंग हो रहा है या कंकरीट भरा जा रहा है। बंदरगाह की गोदियां फैलाई जा रही हैं तो फेक्ट्रियों के शेड बढ़ाये जा रहे हैं। नित नये प्रोजेक्ट तैयार हो रहे हैं। इन दिनों अमरीका की क्रिसलर मोटर-कम्पनी के प्रेसीडेन्ट यहां के मोटर उद्योग की सम्भावनाओं पर बात-चीत कर रहे हैं। जापान मोटर कार के निर्माण में अब अमरीका के बाद सबसे आगे हो गया है लेकिन सुना है कुछ ओर छलांग भरने वाला है जिससे वह फ्रांस व जर्मनी को मोटर बाजार में टक्कर देकर अमरीका के मुकाबले आ जायेगा।

टोकियो टॉवर (१००० फिट से कुछ ऊंचा) के निर्माण में यही स्पर्द्धा और प्रतियोगिता की गहरी मात्रा मिली हुई है। वह फ्रांस के एफिल टॉवर से ऊंचा बन गया और न्यूयार्क की एम्पायर स्टेट बिल्डिंग के आस पास आ गया। टॉवर से टेलीविजन के प्रसारण का कार्य लिया जाता है। इस पर हर एक के चढ़ने के लिये बड़ी बड़ी लिफ्ट्स लगी हुई हैं। और भी कई छोटे मोटे टॉवर बने हुए हैं और बन रहे हैं। जापान को एक पल भी चैन नहीं है। हर-पल वह कुछ न कुछ बन रहा है और बना रहा है।

टोकियो के ऊपरी जन जीवन पर अमरीकीपन अच्छी तरह छाया हुआ है। अंग्रेजी जैसी भी टूटी फूटी जापानी ढंग की यहां पर है उसमें अमरीकी शब्दावली, टेक्सियों के रंग रूप और डिजाइन, होटलों का प्रबन्ध व संचालन, कारखानों की डिजाइन, वेशभूषा एवं अन्तर्राष्ट्रीय-व्यवहार आदि सब पर अमरीकीपन हावी है लेकिन अर्थ-तन्त्र का नियन्त्रण जापानी हाथों में है। अमरीका से सर्वांगीण होड़ के बाव-जूद घरेलू जीवन में जापानीपन जीवित है। सामाजिक अवसरों पर

स्त्रियां आज भी किमोनो (एड़ी से चोटी तक की लम्बी पोशाक) पहिनती हैं। प्रौढ़ महिलाएं रोजमर्रा भी यही पोशाक धारण करती हैं। वांस की तीलियों के विना जापानी भोजन नहीं करता। घर के कमरे में वह जूते खोल कर घुसता है और चटाई पर बैठता है।

'चाय पीवणी' [टी सेरेमनी] के लिये जापान के गांव गांव में स्कूल चलाये जाते हैं जिनमें करीव वीस हजार शिक्षक परम्परागत तरीके से चाय पीने की रस्म सिखाते हैं। यह रस्म मैंने अपनी सम्पूर्ण परम्परागत सज्जा में देखी है। 'चाय पीवणी' क्या है, 'सत्यनारायण की कथा है।' अर्थात् इसको जापानी परिवार उतना ही महत्व देते हैं जितना कि हमारे परिवार सत्यनारायण की कथा को देते हैं। यह एक ऐसी जापानी रस्म है जिस पर पूरा लेख लिखा जा सकता है। शहर की गली गली में जापानी भोजन 'सुकियाकी, टेम्पोरा' आदि का जबर्दस्त प्रचलन है। लगभग छियालीस प्रतिशत शादियां आज भी मां-वाप तय करते हैं और उनमें दलालों से काम लिया जाता है। शादियां यहां दलालों की मार्फत होने का रिवाज है जो लड़के वाले से कुल सगाई खर्च का एक प्रतिशत मेहनताना वसूल करते हैं। तलाक प्राय प्रचलित है, परन्तु आमतौर पर स्त्रियां तलाक नहीं मांगती हैं। अगर वह तलाक मांगें तो पुरुष भी निर्वाह खर्च का हकदार हो जाता है और स्त्री को चुकाना पड़ता है।

टोकियो में सवसे ज्यादा प्रभावशाली चीज मुझे देखने को मिली यहां की जवान पीढ़ी। अमरीका की तरह बूढ़े-बूढ़ियों के चेहरे यहां सड़क पर इक्के दुक्के ही नजर आते हैं और अधेड़ भी वहुत कम हैं। एक जापानी अफसर ने मुझे बताया कि जापान भर में पैंतालीस प्रतिशत आवादी पचीस साल से कम उम्र वालों की है अर्थात् द्वितीय महायुद्ध के वाद की है। जिधर देखो जवान लड़के लड़की काम करते हैं। क्या ट्रक ड्राइवर और क्या क्रेन डाइवर सव जवान छोकरे हैं। केनन केमरा कम्पनी में मैंने वहां के एक अधिकारी से पूछा तो पता चला कि उसके लेन्स विभाग के दो हजार कर्मचारियों में १७०० लड़-

कियां हैं और वे अठ्ठारह से चौबीस साल के बीच की अवस्था में हैं। इसी तरह दुकानों में, बैंकों में, दफ्तरों में और सभी जगह जवान लोग ही काम करते दिखाई देते हैं। आज का जापान विश्व इतिहास का एक नया ही अध्याय है, जिसकी उत्पादन क्षमता प्रतिवर्ष दस प्रतिशत बढ़ रही है और अब वह उसे दो प्रतिशत कम करने में लगा हुआ है। इस क्षमता का रहस्य शायद यही जवान पीढ़ी है, जिसने द्वितीय महायुद्ध के महाविनाश के बाद भी जापान को मुस्तैदी से खड़ा कर दिया।

जापान के जवान को मैंने काफी गौर से देखा है। जापान का पुराना इतिहास सामन्तवाद एवं अध्यात्मवाद का गहरा मिश्रण रहा है। लम्बी चोटी वाले कर्मकाण्डी जापानी पण्डों की कथाओं से पोथियां भरी पड़ी हैं और परिवार में क्रूर, कर्कश पिता के अत्याचारों का प्रदर्शन आज भी टोकियो के प्रसिद्ध 'किबूकी' थियेटर में हो रहा है। शायद द्वितीय विश्व-युद्ध ने जापान के समूचे मुर्दा मांस को भस्मीभूत कर दिया और उसमें से नया जापान निकल आया, लेकिन उसके चेहरे से अभी तक अतीत की वेदना तिरोहित नहीं हुई है। उसके मानस के गहनतम कोने में कहीं गहरे घाव हैं। एक जापानी से बात करो तो लगेगा कि टेपरेकॉर्डर सामने रखा है। उसका चेहरा देखो तो निश्चल चित्र दिखाई देता है। वह हंसता है लेकिन उसकी हंसी में एक मुक्तता या ऊष्मा नहीं होती। ऊपर से एक मर्द जिन्दगी है और नीचे आग है। वह आग एक जापानी से काम करवाती है। बड़ी ही ठंडी आग! एक प्राचीन इतिहास की जड़ता का मान, युद्ध के विनाश का मान और अपनी क्षमता एवं महत्वाकांक्षा का तकाजा! जापानी के मानस में जैसे निरन्तर संघर्ष चलता रहता है और वह किसी दूर देश में आया हुआ है, दूर देश जाना चाहता है। जापानी का व्यक्तित्व भी समूह का अंग है। वह स्वतन्त्र इकाई के रूप में सामने नहीं आता। सब एक जैसे लगते हैं। यहां आकर वह अमरीका से एकदम विपरीत बन जाता है। बिल्कुल जापानी छाप।

एक दिन बस में बैठ कर आठ घण्टे यों ही टोकियो शहर देखा। खास-खास जगहों पर उतर कर देखा। दूसरे दिन औद्योगिक टोकियो को देखा। तीसरे दिन पैदल घूमकर जनसंकुल राजधानी की जीवन-धारा देखी। कारखानों में केनन केमरा कम्पनी, सोनी कॉर्पोरेशन और ममासा की डिस्टलरी देखी। तीनों ही विश्व के चोटी के कार-खाने हैं। केनन केमरा कम्पनी कोडक, एग्फा आदि को टक्कर दे रही है और एक लाख केमरे प्रति मास बना रही है। फिल्मी केमरे, एक्सरे के लेन्स आदि में वह अग्रणी है। करीब नौ हजार कर्मचारी काम करते हैं। उत्पादन का तरीका पूर्णतः आधुनिक है। सोनी कॉर्पो-रेशन पांच सौ डॉलर की पूंजी से शुरू हुआ था १९४६ में। जिसका सुरक्षित कोष इस समय पिचत्तर लाख डॉलर का है। ट्रांजिस्टर टेपरे-कॉर्डर, टेलीविजन, ट्रांजिस्टर टेलीविजन वगैरह में दुनिया में सबसे आगे है! जापान में इस समय दो करोड़ टेलीविजन हैं, जिनमें छः प्रतिशत सोनी कॉर्पोरेशन के बनाये हुए हैं। हर साल छः लाख सेट तैयार कर रहा है। ममासा की डिस्टलरी तीन लाख बोतलें रोज भरती है और जापान के अलावा करीब साठ देशों को 'सन्तोरी' व्हिस्की का निर्यात करती है। सोनी और केनन के उत्पादन का साठ प्रतिशत निर्यात में जाता है। सोनी ने तो दुनिया में अपना जाल बिछा दिया है। न्यूयार्क, स्विट्जरलेण्ड, हांगकांग आदि शहरों में; अमरीका, यूरोप व अफ्रेशियाई देशों की मांग पूरी करने के लिए बड़े बड़े उत्पा-दन केन्द्र स्थापित कर दिये हैं।

टोकियो के बाजारों को देखा। कितनी खरीददारी होती है, कहना कठिन है लेकिन इस शहर को ही अगर दुनिया का एक बड़ा सुपर बाजार कह दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा। विदेशियों को खरीद के लिए आकर्षित करने के लिए हर बड़े स्टोर व होटल में 'ड्यूटी फ्री' सामान की बिक्री होती है जिस तरह अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों पर होती है। रेडियो, टेलीविजन, केमरा, रेशम, मोती, चीनी के बर्तन आदि का जबर्दस्त प्रचार किया जा रहा है। जापान

का इरादा है कि दस करोड़ आबादी की दो अरब अंगुलियों से दुनिया के कोने कोने से दौलत बटोर लाई जाय और दौलत सचमुच आ रही है, वरना शहर में इतनी तामीरात किस बूते पर होती ?

जापान का प्रधान मंत्री जब यह दावा करता है कि दस साल में वह जर्मनी, फ्रांस वगैरह को पीछे छोड़ देगा और तीस साल में अमरीका की बराबरी में आ जायेगा तो वह इन्हीं दो अरब अंगुलियों के जोर पर कहता है और उसके कहने में डींग नहीं मालूम पड़ती।

कुटीर उद्योगों की व्याख्या जापान ने नये सिरे से लिख दी है। द्वितीय महायुद्ध के पहिले जापान अपने कुटीर उद्योगों के लिए मशहूर था। भारत में 'दाल-रोटी दर्शन' के गांधीवादी प्रचारक और हाथ करघा छाप नेता आज भी जापान के नाम पर इसी तरह की बातें करते हैं। जापान ने इस दाल-रोटी दर्शन को उठा कर ताक में रख दिया है। जापानी गुड़िया अब मशीन से चलती है और जापानी मोती भी मशीन से ही तैयार होते हैं तथा सच्चे मोतियों को मात करते हैं। स्कूल के बच्चे अगर हाथ से कुछ बना भी लेते हैं तो उनका दाम मात्र वसूल कर लिया जाता है ज्यादा प्रचार नहीं किया जाता। अब जापान बात करता है बड़े बड़े टर्बाइन और ट्रान्सफार्मरों की, दुनिया के बड़े से बड़े टेंकर की, एक सौ पच्चीस मील की रफ्तार वाली रेलों की और अगले दस सालों में विश्व के बाजारों पर कब्जा कर लेने की।

शिक्षा की दृष्टि से भारत में जापान की खास चर्चा ही सुनने में नहीं आती। शायद इसलिए कि जापान को जितनी साक्षरता फैलानी थी, फैला चुका। जापान के विकास में जो गति आई है वह सर्वांगीण शिक्षा पद्धति से। शिक्षा पर युद्ध के बाद ही जापान का इतना जोर रहा है कि इस समय जापान की ९९.९८ प्रतिशत जन-संख्या शिक्षित है, साक्षर ही नहीं। दूर जाने की जरूरत ही नहीं, अकेले टोकियो शहर में एक सौ अस्सी विश्व-विद्यालय हैं और एक-हजार जूनियर व सीनियर हाई स्कूल हैं। जापान की दस करोड़ जन-

संख्या में से दो सौ तीस लाख जनसंख्या इस समय शिक्षा पा रही है और विश्व-विद्यालय में प्रवेश के लिये दुनिया भर की सिफारिशें करवाई जाती हैं। कहीं कहीं रिश्वत की शिकायतें भी सुनने में आती हैं।

मैं विस्तार में नहीं जा सका लेकिन एक अध्यापक से बड़ी मुश्किल से बात कर पाया जिसने मुझे मोटे तौर पर जानकारी दी। उसका एक अनूठा उदाहरण तो मैंने टोकियो के एक उपनगर में स्वयं देखा है जहां एक ट्रेफिक स्कूल चलता था। बच्चों को ट्रेफिक की नियमित शिक्षा दी जाती है। ट्रेफिक के सिगनल, निशान, सड़कों के निशान आदि सब कुछ प्रत्यक्ष बताये जाते हैं। बाकायदा कक्षाएं लगती हैं और एक बड़े मैदान में सारा सरंजाम लगा होता है। ऐसे स्कूल जापान में सैकड़ों हैं। इन दृष्टान्तों से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि शिक्षा का विस्तार यहां के जन जीवन में किस सीमा तक पहुंच गया है।

टोकियो में सबसे ज्यादा दिलचस्प बात मैंने यह देखी कि यहां सड़कों, बाजारों और गलियों के नाम ही नहीं हैं और मकानों के नम्बर भी नहीं हैं। क्या आप विश्वास करेंगे कि दुनिया के सबसे बड़े शहर में बिना नाम और बिना नम्बर के काम चलता है। मुझे भी यह जान कर हैरत ही हुई। गिंजा नाम का टोकियो में जो मशहूर इलाका है, उसके बाजार का भी नाम नहीं। यहां गांव या मोहल्ले के नाम से सब कुछ जाना जाता है।

नम्बर हैं भी तो मकान नम्बरवार नहीं हैं। अगर आपको मकान नम्बर तीन में पहुंचना है तो हो सकता है कि उसके एक तरफ नम्बर दो सौ पैतालीस हो और दूसरी तरफ उन्नीस हो। मान लो, अगर किसी ने सौ साल पहिले मकान बनाया तो नम्बर एक रख लिया और उसके बाद किसी ने बनाया तो नम्बर दो रख लिया। इसके बाद दोनों के बीच कुछ मकान बने तो उन्होंने अलग ही नम्बर रख लिये और टोकियो बस गया। यहां अगर किसी से कोई

पता पूछो तो वह झट कागज [illegible]
अव्वल तो भाषा का संकट और दूसरा नाम-नम्बरों का झंझट। मैं बहुत ही ज्यादा हैरान रहा लेकिन मैं भी जल्दी ही हार मानने वाला नहीं था। जैसे भी बन पड़ा गाड़ी धकेलता ही रहा। वरना मुझे यह अनुभव कैसे होता कि टोकियो की नगर रचना भी जयपुर की तरह ही एक विशेषता रखती है, अपने ढंग की। इस प्रसंग में एक तथ्य पाठकों के सामने और रख दूं कि डाक वितरण में टोकियो शायद अमरीका से भी आगे ही मिले। सुबह नौ बजे टोकियो में चिट्ठी डालिये और तीन बजते ही वह अपने अपने स्थानीय पते पर डिलीवर हो जायगी, टोकियो में यहां के डाकिये को जैसे अपना विशाल शहर एक मुहल्ले जैसा ही लगता है।

— ६ जुलाई, १९६८

गिंजा : रंग रोशनी की एक शाम

अगर टोकियो को जापान समझ लिया जाय और गिंजा को टोकियो मान लिया जाय तो कहना पड़ेगा कि शहर क्या है एक नाटक घर है। अभी तीसरे पहर देख कर अपने होस्टल में गया था। सारा शहर अस्त-व्यस्त, जगह जगह उखाड़-पछाड़, तोड़ फोड़ जैसे कि बनता हुआ मकान। सात बजने के कुछ देर बाद लौट कर गिंजा [टोकियो के सबसे शानदार इलाके] को देखा जैसे वासकसज्जा नायिका [साज सिंगार करके प्रिय-मिलन की बाट निहारती हुई स्त्री] — यह क्या ! जैसे कोई पर्दा गिरा हो, पर्दा उठा हो। कुछ देर पहिले जो मकान ईंट, पत्थर, चूने, लोहे, लक्कड़ के बने हुए नजर आते थे, अब लग रहे हैं जैसे रंग और रोशनी के बने हुए हों। एक कल्पना जगत की तरह। एक बार धोखा हुआ जैसे दुर्योधन को मय दानव के बनाए हुए इन्द्र-प्रस्थ में हुआ था। गली चौराहों की पहिचान ही गायब हो गई।

नाम और नम्बर तो टोकियो में वैसे ही नहीं हैं, अब तो हुलिया भी गायब हो गया। रंग और रोशनी

में जो नाम नजर आते हैं वे सब जापानी में। मैं इन्द्र जाल में फंस गया लेकिन यही तो देखने आया था। देखा या नहीं, कह नहीं सकता, एक झलक जरूर पा गया। सब-कुछ झूठ भी मालूम नहीं पड़ता। मैं केवल तुलनात्मक भेद कर सकता हूं और वह यह कि अपने इस प्रवास में अब तक रंग-रोशनी की ऐसी रौनक नहीं देखी, न्यूयार्क के ब्राडवे में नहीं, लॉस वेगस की फ्रीमेन स्ट्रीट में भी नहीं।

गिंजा को मैं देख सका, यह भी एक घटना है। मैं पहिले एक दिन दाईची होटल में ठहर कर दूसरे दिन यूथ होस्टल में जा टिका था। क्योंकि बजट का विचार था। होस्टल का कायदा था कि रात को नौ बजे फाटक बन्द और आठ बजे खाना ख़त्म। दस बजे सोने का ऐलान। मेरी टोकियो की चार दिन की चांदनी भी दो दिन रह गई। आमतौर पर मैं रात को देरी से सोता हूं। जयपुर में भी और प्रवास में भी। होस्टल में मुझे लिखने की भी बड़ी दिक्कत रही। कमरे में एक साथ चार यात्री होते हैं और कुर्सी मेज भी नहीं। लिखने पढ़ने के लिए सिर्फ डाइनिंग रूम जिसमें नौ बजे तक तो वैसे ही सफाई होती रहती है। दस बजे रोशनी बन्द। बाहर निकल जाओ तो वापिस अन्दर आने का रास्ता नहीं।

जापान ब्यूरो केवल रात्रि के लिए विशेष दौरों का आयोजन करता है। जिसका उपयोग होस्टल में रहने वाले नहीं कर सकते। ब्यूरो के हर अधिकारी ने रात्रि को गिंजा की छवि देखने के लिए बार बार आग्रह किया था और सच ही था, अगर मैं न देखता तो टोकियो की तस्वीर भी फीकी ही रहती। मैंने आखिरी दिन तय किया कि एक डेढ़ घण्टे ही सही, शाम को इस विश्व-विख्यात गिंजा लोक की हवा जरूर खानी है। नौ बजे वापिस आने की योजना बना कर मैं निकल पड़ा।

गिंजा की निखरी हुई रूप राशि को मैं अपलक नेत्रों से देखने लगा। अस्थि-पंजर के बिना बना हुआ रंगों का प्रकाशमान शरीर जैसा नजर आता था। आसमान में चांद भी होगा तो किसी कौने

में अपना मुंह छिपाये होगा। उसकी चांदनी यहां कोई अर्थ ही नहीं रखती, महत्व खो चुकी है। वह गिजा में आकर शायद चौंधिया गई। मेरी आंखों में चकाचौंध थी जिसे अकस्मात् एक चेतना हुई।

अचानक एक लड़के ने मेरे पास आकर विनीत स्वर में कहा—'नाइस वा'। उसके स्वर की विनीतता से मुझे लगा कि शायद कुछ पैसे मांगता है। मेरे बच्चे अपने बाबा को 'वा' कहते हैं। मैंने संस्कार-वश यह समझा कि 'वा' कोई आदर सूचक शब्द है। मां, वाप, भाई आदि शब्द कई भाषाओं में एक जैसे या प्रकारान्तर से एक जैसे लगते हैं जैसे अंग्रेजी में मां को मामा या मम्मी कहते हैं। मैं उसकी ओर देखने लगा। इतने में वह फिर वोला। नाइस-वा, नीयर—और वह आगे वढ़ता हुआ मुझे भी आगे बढ़ने का इशारा करता हुआ चला। यह एक केमरे के शो रूम के सामने की बात है वह नीयर, नीयर (नजदीक नजदीक) कह कर शो रूम के पीछे की ओर इशारा कर रहा था। मैं यकायक कुछ समझ नहीं पा रहा था। वह चाहता क्या है? मेरा हाथ पकड़ कर बड़ी विनय के साथ मुझे आगे चलाने लगा। उसका दूसरा हाथ शो रूम के पीछे की ओर इशारा कर रहा था। मैं यों ही चल पड़ा। कुछ ही सैकिण्डों में पीछे की ओर मुड़ गया। जगमगाती हुई छोटी सी गली। आस पास जलपान घर सजे हुए। सर्विस करने में लड़कियां तत्पर हैं। मेरी सहज वुद्धि अव काम करने लगी।

वह एक सीढ़ी पर चढ़ने लगा और मुझे न जाने क्यों, एकदम गुजराती का 'बा' शब्द याद आया। कहीं इसका सम्बन्ध स्त्री से तो नहीं है। सचमुच वही बात थी। एक ही साथ मुझे बम्बई के कोलावा इलाके का दृश्य याद आने लगा। इसी तरह लड़के राह-गीरों के पास जा पहुंचते हैं और सौदा पटाने लगते हैं। मैं ऊपर पहुंचा तो एक वार-रूम लगा हुआ—एक थड़ी के बराबर काउण्टर। करीव आधा दर्जन लड़कियां मुझे घेर कर खड़ी हो गईं। 'होस्टेस' 'होस्टेस' एक ही पहिचान। लड़का मुझे चिट्ठी की तरह लेटर वॉक्स में

डाल कर विना कुछ कहे सुने चलता बना । गुड नाइट भी तो नहीं। मुझे उसकी पगध्वनि में एक ही सम्बोधन सुनाई पड़ा—तू जाने तेरा राम जाने । जापानी हीं ठहरा ।

मेरे गिंजा पहुंचने के करीब पन्द्रह वीस मिनटों में ही यह सब कुछ हो गया । जापान एकदम अपने विदेशी मेहमान को आवभगत करने पर उतारू हो गया । हठात् ! मैं भी विचलित नहीं हुआ । काउ-ण्टर के सामने ही खड़ा रहा । काउण्टर पर एक लड़का भी खड़ा हुआ था । मैंने उसी से बात करनी शुरू की । मैंने कहा—मैं अनजाने यहां आ गया हूं । जेब खाली है । होस्टेस वाली विरादरी को यह सब सुनने की फुर्सत नहीं । काउण्टर वाले लड़के को शायद इन वातों से कोई सरोकार ही नहीं । उसे आर्डर दो तो वह तामील कर दे । इतने में तो मेरा जुलूस निकाल दिया गया । सभी लड़कियां मुझे आगे करके एक सोफे के पास ले गईं ।

एकदम बेतकल्लुफी के साथ । गिंजा की रोशनी की एक किरण भी वहां नहीं थी । मोमवत्तियों का झुटपुटा । मैं बैठ गया या मुझे बिठा दिया गया । बोलने का अवसर नहीं, सिर्फ तकाजा—ड्रिंक, ड्रिंक ! बोलो ! बोलने का मौका मिलते ही बोला —अभी नहीं, मैं रात को दस बजे बाद पीता हूं । अभी थका हुआ हूं और एकदम अपने कमरे में जाना चाहता हूं ; मेरी बात पर शायद उनको भरोसा नहीं हुआ । मेरे दोनों कन्धों पर दो होस्टेस हावी थीं एक ने अपनी मनुहार जारी रखी । 'ए लिटिल' [थोड़ी सी]—मैंने कहा बिल्कुल नहीं ।

उसने बड़ी मनुहार के साथ कहा—रेस्ट करो । मैंने कहा—नहीं । मैं अपने कमरे में जाऊंगा, नहाऊंगा और कपड़े बदल कर बाद में निकलूंगा । फिर सवाल आया । अभी कैसे आ गये । मैंने कहा—मैं उस लड़के की बोली नहीं समझता था और वह मेरी । उसने सम-झाने की मुझे फुर्सत भी नहीं दी । मेरी सफाई से कुछ काम तो चल गया लेकिन पूरी तसल्ली नहीं हुई । मेरा पता ठिकाना, टेलीफोन नम्बर सब कुछ पूछ डाला । मैंने बड़ी खुशी खुशी सब बताया । इसमें

मेरा क्या जाता था, मेरे व्यवहार से मैंने किसी को जरा भी उखड़े हुए नहीं देखा। मुझे खटका जरूर था। अनजान देश है। तसल्ली इतनी ही थी कि अभी शाम थी और गिंजा के मुख्य बाजार के किनारे किसी गली में अन्दर जाना पड़ता तो मैं जाता भी नहीं, भले ही वह कुछ भी कहता। यहां तक तो मैंने फन से ज्यादा कुछ नहीं समझा।

खैर, मेरा पता ठिकाना लेकर उन लोगों ने रास्ता दिया, कहा–प्रामिज; मैंने बहुत जोर से दुहराया—प्रॉमिज। बाकायदा मेहमान सी विदाई दी गयी, व्यवहार पटुता से भरी हुई। मैं नीचे आकर एकदम बाजार में आ गया। आठ बजने वाले थे। नौ बजे तक वापिस होस्टल में पहुंचना था। पन्द्रह मिनट रेल सफर में खर्च होते थे। गिंजा के किनारे ही रेलवे स्टेशन है। हर दो तीन सेकंड में रेल चलती है। मैंने खाने का प्रोग्राम बना लिया और स्टेशन वाली दिशा में बढ़ने लगा। मैं सौ गज भी नहीं चला होऊंगा कि फिर एक दूत आ गया—ब्यूटीफुल बा! अब मैं समझता था। भगवान बुद्ध की ही तरह ज्ञान प्राप्त करके दुनियादारी से विमुख होकर अभी अभी आया था। ज्ञान में निष्णात्। मैंने एकदम 'नो' कहा और वह विस्मय से आंखें फाड़ता हुआ चला गया। हाथ झाड़ कर बोलता गया—'नो बा!'

मैं चौराहे पर आ गया जहां पास ही सोनी बिल्डिंग है, मुत्सूया डिपार्टमेन्ट स्टोर है, स्पेरो बियर हॉल है और भूमिगत 'सब-वे' का स्टेशन है। स्पेरो जापान का राष्ट्रीय पेय है, बियर पानी की तरह लोग पीते हैं। स्पेरो हॉल में भारी भीड़। खाने के लिए इसे चुना और भीतर गया। खचाखच भरा हुआ हॉल। एक वेटरेस से जगह मांगी पर उसने एक ओर काउण्टर बता दिया। मैं तीर की तरह सीधा काउण्टर पर पहुंच गया। एक ही सांस में बियर और खाने का आर्डर देकर बैठ गया। हॉल में काफी कोहराम। कोई पांच सौ की भीड़ होगी। मेरा सामान आया और साथ ही दाम चुकाने का तकाजा। मैं चुका कर खाने को हुआ, फुर्ती से।

इतने ही में पास का एक ग्राहक उठ कर जाने लगा। उसने

बिल मांगा तो मेरे कान खड़े हुए। मुझ से हाथों हाथ दाम वसूल किया गया और पास वाले से बाद में। इसके एक दो मिनट बाद दूसरी तरफ वाले ग्राहक ने एक और बियर का आर्डर दिया, वह चालू बिल में जुड़ गया। मेरे मुंह से निकल पड़ा—'स्ट्रेन्ज' [अजीब बात है] – पास वाले सज्जन मेरी ओर मुखातिब हुए। मैंने उनसे पूछा कि क्या यहां दाम पहिले चुकाना पड़ता है ? उन्होंने अपनी जापानी अंग्रेजी में कहा कि नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने काउण्टर पर वेटरेस को फिर एक कॉफी का आर्डर दिया और फिर वही दाम चुकाने का हाथों हाथ तकाजा !

हॉल में कोई दूसरा विदेशी मुझे नजर नहीं आया, वरना मैं उससे भी जाकर पूछता। मैंने दाम चुकाये। खा-पीकर अपना रास्ता लिया। मेरा ध्यान गिंजा की रौनक पर अब उतना नहीं था। एक ओर होस्टल पहुंचने की जल्दी तथा दूसरी ओर ये दो घटनाएं मेरे दिमाग में बारी-बारी से घूम रही थीं। 'वा' का कारोबार दुनिया के सभी बड़े शहरों में एक समान है, लेकिन मुझे अमरीका में कहीं यह अनुभव नहीं हुआ। मैं आधी रात तक वहां आमतौर पर घूमता था। वहां स्त्री और पुरुष के बीच दलाल या एजेन्ट जैसी किसी चीज को नहीं देखा, पैंतालीस दिनों में !

टोकियो में आधे घण्टे के समय के भीतर दलाल 'वा' की बोली लगाते हुये मिल गये। मेरी समझ में आया आखिर हिन्दुस्तान के फिल्मी लोगों को 'लव इन टोकियो' का नाम क्यों सूझा। शायद टोकियो ने अपनी इसी तरह की शोहरत बना रखी है। वह कलकत्ता, बम्बई से दो कदम आगे है, जैसे दूसरी बातों में।

दूसरी घटना मेरी समझ में बिल्कुल ही नहीं आई। विदेशी पर जापानी को भरोसा क्यों नहीं है ? अकेले मुझ को ही तो वह उचक्का समझता नहीं होगा। दूसरों के साथ भी वही व्यवहार होता होगा-आर्डर के साथ तुरन्त दाम। लेकिन क्यों ? मैंने जापानी कारखानों का दौरा करके देखा उनमें जापानी के सिवाय दूसरा कोई मजदूर

नहीं । मजदूरों की यहां सख्त कमी है लेकिन कोरिया, चीन आदि देशों के नागरिकों को नौकरी नहीं मिलती । जापानी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है। कारखानों में नौकरी यहां स्थायी होती है। अमरीका में मैंने दुनिया भर की जातियों को हर क्षेत्र में देखा, नौकरियों में भी भारी संख्या में, लेकिन जापान में नहीं ।

स्पेरो की एक छोटी सी घटना ने मुझे सोचने को वाध्य कर दिया । आखिर जापान चाहता क्या है ? स्पेरो का वियर हाल तो एक दूकान नहीं है लेकिन दूकानदारों में जो खूबसूरती होनी चाहिये, वह उसके व्यवहार में तो विल्कुल ही नजर नहीं आई । व्यवसाय को जापान ने शायद अपना धर्म नहीं बनाया है । अमरीकी उसे धर्म या इष्ट मानता है । भारत में भी मैंने पुराने जमाने से व्यवसाय में धर्म का पुट देखा है । सत्यवादी हरिश्चन्द्र के प्रकरण में मरघट का डोम अपने कर्म को ही इष्ट मानता है । उपनिषद् (शायद कठोपनिषद्) का मांस वेचने वाला वैश्य तुलाधार एक व्यवसायी का आदर्श है जिसके पास एक ऋषि अपने अहंकारी शिष्य को ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजते हैं । वैश्य तुलाधार अपने मांस कर्म को पूरी आस्था से करता है, खूवी से करता है ।

गणिकाओं को भी धार्मिक कथा में हम लोग सुनते हैं लेकिन जापान के व्यवसाय में वह कौन सा तत्व है जो उसे अपने आपके दायरे से वाहर नहीं निकलने देता । वह ग्राहक और ग्राहक में फर्क क्यों समझता है ? मेरे सामने विवाद का अवसर भी नहीं था । अगर रंग भेद, छुआछूत या इसी तरह की कोई वात होती तो मैं वहस भी करता । मैंने अपने पास के ग्राहक को अपनी भावना का संकेत दिया तो उसने जैसे सुना ही नहीं । जापानी इतना ठण्डा किस्म का इन्सान है कि उसके नजदीक पहुंचते ही वह सांस खींच लेता है ।

एक अमरीकी को मैंने जितना खुला पाया उतना ही जापानी को गठीला पाया । उसका जापानीपन भी रहस्य की ही वस्तु है । जापान के सिवाय वह किसी सत्ता का अस्तित्व ही शायद स्वीकार

नहीं करना चाहता। वह किसी खास मौके का इन्तजार कर रहा है और बड़ी बेचैनी से कर रहा है।

व्यवसाय के क्षेत्र में मैंने यहां गाइड देखे जो विदेशियों को शहर के दौरे करवाते हैं। टेपरेकॉर्डर की तरह बोलते जाते हैं। दूकानों में सेल्समेन देखे, बिना जरूरत भी मिठास दिखाते हैं लेकिन होठ फैला कर या बारीक आवाज में बोल कर। नाइट क्लबों की होस्टेस का एक पाठ्यक्रम यहां देखा, विवरण पढ़ा। वह पिलाते पिलाते ग्राहक को गाफिल कर डालेंगी। खुद भी साथ देंगी। क्लब उसे खास तरह की शिक्षा देता है और यह सिखाता है कि मनुष्य की तृष्णा को किस तरह भड़काया जाय और किस तरह उसे भुलावा दिया जाय। होटलों में रात की पगचम्पी के लिए सीखी-पढ़ी लड़कियां होती हैं जो आधी रात तक एक दर वसूल करती हैं और आधी रात के बाद ज्यादा। कमरे की दीवार पर एक कार्ड में दरें लिखी होती हैं, अगर आपकी मांग ज्यादा बड़ी हो तो न जाने उसे पूरी करने के लिए जापान की विधि क्या है लेकिन मेरा ख्याल है—आपकी तैयारी होनी चाहिए कीमत चुकाने की।

जापान में यह जो कुछ है, व्यवसाय-प्रेरित या अर्थ-प्रेरित नहीं है। निस्सन्देह व्यवसाय उसका एक रूप है, अभीष्ट नहीं। अभीष्ट कुछ और ही है और वह व्यवसाय की आड़ में छिपा हुआ है। मैंने ऊपर जिन दो घटनाओं का जिक्र किया है, उन्हें इसी अभीष्ट को खोजने के लिए आपके सामने रखा है।

जापान में समय समय पर सुरक्षा-सन्धि को भंग करने की आवाजें उठती हैं, उनको मैं उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि में रखना चाहता हूं। शायद जापान कुछ समझ में आ जाय।

—७ जुलाई, १९६८

क्योटो : नई बोतल, पुरानी शराब

जापान के चार शहरों को देखने के बाद यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि इस देश में जितनी मोटरें बनती हैं, वे आकार में छोटी अर्थात् भारत की फियेट के बराबर ही क्यों होती हैं। इसका एक कारण तो व्यापारिक हो सकता है, परन्तु दूसरा पहलू भौगोलिक भी है। जापान में ज़मीन की कमी और बड़े से बड़े व नये शहरों में पार्किंग की जगह की मुश्किल है, संकड़ी गलियां भी हैं। टोकियो हीरोशिमा, क्योटो व ओसाका में जापान का सम्पूर्ण शहरी जीवन देखा जा सकता है। टोकियो जापान की राजधानी और दुनिया का सबसे बड़ा शहर है। ओसाका दूसरा बड़ा जापानी शहर है जिसकी आबादी करीब पचास लाख है। हीरोशिमा सबसे नया शहर है जो अणुबम के द्वारा पूर्णतया नष्ट होने के बाद फिर से बसा है। इसकी आबादी करीब पांच लाख है। परन्तु यह जापान का सबसे सुन्दर शहर माना जाता है। इसके ठीक विपरीत क्योटो है

जो सबसे पुराना शहर है और इसकी आबादी कोई तेरह लाख है। क्योटो शहर में मैंने इतनी संकड़ी गलियां देखी हैं कि दोनों हाथ फैलाकर मैं आस-पास के मकानों को छू सकता था।

क्योटो शहर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जयपुर की तरह यहां मन्दिरों की भरमार है। मन्दिर या तो बौद्धों के हैं या शिन्टो सम्प्रदाय के हैं जिनकी संख्या दो हजार के आस-पास है। क्योटो में जमीन की बेहद किल्लत है लेकिन इन मन्दिरों के अहातों और बगीचों में इस शहर की करीब आधी जमीन घिरी हुई है। शहर में रिहायशी मकान खपरेलों के बने हुए हैं परन्तु व्यापारिक भवन बहुत ऊंचे ऊंचे बने हुए हैं। आधुनिक शैली के मकानों की तादाद बढ़ती जा रही है।

टॉवर बनाने का यहां बड़ा प्रचलन है। मैं जिस होटल [क्योटो टॉवर होटल] में ठहरा हूं उसका टॉवर ४०० फुट से भी ज्यादा ऊंचा है जिस पर चढ़ने के लिए लिफ्ट लगी हुई है। हर सवारी से १८० येन [आधा डॉलर] वसूल किया जाता है। यह न्यूयार्क की एम्पायर स्टेट बिल्डिंग की नकल है और टॉवर का खर्च निकालने का सरल तरीका है।

जापान के शहरों में बाजार हर तरह की चीजों से भरे पड़े हैं। पेट्रोल के सिवाय कोई ऐसी चीज नहीं जो जापान नहीं बनाता हो। कपड़े के निर्माण में यह देश बहुत बढ़ा चढ़ा है। अमरीका में मैंने कपड़े की ऐसी अच्छी किस्में बहुत कम देखी हैं जिसे खरीदने का लालच पैदा हो। भारतीय कपड़ा मुझे अमरीकी कपड़े के मुकाबले किसी तरह घटिया नहीं लगा लेकिन जापान के बारे में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। जापान की टक्कर का कपड़ा दुनिया में शायद कहीं बनता हो।

शादी के अवसर पर पहिनने के लिए जो किमोनो जापान में बनता है, उसकी कीमत आमतौर पर १५०० डॉलर होती है और धनी परिवारों में उसकी कीमत की कोई सीमा ही नहीं है। यह पार्चे की तरह के बने हुए कपड़े की पोशाक होती है और पहिनने में बहुत

ही शालीन दिखाई देती है। रेशम का प्रादुर्भाव जापान में चीन से हुआ है। किन्तु अव वह रेशम का कपड़ा वनाने में चीन को पीछे छोड़ आया है। क्योटो रेशम व पार्चे का केन्द्र समझा जाता है। यहां रेशम का म्यूजियम और रेशम बुनती हुई लड़कियों को देखा।

गजव की कारीगरी और वारीकी है जिसकी एक झलक हम जापानी तस्वीरों में देख लेते हैं। मिल के कपड़े में भी जापान ही दुनिया में भारत का सवसे वड़ा प्रतिद्वन्दी है और वह वाजिव है। कपड़े की किस्म, खूबसूरती व बनावट में सचमुच वह बहुत वढ़ा-चढ़ा है। जापानियों को खुद भी कपड़ा पहिनने का शौक है। जैसे राजस्थान में जोधपुरियों को और भारत में पंजावियों को। पहिनने का ढंग भी इनका बड़ा ही सुथरा है जिसमें तड़क भड़क के वजाय सादगी व शालीनता अधिक होती है। कीमत के लिहाज से कपड़ा यहां वहुत महंगा है।

कपड़े की तरह ही खाद्य वस्तुओं के निर्माण में जापान अब अमरीका से होड़ कर रहा है। यहां अभी अमरीका की तरह फूड स्टोर अलग से नहीं दिखाई पड़ते लेकिन डिपार्टमेण्ट में एक-दो नहीं हजारों किस्म की खाने की चीजें डिव्वों में मिलती हैं। अमरीका में डिनर पेकेट तक तैयार मिल जाते हैं। एक एक डिपार्टमेण्ट स्टोर में दर्जनों रेस्तरां होते हैं जिनमें अलग अलग किस्म का खानपान मिलता है। यहां वाजारों में भी हर कदम पर खानपान की दूकानों की भरमार है और दूकानें भरी रहती हैं। खानपान की दूकानों पर जापान में यह विशेषता देखने में आई कि उस दूकान में जो कोई चीज मिलती है उसकी हूवहू एक एक प्लेट तैयार करके शीशे के शो विण्डो में रख दी जाती है और उसके नीचे कीमत भी लिखी हुई मिलती है। भाषा के संकट को इन प्लेटों ने मेरे लिए आसान कर दिया था।

इसके वावजूद क्योटो के एक डिपार्टमेण्ट स्टोर में मेरे सामने एक वार दुविधा पैदा हो गई। एक रेस्तरां में प्लेट के बजाय डिव्वे रखे हुए थे। एक डिव्वे में समोसे की तरह की कोई तैयारी थी जिस

पर मैंने दो अंगुलियां रख कर वेटरेस को वतादीं । भीतर पहुंचा तो मेज पर दो डिब्बे आ पहुंचे और एक ट्रे भी रख दी गई जिसमें वांस की खपच्चियां भी रखी हुई थीं । मेरी ओर सव की आंखें लगी हुई थीं जिनमें कौतुक था । एक ऐसा ग्राहक जो अभी दो डिब्बे चट कर जायेगा । सवके सब अपनी हंसी को होठों में दबाये हुए मेरी ओर देख रहे थे, ग्राहक भी और रेस्तरां में काम करने वाली लड़कियां भी । मैं करीब एक मिनट तो चुप रहा । वाद में मैंने वेटरेस को बुलाया [इशारे से] और वताया कि मुझे सिर्फ दो टुकड़े चाहिए दो डिब्बे नहीं । कौतुक का स्थान एकदम हंसी ने ले लिया । रेस्तरां की हेड-वेटरेस को मेरे प्रति हमदर्दी भी हुई । वह खुद आई और डिब्बे उठा कर ले गई और दो-टुकड़े मेरी मेज पर आ गये । वे दरअसल चावल भरी गुंजियां थीं ।

स्वाद में जापानी भोजन बहुत अच्छा होता है और जापानियों का मानना है कि चीनी लोगों का भोजन का स्तर उनसे भी अच्छा है । जापानियों के खाने में नफासत और नाज भी कम नहीं होता । टोकियो में दिन भर की बस यात्रा के टिकिट में दुपहर का खाना भी शामिल होता है जो एक वाग के रेस्तरां में खिलाया जाता है । खाने का ठाट ही कुछ निराला है । खाना आप की मेज पर ही तैयार किया जायेगा । हर मेज पर हीटर लगे हुए हैं । हर मेज की अलग वेटरेस है और अपना सामान सजा कर ले आती है । मेज पर ही हाथोंहाथ खाना वनता जायेगा और आपकी प्लेटों में परोसा जाता रहेगा । खाने के कई कोर्स होते हैं । वेराइटी भी कई होती हैं । मसाले ज्यादा नहीं होते लेकिन सभी मसालों का स्वाद उसमें होता है, हल्का-सा नमक, आम तौर पर कम और मिठास ज्यादा होता है । जापानी रेस्तरांओं में भोजन वनाकर नहीं रखा जाता वल्कि ऑर्डर के वाद ही वनता है ।

जापानी आदमी को अपनी हर चीज पर गर्व है । अमरीकी आदमी को मैंने देखा, उसे अपनी चीज से खुशी है, लगाव है लेकिन

उस पर गर्व नहीं। जापानी में गर्व भी है और अपनी श्रेष्ठता की गहन छद्म अनुभूति भी है। वह जितना ही मौन एवं विनम्र है उसमें उतनी ही स्वाभिमान की मात्रा अधिक झलकेगी। जापानी अतिशय विनम्र और अतिशय संकुचित दिखाई देगा। जापानी बात बात में आभार प्रकट करेगा और बात बात में सिर झुका कर आपका अभिवादन करेगा। इसको वह अपनी श्रेष्ठ सभ्यता का लक्षण मानता है।

गैर-जापानियों के प्रति हर एक जापानी चौकन्ना रहेगा लेकिन उसकी मदद करने में कंजूसी नहीं दिखायेगा। एक जापानी को किसी तरह मैंने पकड़ा जो अंग्रेजी जानता था। मेरे साथ टोकियो से क्योटो तक सुपर एक्सप्रेस में आया था। विदा होते समय उसने मुझे जापानी भाषा में कुछ कहा तो मैंने उसे रोक कर उसका मतलब पूछा। मतलब था आपने हमेशा यात्रा में हमारा साथ दिया। हम आपका आभार मानते हैं। मैंने कहा—मैं तो एक ही वार साथ रहा हूं तो उसने कहा 'हम लोग सहयात्री को हमेशा का साथी मानते हैं। हमारे यहां ऐसा ही कहने का रिवाज है।' मैं जैसे दार्शनिक वन गया। मेरे कानों में जैसे मन्त्र गूंजने लगा – ओम् सहनाभवतु। मैं उसकी बात पर विचार करता हुआ विदा लेकर चल पड़ा। विचारता रहा – यात्री हमेशा का साथी होता है। यात्री की कोई पहचान नहीं होती, कोई नाम नहीं होता, कोई देश और धर्म नहीं होता। उसकी एक ही पहिचान है— यात्री। हम सभी यात्री हैं और साथ साथ यात्रा कर रहे हैं, चिर साथी हैं। क्या यही मतलब था उस जापानी सहयात्री का?

जापानी को अपनी भाषा पर भी वड़ा ही गुमान है जिस तरह हमारे वंगालियों को। मद्रास वालों के भाषा प्रेम में राजनीतिक पुट अधिक है, किन्तु बंगाली को अपनी भाषा से जो लगाव है वह सौन्दर्यगत है। जापानी में दोनों तरह का पुट मिलेगा। जापानी अपनी भाषा को देशाभिमान का प्रतीक भी मानता है और साहित्यिक सौन्दर्य का वाहन भी।

क्योटो में विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थियों से मेरी मुलाकात

हो गई। उनका कहना था कि वे अंग्रेजी क्यों बोलें ? जापानी भाषा किस माने में किस भाषा से कम है ? सब कुछ तो जापानी भाषा में है। काव्य, साहित्य, विज्ञान, वाणिज्य, धर्म-शास्त्र आदि आदि।

जापानी भाषा के समाचार पत्र 'क्योटो शिम्बुन' के कार्यालय में भी गया। क्योटो में इसी अखबार का मेहमान था। प्रेस को देखा। मुझे वहां के प्रबन्ध सम्पादक से बात करने में भी दुभाषिये की जरूरत पड़ी। वे अंग्रेजी का फूटा अक्षर भी नहीं जानते थे। अखबार देखा तो जापान के हिसाब से भले ही दूसरी श्रेणी का था, लेकिन भारत में उसकी टक्कर का अखबार नहीं। सात लाख की बिक्री है। करीब चौबीस पृष्ठ रोज छपते हैं। मैंने प्रेस भी देखा। करीब दो हजार पांच सौ तरह के टाइप काम में आते हैं। कम्पोजिंग की टेलीटाइप मशीन का बोर्ड देखा, दो हजार पांच सौ चाबियां, लेकिन रफ्तार में कमाल है। एक मिनट में साठ-पैंसठ शब्द निकाल देते हैं।

मशीन इतनी उन्नत कि अंगुली को रखना ही पड़ता है, दबाना नहीं पड़ता। कम्प्यूटर की तरह चलती हैं। जापानी भाषा की लिपि चीनी है और अखबार के लिए कम से कम दो हजार पांच सौ अक्षरों की जरूरत पड़ती है। अक्षर क्या हैं, चित्र हैं। अभ्यास में बड़ी देर लगती है लेकिन कहते हैं कि बोलने में जापानी भाषा बड़ी सरल भी है और मधुर भी है। सुनने में मुझे भी ऐसी ही लगी। जापानी लोग बहुत छोटे-छोटे वाक्यों में बोलते हैं।

अर्थ-तन्त्र में जापान पूंजीवादी है, बिल्कुल अमरीकी ढंग का। आर्थिक मामलों में सरकार का हस्तक्षेप यहां कतई नहीं है लेकिन भारत की जैसी नारे बाजी यहां नहीं है। हर जापानी स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था का कट्टर हिमायती है। अमरीका के ढंग की ही अर्थ-व्यवस्था है लेकिन जापानी अपने आपको अमरीका का पिछलग्गू नहीं मानता, बल्कि प्रतिद्वन्दी मानता है। देश में कुल सात तेल कम्पनियां हैं, जिनमें से पांच अमरीकी हाथों में है। वह भी इसलिए कि जापान को पेट्रोल

विदेशों से मंगवाना पड़ता है ।

पेट्रोल के अलावा अन्य उद्योगों में कहीं अमरीकी पूंजी का नियन्त्रण नहीं है । सब जगह तो मुख्य मुख्य पदों पर जापानी लोग नियुक्त हैं और सभी कम्पनियों के अधिकांश शेयर जापानियों के हाथ में हैं । पूंजी या तो वैंकों की लगी हुई है या अमरीकी । लेकिन अमरीकी पूंजी अल्पमत में है । जापानी लोगों का कहना है कि उन्होंने अपनी सुविधा के लिए पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को स्वीकार किया है और तेईस साल के भीतर भीतर ध्वस्त-प्राय: देश को वापिस आवाद कर लिया है । देश में बेरोजगारी नाम मात्र को भी नहीं, अशिक्षा नहीं और भुखमरी नहीं ।

औद्योगिकरण पर जवर्दस्त जोर है । कृषि पर पूरी तरह निर्भर करने वाली आवादी केवल नौ प्रतिशत रह गई है । कृषि कर्म में योगदान करने वाली कुछ आवादी वीस प्रतिशत है । औसत खेत का आकार ढाई एकड़ है किन्तु पैदावार में दुनिया से आगे । कृषि का भी औद्योगिकरण हो रहा है । विजली सव जापानी गांवों में है । शहरी आवादी तेजी से वढ़ती जा रही है । देश की दस करोड़ आवादी में से दो - ढाई करोड़ आवादी सिर्फ छ: शहरों में हैं ।

जापान ने अपनी शीघ्र समृद्धि एवं उन्नति के लिए अमरीको पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को अपनाया और उसे सफलतापूर्वक जीवन में उतार कर भी दिखाया, परन्तु अपनी राजनीति में वह स्वतन्त्र रहा है । वियतनाम युद्ध में उसने अमरीका को जापानी हवाई अड्डों का प्रयोग नहीं करने दिया । जापान के कुछ द्वीपों पर अमरीका का कव्जा युद्ध के वाद से ही है और वहां हवाई अड्डे कायम हैं । जापानी उद्योगपतियों को अमरीकी कम्पनियों से सहयोग लेने या साझेदारी करने की खुली छूट है लेकिन जापानी कम्पनियों का नियन्त्रण स्वदेशी हाथों में है और स्वदेशी पूंजी का वहुमत है । जापान ने अर्थ-नीति की अपने आर्थिक लाभ की दृष्टि से ही रचना की और राजनीति या विदेश नीति को उससे स्वतन्त्र रखा और निभाया ।

जापान में आजकल संसद के उच्च सदन [हाउस ऑफ काउन्स-लर्स] के चुनाव चल रहे हैं। प्रचार पूरी गर्मी पर है। कारों पर लाउड-स्पीकर लगाकर लोग जगह जगह भाषण देते हैं। चुनाव प्रचार में ज्यादातर आन्तरिक मुद्दे उठाये जा रहे हैं, खास मुद्दा मंहगाई है। राजनीतिक दल मंहगाई कम करने के लिए तरह तरह के वायदे कर रहे हैं। एक दल ने तो तीस प्रतिशत मंहगाई कम करने तक की बात कही है, लेकिन वह दल इतना छोटा है कि कभी सत्ता में आने ही वाला नहीं है।

चुनाव प्रचार में भ्रष्टाचार भी एक मुद्दा है, किन्तु दूसरी श्रेणी के वाम पन्थी दल यह भी मांग कर रहे हैं कि बड़ी कम्पनियों को आपस में विलीन न होने दिया जाय क्योंकि इससे एकाधिकार बढ़ेगा। आज कल प्रदर्शनों का काफी जोर है। विद्यार्थी आये दिन प्रदर्शन कर रहे हैं। उत्तरी कोरिया के लोग अपने देश लौटने के लिए रोजाना प्रदर्शन कर रहे हैं, किन्तु उन्हें जाने नहीं दिया जाता। दोनों देशों में जन-शक्ति की कमी है जिससे खींच तान चल रही है।

— ८ जुलाई, १९६८
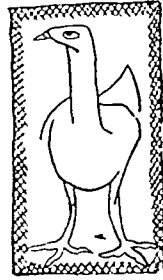
फार्मूसा : साढ़े सात एकड़ की सीमा में

राष्ट्रवादी चीन [फार्मूसा] में कृषि की सफलता भूमि सुधारों के साथ जुड़ी हुई है और भूमि सुधारों की शुरुआत राजस्थान की ही तरह यहां १९४३ में शुरू हुई। राजस्थान का निर्माण १९४९ में हुआ और तभी राष्ट्रवादी चीन का भी प्रार्दुभाव हुआ अर्थात् इस द्वीप ने एक नये देश का नाम ग्रहण किया और नये सिरे से इसका निर्माण शुरू हुआ। फार्मूसा में पंचवर्षीय योजना के वजाय चारसाला योजना के आधार पर आर्थिक कार्यक्रम चलाया जाता है। अब तक चार योजनाएं पूरी हो चुकी हैं और उनमें कृषि की पैदावार दुगुनी कर ली गई है। फार्मूसा के निर्यात व्यापार का मुख्य अंश कृषि है। फार्मूसा न केवल अपने खाने लायक पैदा कर लेता है, बल्कि भारी मात्रा में खाद्य पदार्थों का निर्यात करता है। चावल, शक्कर डिब्बाबन्द फल व फलों के रस, मांस, मछली आदि चीजें दूर देशों को भेजी जाती हैं।

फार्मूसा के किसान को समृद्ध अथवा सम्पन्न तो

नहीं कहा जा सकता है, परन्तु यह अवश्य कहूंगा कि खाना, कपड़ा मकान व शिक्षा की आवश्यकताओं से वह सचमुच मुक्त हो गया है और अब समृद्धि की ओर जा रहा है। इस समय हर किसान के पास अपना छोटा-मोटा पक्का मकान है, हर परिवार में १९६६ के सर्वेक्षण के अनुसार औसतन दो साइकिलें हैं, हर एक परिवार के पास रेडियो है, तीन में एक किसान के पास मोटर साइकिल है और कुछेक के पास टेलीविजन सेट भी हैं।

फार्मूसा जाने का कार्यक्रम मैंने टोकियो में ही बना लिया था। अतः टोकियो पहुंचते ही पहला काम मैंने फार्मूसा के लिए वीसा बनवाने का किया और यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्रवादी चीन के टोकियो स्थित दूतावास के प्रेस अटैची ने मुझे हाथों-हाथ वीसा दिला दिया। यह मालूम पड़ते ही कि मैं भारत का नागरिक हूं, वह दौड़ा आया। मेरे पास हवाई जहाज का टिकिट तो था ही। मैंने यूरोप के बजाय प्रशान्त महासागर के मार्ग से वापिस आने का विकल्प चुना था। मैं चाहता था कि एशिया के कुछ देशों का अवलोकन करूं, इसलिए मैंने अपना टिकिट भी खुला ही रखा था। हर जगह मैंने अलग से बुकिंग करवाया। मेरा कार्यक्रम जापान, फार्मूसा व हांगकांग देखने का है। जापान में एक सप्ताह घूम चुका हूं। अब फार्मूसा देख रहा हूं। अभी ताइपेह [राजधानी] व औद्योगिक नगर कोशंग देखा है। कुछ गांव भी देखे हैं। यहां सरकार के सूचना विभाग ने मेरी बड़ी सहायता की। अतः फार्मूसा को देखना मेरे लिए आसान हो गया। करीब एक सप्ताह यहां रह कर मैं हांगकांग चला जा रहा हूं और वहां सिर्फ एक दिन रहूंगा। बहुत छोटा-सा द्वीप है। इस तरह एशिया के पूर्व की एक तस्वीर पूरी हो जायेगी।

फार्मूसा की कुल आबादी करीब १३० लाख है और क्षेत्र फल करीब तेरह हजार वर्ग मील है। ताइपेह की आबादी करीब तेरह लाख है। बड़े बड़े पांच शहर हैं जिनकी आबादी तीन लाख से सात लाख तक की है। देश में बौद्ध, कैथोलिक व प्रोटेस्टेण्ट ईसाई रहते

हैं। देश की एक तिहाई जमीन ऐसी है जिसमें खेती की जा सकती है। दो तिहाई जमीन में या तो पहाड़ हैं या जंगल हैं। जमीन का एक चप्पा भी कहीं खाली पड़ा हुआ नहीं है। एक तिहाई खेती की जमीन को इस तरह काम में लिया गया है कि पड़त जमीन जैसी कोई क़िस्म यहां के रेवेन्यू रेकॉर्ड में है ही नहीं।

फार्मूसा में लगभग छियालीस प्रतिशत लोग खेती करते हैं और जमीन का औसत प्रति परिवार एक हेक्टर अर्थात् ढाई एकड़ है। वैसे यहां सीलिंग कानून भी लागू है जिसके अनुसार तीन हेक्टर [साढ़े सात एकड़] से ज्यादा जमीन कोई रख ही नहीं सकता। सीलिंग कानून १९५५ में बना और १९५६ में ही लागू कर दिया गया। इस पृष्ठभूमि में अगर राजस्थान के सीलिंग कानून को रखें तो तुरन्त ही समझ में आ जायेगा कि हमारे यहां भूमिहीनों की समस्या कितनी लम्बी मियाद तक बनी रह सकती है।

फार्मूसा में १९५३ में भूमि सुधार शुरू हुए। पहला कदम यह उठाया गया कि लगान की एक दर बांध दी गई। दूसरा कदम यह कि जोतने वाले को जमीन का मालिक बना दिया जाय। इस कार्य-क्रम के अन्तर्गत सरकार के पास जो भी पड़त जमीन थी वह भूमि-हीनों को बांट दी गई। फिर भी भूमिहीन बचे रह गये तो बड़ी जोतों को कम करके जमीन उनको दिला दी गई। जमीन की कीमत का मापदण्ड मोटे तौर पर यह रखा गया कि जिस जमीन में फसल से एक साल में जितनी कुल पैदावार होती थी, उसका निचत्तर प्रति-शत जमीन की कीमत के रूप में तय कर दिया गया और भूमिहीन को यह रियायत दे दी गई कि वह दस सालों में बीस छः माही किश्तों में जमीन की कीमत चुका दे। कीमत भी धान और शकरकन्द के रूप में चुकाई जा सकती थी जिसकी कीमत तय करने के लिए एक कमेटी बनादी गई।

मुझे यहां सरकारी सूत्रों ने बताया कि कुछेक को छोड़ कर सभी किसानों ने १९६५ तक अपनी पूरी किश्तें चुका दी थीं। जिन

लोगों ने नहीं चुकाई वे लोग हैं जिनको राहत दी गई थी। उन लोगों से फसलें खराब हो जाने के कारण सरकार ने किश्तें वसूल नहीं की थीं और मियाद बढ़ा दी थी। इस तरह के मामलों की तादाद एक प्रतिशत भी नहीं है। भूमि सुधारों में सरकार आजकल चकबन्दी के काम में लगी हुई है। लगभग एक तिहाई जमीन की चकबन्दी हो चुकी है जिसका नमूना भी मैंने एक गांव में देखा। सचमुच ही खेतों की शक्लें निखर आई हैं। एक समान आकृति के चौकोर खेत जिनका संभालना और उपयोग करना अब बहुत आसान बन गया है और खर्च कम हो गया है। सरकार का आखिरी कदम होगा कि जिन किसानों के पास अब भी तीन हेक्टर से ज्यादा जमीन बनी हुई है, उसको खरीद लेना। इस तरह की जमीन सारे देश में सिर्फ सित्तर हजार हेक्टर है और वह इसलिए है कि सीलिंग कानून लागू होने के समय किसान अपने हाथों उसमें काश्त करते थे। अभी फार्मूसा में बारह प्रतिशत किसान ऐसे हैं, जो जमीन के मालिक नहीं हैं, बल्कि दूसरे की जमीन किराये पर लेकर क़ाश्त करते हैं। उन काश्तकारों को यह सित्तर हजार हेक्टर ज़मीन बांटी जायेगी।

फार्मूसा के राजस्व एवं कृषि विभाग के अधिकारियों से मैं मिला। फार्मूसा में मेरा मुख्य प्रयोजन यहां की कृषि व्यवस्था को देखने का ही था, इसलिए मैंने सभी तरह के सूत्रों को टटोला। ताई-पेह के कृषि कॉलेज में भी गया। खेतों और खेती पर निर्भर कारखाने भी देखे। सभी लोगों का यह मानना है कि भूमि सुधारों की द्रुत गति ने किसान का मनोबल बहुत बढ़ाया। यह बात सही भी है। हम अपने अनुभव से समझ सकते हैं। जागीरदारी उन्मूलन के कारण किसानों को काफी राहत मिली। यह बात दूसरी है कि अभी तक कृषि की दिशा में हम उतने नहीं बढ़ पाए।

जितनी तेजी से यहां भूमि सुधार किये गये, उतनी तेजी से कृषि उन्नति नहीं की गई। अभी तक फार्मूसा में कृषि का मशीनीकरण नहीं

हुआ है। खेत भी छोटे हैं। सीलिंग में भी यन्त्रीकृत खेतों का कोई प्रावधान नहीं है। इसके अलावा एक कारण यह है कि फार्मूसा में उद्योगों के प्रसार की ज्यादा सम्भावना नहीं है। क्योंकि यहां उतने साधन नहीं हैं। जो उद्योग यहां बढ़ सकते हैं, वे ज्यादातर कृषि पर आधारित हैं। फार्मूसा में लोहा और तेल नहीं निकलता। खनिज पदार्थों का यहां अभाव है, अतः इंजीनियरिंग व रासायनिक उद्योग ज्यादा नहीं पनप सकते। फार्मूसा की जनशक्ति को खेती से हटना हितकर नहीं है अतः खेती में बड़े पैमाने पर यन्त्रीकरण पर जोर नहीं दिया गया। फिर भी यहां छोटे ट्रेक्टरों का एक कारखाना है, जो सात हॉर्स पावर के ट्रेक्टर बनाता है। लगभग एक तिहाई किसानों के पास यही ट्रेक्टर हैं।

डीजल ऑइल से चलने वाले हलों का यहां प्रचार काफी है। बिजली सब गांवों में पहुंचा दी गई है, सड़कें भी सब जगह हैं। खेती में यहां सबसे ज्यादा जोर बीजों की किस्में सुधारने पर है और रासायनिक खाद पर।

रासायनिक खाद का उत्पादन यहां बहुत होता है और हर एक किसान उसका उपयोग करता है। चावल का उत्पादन प्रति हेक्टर [ढाई एकड़]पर औसतन ४००० किलो होता है अर्थात् एक एकड़ में डेढ़ टन से कुछ ज्यादा। एक किसान की औसत आय १९६६ में १८० अमरीकी डॉलर थी और पिछले साल छः प्रतिशत बढ़ी है। साठ प्रतिशत किसान खेती के अलावा, दूसरे काम भी करते हैं। अब एक नई पद्धति पर जोर दिया जा रहा है, वह यह कि हर एक किसान साल में चार फसलें पैदा करे। इसी साल यह कार्यक्रम हाथों में लिया गया है और पिछले पांच महीनों में गांव गांव में इसको लागू किया गया है। यह कार्यक्रम बड़ा लोकप्रिय हुआ है। अनुमान है कि १९६८ में किसान की औसत आय दो सौ पचास अमरीकी डॉलर हो जायेगी।

खेती में रेडियो आइसोटोप का बड़ा उपयोग हो रहा है। आइ-

सोटोप से फसल के जीवट का पता लगाया जाता है, कोड़ों से बचाने के लिए गवेषणा होती है और खाद का समुचित उपयोग करने में सहायता ली जाती है। विश्वविद्यालय के रिएक्टर से आइसोटोप बनाकर अन्य देशों को भी भेजे जाते हैं। अफ्रीका के देशों में फार्मूसा के लगभग ५०० कृषि विशेषज्ञ उन देशों के किसानों को खेती की नई विधियां सिखाने के लिए गये हुए हैं। यहां भी देश-देश से किसानों व कृषि क्षेत्र में काम करने वाले छात्रों व अधिकारियों को छात्र-वृत्तियां देकर बुलाया जाता है। वे एक केन्द्र में रहते हैं और शिक्षा पाते हैं। इस समय ताइपेह में चौपन विदेशी प्रशिक्षार्थी कृषि का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

एक पिद्दी सा देश है फार्मूसा जिसे ताइवान भी कहते हैं। भूमि के हिसाब से जनसंख्या बहुत ज्यादा है। संख्या के लिहाज से ताइ-वान का जापान के बाद दूसरा स्थान है जहां कम जमीन पर ज्यादा लोग रहते हैं। खेत भी बहुत छोटे हैं। एक किसान से यहां अपेक्षा की जाती है कि वह चवदह व्यक्तियों के खाने लायक पैदा करे। खुद खाकर ताइवान अपनी पैदावार का निर्यात करता है। कच्चा माल भी और तैयार माल भी। पिछले साल का खाद्य-पदार्थों का कुल निर्यात करीब चौंतीस करोड़ डॉलरों का था। प्रति व्यक्ति करीब पच्चीस डॉलर का खाद्य-पदार्थ यह देश बाहर भेज देता है।

— ६ जुलाई, १९६८
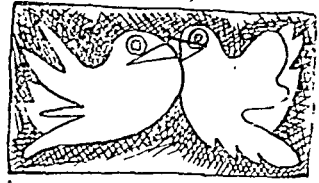
पीकिंग या ताइपेह : चीन की खिड़की

राष्ट्रवादी चीन [फार्मूसा या ताईवान] के नेताओं का न केवल यह सपना है वल्कि दावा है कि लाल चीन के माओं की मुराद जल्दी ही मिट्टी में मिल जायेगी और चीन में फिर एक क्रांति होगी जिसमें राष्ट्रवादी एवं शान्तिवादी शक्तियों की विजय होगी। वे दो राष्ट्र या चीन के अस्तित्व को कड़ाई से अमान्य करते हैं। जिस तरह से माओत्सेतुंग करता है।

ताईवान के नेताओं से तो मैं नहीं मिला। मैं अपने दौरे में किसी भी देश के नेताओं से नहीं मिला। मेरा यह मानना है कि राजनेता जो कुछ भी वोलेंगे, वह सार्वजनिक उपयोग की दृष्टि से वोलेंगे। उनके मन्तव्यों को मैं भारत में बैठा भी जान सकता हूं। इंगलैण्ड, अमरीका, जापान और फार्मूसा में आवश्यकता पड़ने पर प्रशासनिक अधिकारियों से अवश्य मिला हूं। अपना काम निकालने के सिवाय अगर वातचीत का अवसर भी मिला तो मैंने जरूर वात की और उनकी वातचीत को मैंने आम तौर पर सरकार के आम रवैये के साथ जोड़ा है।

मैंने ताइपेह के केन्द्रीय सूचना विभाग के मुखिया जिमिव्हे से भेंट की। जिमिव्हे न केवल एक सरकारी अफसर हैं बल्कि रायटर के विशेष संवाददाता भी रहे हैं और चाइना न्यूज [दैनिक] के प्रकाशक भी। इन महानुभाव ने बताया कि द्वितीय महायुद्ध के दौरान भी वे पीकिंग में [यहां पीपिंग कहते हैं] सूचना मन्त्रालय के सलाहकार थे और महात्मा गांधी ने जब जवाहरलाल नेहरू को अपना विशेष दूत बना कर जनरल च्यांग काई शेक से मिलने पीकिंग भेजा था तब नेहरूजी इनसे अपने कार्यालय में मिले थे। व्हे नेहरूजी के दौरे में उनके साथ ही रहे थे। व्हे ने बताया कि उन्होंने १६६४ में फिर एक बार नई दिल्ली में नेहरूजी से भेंट की थी। प्रधान मन्त्री नेहरू संयुक्त राष्ट्रसंघ के सूचना सम्मेलन का उद्घाटन करने आये थे। कुछ ही महीनों बाद मई में उनका स्वर्गवास हो गया।

मैंने व्हे की भेंट में काफी दिलचस्पी ली। उन्होंने बताया कि किस तरह जनरल च्यांग पर महात्माजी व नेहरूजी ने भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन करने के लिए दबाव डाला था। ज. च्यांग भारत की स्वतन्त्रता के शुरू से ही समर्थक थे, परन्तु भारत के नेताओं का यह आग्रह था कि स्वतन्त्रता युद्ध के दौरान ही मिल जाय और ज. च्यांग ब्रिटेन पर यह दवाव डालें। ज. च्यांग ने वैसा ही किया। परन्तु ब्रिटेन को उनका यह रवैया अच्छा नहीं लगा। ज. च्यांग के वक्तव्य के जवाब में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल ने यह टीका की थी—'मैं ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने वाला अपनी सम्राज्ञी का पहला प्रधानमन्त्री नहीं बनना चाहता।'

व्हे की बातचीत मुझे अफसराना तरीके की नहीं लगी इसलिए मैंने भी दिलचस्पी ली और भारत फार्मूसा की वर्तमान स्थिति के बारे में सवाल किये। पीकिंग के बारे में उनकी कुछ जानकारी चाही और अतीत के कुछ प्रसंग भी छेड़े। उन्होंने बताया कि भारत ने राष्ट्रवादी चीन के बजाय माओत्से तुंग की सरकार से दौत्य सम्बन्ध स्थापित किये इससे ताइवान का शासन खिन्न है, परन्तु लाल चीन

ने मीठी वातें करके तिब्बत को हथिया कर भारत के साथ जो सुलूक किया उससे राष्ट्रवादी चीन के नेताओं की सहानुभूति भारत के साथ वढ़ी है ।

मुझ से पूछे विना नहीं रहा गया और पूछ ही वैठा—आखिर च्यांग काई शेक की पीकिंग सरकार का पतन क्यों हुआ ?

'आप यही कहेंगे कि वह सरकार भ्रष्ट थी । कम्यूनिस्टों ने कामयावी हासिल करके यही दोस्ताना प्रचार कर रखा है और लोग ऐसा ही मानते भी हैं लेकिन जरा विस्तार में जाइये तो पता लग जायेगा कि चीन में जो शासक गुट है वह लुटेरों के गिरोह के सिवाय कुछ नहीं है । जापान के विरुद्ध चीन के वफादार सिपाहियों की तरह लड़ते लड़ते उनकी महत्वाकांक्षा वढ़ गई । युद्ध ही में उन्होंने अपना जाल फैलाया । युद्ध की समाप्ति पर सोवियत रूस ने मञ्चूरिया में उनको अपना सारा शस्त्रागार सौंप दिया । जो जापानी हथियार रूस ने हथियाये थे, वे कम्यूनिस्टों को दे दिये । इधर चीनी सेना भी नौ साल तक लड़ते लड़ते पस्त-हिम्मत और करीव करीव निहत्थी वैठी थी । यह सच है कि चीनी जनता भी वर्वाद हो चुकी थी । सिक्के की कीमत गिर गई थी ।

माओ की महत्वाकांक्षा को न केवल रूस का वल्कि अमरीकी सेनापति जार्ज मार्शल का भी समर्थन मिला । च्यांग सरकार ने जव अमरीकी जनरल से सहायता मांगी तो जार्ज मार्शल ने यह शर्त ही रख दी कि लाल सेना का राष्ट्रवादी सेना के साथ एकीकरण कर दिया जाय । अगर जोर देकर इस जनरल को च्यांग काई शेक ने अमरीका की चीनी कमान से हटवा न दिया होता तो चीन में वहुत पहिले ही क्रान्ति या वगावत हो जाती ।'

मैंने फिर पूछा—सारी जनता कम्यूनिस्टों के पीछे किस तरह हो गई ? व्हे ने कहा कि यह सोचना ही ठीक नहीं है कि जनता उनके पीछे हो गई । वे हथियारों के वल पर लूटपाट करते हुए वढ़े हैं । भूखी जनता को उन्होंने सिर्फ भुलावा दिया है नारे लगाकर ।

यह सब्ज बाग दिखाये कि क्रान्तिकारी सरकार उनको सच्चा राजा बना देगी लेकिन अब लेने के देने पड़ रहे हैं। एक तरफ जनता रो रही है । और दूसरी तरफ शासकों के सभी गुट एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। जनता का वहां अस्तित्व ही नहीं है।

मुझ से उन्होंने उलट कर पूछा कि अगर सरकार ही भ्रष्ट होती तो भ्रष्टता ताइवान में कहां चली गई ? ताइवान को अच्छी तरह घूम कर देखिए और यह जानिए कि उसी सरकार ने बीस वर्षों में यहां क्या किया है। कुछ ऐतिहासिक परिस्थितियां थीं जिनमें च्यांग काई-शेक के स्थान पर दूसरा भी कोई होता तो उसका यही अनुभव होता। आप ही बताइए महीने भर की चीन की लड़ाई के बाद भारत सरकार की क्या स्थिति थी ? चीन तो नौ साल तक लड़कर बर्बाद हो चुका था। तिस पर कुछ महत्वाकांक्षियों को विदेशी ताकतों का सहारा मिल गया। अब तो रूस भी पछता रहा है। अभी हाल में रूस ने उस शस्त्रागार की सूची प्रकट की है जो उसने कम्यूनिस्टों को दे दिया था।

रूस अब उनको बेवफा बता रहा है। अमरीका की आंखें तो बहुत पहिले ही खुल गई थीं । वह हमारी मदद पर है । सांस लेने का अवसर मिलते ही हमने ताइवान का कायापलट कर दिया । हमारे नेता तो आज भी दावा करते हैं, विश्वास रखते हैं कि लाल चीन का यह माहौल कायम रहने वाला नहीं है। हम लोग आज की परिस्थिति को पहिले से ज्यादा अच्छा समझते हैं।

व्हे से भेंट करने के बाद मैं करीब करीब पूरा ताइवान घूम चुका हूं। लाल चीन का क्या भविष्य होगा, इसके बारे में तो प्रत्यक्ष जानकारी के बिना कुछ कहना अनधिकार चेष्टा है, परन्तु मैं इतना जरूर महसूस करता हूं कि पूर्वी एशिया में ताइवान अपने आप में एक स्वतन्त्र शक्ति बनता जा रहा है, उसकी अपनी एक हस्ती है। इसे पिद्दी समझ कर दर गुजर नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि हमको तो इस पर आंख रखनी चाहिए। मेरी राय में लाल चीन को देखने के लिए ताइवान ज्यादा अच्छी, ऊंची और खुली हुई खिड़की

है । पीकिंग स्थित भारतीय दूतावास को हमारे विदेश मन्त्री ने एक खिड़की कहा था । दर असल वह खिड़की काल कोठरी से ज्यादा उपादेय नहीं है ।

लाल चीन को देखने के लिए खिड़की या तो हांगकांग ही है या ताइवान ही है । इसमें भी ताइवान ज्यादा मौजू होगा । ताइवान के साथ हमारे दौत्य सम्वन्ध नहीं हैं , पीकिंग के साथ हैं । पीकिंग के साथ अब हमारे व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्वन्ध नहीं रहे । हमें उन सम्भावनाओं को खोजना चाहिए कि हम ताइवान के साथ कारोवार एवं सांस्कृतिक सम्वन्ध शुरू कर सकें । मेरी राय में ऐसा करना अनुचित नहीं होगा । दुनिया में ऐसे कई देश हैं जो दौत्य सम्वन्ध नहीं रखते, परन्तु व्यापारिक सम्वन्ध रखते हैं । ब्रिटेन, अमरीका , कनाडा , चैकोस्लोवाकिया , यूगोस्लोवाकिया आदि देश इस तरह के सम्वन्ध रखते हैं । ताइवान से इस तरह के सम्वन्ध स्थापित करने में अगर कोई मानसिक या अन्य किसी तरह की वाधा हो तो उसे दूर किया जाना चाहिए ।

एशियाई देशों के वारे में हमें अपनी नीति ज्यादा लचीली और उदार रखनी चाहिए । यह हमारे ही यश को बढ़ाने वाली नीति होगी । भारत के वाहर झांकने के वाद मैंने यह वरावर महसूस किया है—खासतौर पर एशिया के पूर्व में घूमने के बाद । मैंने पाया कि भारत ने पश्चिम में जितने हाथ पांव फैलाये हैं उतने पूर्व में नहीं ।

पूर्व की उपेक्षा या एशिया में उदासीनता वरतना हमारे लिए ठीक नहीं है । एशियाई देश में भारत की जो अपील हो सकती है , वह अन्य देशों में नहीं हो सकती । हमें अपने पुराने इतिहास और दीर्घजीवी व्यक्तित्व का ज्यादा लाभ उठाना चाहिए और वह एशिया में ही सम्भव है ।

मेरी अपनी यह धारणा थी कि जापान और ताइवान अपनी अर्थ व्यवस्था के लिए अमरीका पर निर्भर करते हैं और अमरीका के पिछलग्गू हैं , इसलिए इनकी समृद्धि वढ़ी है । इन देशों में एक एक

सप्ताह घूमने के बाद मैंने पाया कि दोनों ही देश किसी बाहरी सत्ता पर पूर्णतः निर्भर नहीं करते , आर्थिक विकास में तो वे बिल्कुल ही स्वावलम्बी हैं। यों तो भारत को भी अमरीका से कम सहायता नहीं मिली है। उसी अनुपात में इन देशों को भी अमरीकी सहायता अवश्य मिली है। दोनों ही देश अपने अपने हितों के कारण अमरीका से बंधे हुए हैं। जापान ने अमरीका के साथ सुरक्षा-सन्धि कर रखी है जिस पर हर दस साल के बाद पुनर्विचार होता है। जापान की अपनी विशिष्ट परिस्थिति में मुझे उसकी यह नीति सफल दिखाई दी और उसने उसका लाभ उठाया अपनी समृद्धि को बढ़ाने में। वह अब किसी भी समय सुरक्षा-सन्धि को भंग कर देने की स्थिति में है। यह बात दूसरी है कि वह इसी नीति को चालू रखे।

हाल ही, मेरी मौजूदगी में ही उसने अमरीका से अपने कुछ द्वीप वापिस ले लिए हैं और ओकीनावा की वापसी मंजूर करवा ली है। सोवियत रूस से भी वह ऐसी ही मांग कर रहा है। ताइवान भी लाल चीन से अपनी सुरक्षा के लिए उतनी ही मांग करता है जितनी कि आवश्यक है। वह अपने अर्थ-तन्त्र में स्वतन्त्र है।

अगर हम इस देश को अमरीकी पिछलग्गू मानकर व्यवहार करते हैं तो वह हमारी विदेश नीति की खामी है। ताइवान के अखबार अपने देश का कोई मुद्दा उठते ही अमरीका को खरी खरी सुनाते हैं। अमरीका के कुछ क्षेत्रों ने लाल चीन पर पुनर्विचार करने की बात उठाई तो उनके खिलाफ ताइवान में जबर्दस्त वातावरण बनाया जा रहा है। हम इजराइल से व्यवहार करने में यह सोचते हैं कि अरब देश नाराज हो जायेंगे और ताइवान से व्यवहार करने में यह सोचते हैं कि लाल चीन ज्यादा बौखला उठेगा या सोवियत रूस ठीक नहीं समझेगा। जो भी कारण हो, हम अपने विचार जगत में स्वतंत्र नहीं हैं और अपने व्यक्तित्व को किसी न किसी के आगे झुका कर चलते हैं। यह तटस्थता भी स्वतन्त्रता की निशानी नहीं है।

— १० जुलाई, १९६८
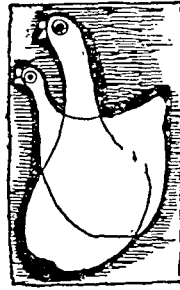
हांगकांग के हटवाड़े की एक सैर

आइये, हटवाड़े की सैर करिये। शनिवार को जयपुर के गणगोरी बाजार में लगने वाला हटवाड़ा नहीं, बल्कि हांगकांग में हर रोज लगने वाला दुनिया का हटवाड़ा। हटवाड़ा इसलिए कहता हूं कि हर देश अपना माल बनाकर बिक्री के लिए यहां भेजता है और पिन से लेकर जहाज तक खरीदा जा सकता है। दुनिया भर के सिक्के यहां खरीदे जा सकते हैं। जिनका यहां कानूनी तौर पर कारोबार होता है। हर सिक्के का भाव बदलता रहता है। तीन जुलाई को भारत के सिक्के का भाव था, एक डॉलर के ग्यारह रुपये। हां, तो हांगकांग एक हटवाड़ा है।

एक छोटा सा जमीन का टुकड़ा जिसका क्षेत्रफल करीब तैंतीस वर्ग मील है और उस पर चालीस लाख की आबादी रहती है। सिर्फ हटवाड़े की वजह से। यों तो नई और पुरानी बस्तियां मिलाकर करीब ३६५ वर्ग मील

के घेरे में हैं, लेकिन मुख्य आवादी तैंतीस वर्ग मील में ही है। जो नई वस्तियां हैं, वे करीव करीव वीरान हैं। वहुत कम आवादी इन वस्तियों में रहती है। अधिकांश आवादी हांगकांग और कोलोन में रहती है। दोनों शहरों को एक खाड़ी जोड़ती है और नावों से आना जाना होता है। कोलोन का क्षेत्रफल पौने चार वर्ग मील है और वह लाल चीन के एक नन्हे से छोर पर वसा हुआ है। दूसरी ओर हांगकांग एक द्वीप पर स्थित है।

१८९९ में अंग्रेजों ने इस द्वीप एवं भू-खण्ड को चीन से इजारे पर लिया था और वहां आज भी अंग्रेजों का प्रभुत्व है।

हांगकांग के प्रति अंग्रेजों ने सचमुच ही दूरदर्शी नीति अपनाई है और इसे स्वतन्त्र व्यापारी केन्द्र वना रखा है। हांगकांग में आने वाले या यहां से जाने वाले किसी माल पर कस्टम या निर्यात कर नहीं लगता। यही रहस्य है कि हांगकांग दुनिया भर के लोगों के लिए हटवाड़ा वन गया है और इतना घना वसा हुआ है। मैंने अंग्रेजों की नीति को दूरदर्शी इसलिए वताया कि हांगकांग में खेती या औद्योगीकरण की कोई गुन्जाइश नहीं है क्योंकि यहां साधनों का या भूमि का अभाव है। यहां सिर्फ खरीद-बेच हो सकती है अर्थात् हटवाड़ा लग सकता है और अंग्रेजों ने ऐसा ही किया है जिससे इस वीरान भू-खण्ड का भाग्य जाग उठा और महत्व वढ़ गया।

हांगकांग को पूर्व का मोती कहा जाता है और समसुच वह ऐसा ही है। वहुत ही खूवसूरत शहर और वहुत ही साफ-सुथरा। मैं कह सकता हूं कि यह जापान और ताइवान के सव शहरों से ज्यादा खूवसूरत है। जमीन की कमी के कारण घनी आवादी है, लेकिन जन जीवन की आवश्यक सुविधाओं में किसी तरह की कमी नहीं है। साफ नजर आता है कि शासन प्रवन्ध वहुत अच्छा है।

जमीन की कमी के कारण हांगकांग में ऊंचे ऊंचे मकानों का औसत शायद सवसे ज्यादा हो। कतारें की कतारें १५—२० मंजिल के मकानों की वनी हुई हैं और गली गली में दूकानें लगी हुई हैं।

शायद ही शहर का कोई हिस्सा हो जहां शो रूम, दूकानें या स्टॉल न हो। बाजारों में जगह जगह रेस्तरां, नाइट क्लब, कॉफी घर आदि बने हुए हैं। टोकियो की तरह जमीन के नीचे भी शानदार मनोरंजन शालाएं बनी हुई हैं।

सवारी हांगकांग में मैंने अब तक के दौरे में सबसे सस्ती देखी। बस में दस सेण्ट का टिकिट लेकर शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक घूमा जा सकता है। हांगकांग के दस सेण्ट भारत के बारह पैसे के बराबर होते हैं। खान पान सस्ता भी है और बहुत महंगा भी। पहिले दिन रात को मैंने अपने होटल इम्पीरियल में खाना खाया। जापानी रेस्तरां में जिसका बिल आया अट्ठारह हांगकांग डॉलर अर्थात् तीन अमरीकी डॉलर और दूसरे दिन तलाश करके एक भारतीय भोजन शाला में चला गया तो खाने की दर थी तीन हांगकांग डॉलर। खाना बहुत ही अच्छा था। वह चुंगकिंग मेन्सन की बहुत ऊंची इमारत के एक फ्लेट में बनता है और एक चीनी आदमी बनाता है। यह चीनी किसी भारतीय सिन्धी परिवार में नौकरी करता था जहां उसने खाना बनाना सीखा और बाद में उसने अपना अलग कारोबार शुरू कर दिया। उसके सभी ग्राहक भारतीय होते हैं और अधिकांश माहवारी बंधे हुए हैं।

पूर्वी एशिया के अन्य देशों की तरह हांगकांग के लोगों को भी रंग-बिरंगी रोशनी का बहुत शौक है। रात में जब हांगकांग जगमगा उठता है तो ऊपर चढ़कर देखने से लगता है कि चारों तरफ बिजली की रोशनी का बगीचा खिला हुआ है। हवाई अड्डा जैसे हांगकांग के बीचोंबीच बना हुआ है जिसके चारों ओर गोलाकार बस्ती बसी हुई है। हवाई अड्डे से निकलते ही शहर के मकानों की कतार सामने आ जाती है। सिर्फ एक सड़क बीच में है। मैंने यह भी अपने दौरे में पहिली बार देखा कि हवाई अड्डे से होटल तक मुफ्त में कार या लिमूशिन मिल जाती है। भारत की तरह यह सेवा निःशुल्क है।

हांगकांग में सब तरह के लोगों की रुचि का सामान है। यहां

पर्यटक विभाग की ओर से पूरी जानकारी दे दी जाती है। कहां रहना, कैसे शहर देखना, कहां खरीद करना, कहां घूमना फिरना और आमोद-प्रमोद करना। अगर आपको साथ चाहिए वह भी मिलेगा। उसकी दरें बंधी हुई हैं, मयाद के हिसाब से। मैंने कई अमरीकी सैनिकों को चीनी [हांगकांग] की लड़कियां के साथ घूमते देखा।

अगर किसी को साथ में खूबसूरत जवान लड़का चाहिए तो वह भी उपलब्ध है। पर्यटक विभाग इसकी जानकारी आपको देता है। सबसे दिलचस्प बात यहां मैंने यह देखी कि 'अगर पसन्द न हो या मन नहीं भरा हो तो दाम नहीं।' हांगकांग पर्यटक संग की पुस्तिका में मन पसन्द की गारण्टी दी जाती है। एकाध गोरी स्त्रियों को मैंने चीनी लड़कों के साथ भी हाथ मिलाये घूमते देखा। शायद वही भाड़े के जवान होंगे जिनका उल्लेख पर्यटन-पुस्तकों में किया गया है।

तफरीह के अलावा हांगकांग में सबसे ज्यादा लोग खरीददारी के लिए आते हैं। खरीददारी सबसे ज्यादा लुत्फ की चीज है और यहीं आकर आपको मालूम पड़ता है कि हांगकांग सचमुच एक हटवाड़ा है। बेशक यहां बड़े-बड़े विश्वसनीय दूकानदार हैं लेकिन बहुत बड़ा बाजार ऐसा है जिसमें मोलभाव होता है। लेन देन में ऊंच-नीच करना हांगकांग की अपनी विशेषता है। खरीददार का रवैया सब जगह मैंने एकसा देखा है। आमतौर पर वह बड़ी दूकान से कतराता है और छोटी दूकान पर पहुंचता है। छोटी दूकान के प्रति मैं यहां अविश्वास या दुर्भाव प्रकट नहीं करना चाहता लेकिन हांगकांग के बाजार में इस दूकान पर जरा होशियारी से ही काम चलता है।

आप कुछ भी खरीद लीजिए और कितने ही दाम घटवा लीजिए फिर भी तसल्ली नहीं होती कि आपका सौदा ठीक रहा या नहीं। जैसी कि मेरी जिज्ञासा रही है, हर पहलू को देखकर उसका अनुभव करने की। मैंने एक बार तो डॉलर के रुपए खरीदे, सिर्फ यह जानने के लिए कि जो भाव बोला जा रहा है, वह मुझे भारतीय

जान कर ही बोला जा रहा है या उस भाव पर लेनदेन भी होता है। मेरे अचरज की सीमा नहीं रही जबकि दूकानदार ने मुझे एक डॉलर के ग्यारह रुपए दे दिए। मुझे तसल्ली हो गई कि भारतीय रुपए की कीमत या साख विश्व बाजार में सचमुच ही गिरी हुई है। रुपए हांगकांग में कहां से आये, यह जानने के लिए मैंने देखा कि नोटों की गड्डी पर पाकिस्तान बैंक की स्लिपें लगी हुई थीं। पाकिस्तान होकर भारत की काली मुद्रा बाहर जाती है। भले ही वह सस्ते भाव बिके।

खरीददारी की चख-चख को देखने के लिए मैं सचमुच छोटी-छोटी दूकानों पर गया। मुझे एक छतरी लेनी थी क्योंकि हांगकांग में मेरे जाने के दिन से ही बारिश हो रही थी। चौदह डॉलर से घटते घटते एक छतरी मुझे दस डॉलर में मिली। शुरू में चौदह डॉलर में भी वह मुझे ठीक लगती थी और जब खरीद ही ली तो दस डॉलर में भी लगता है मैंने घाटा उठाया, क्योंकि मैं उसकी असली कीमत नहीं जान सकता। वैसे छतरी बहुत अच्छी है। हांगकांग के दस-डॉलर का मतलब साढ़े बारह रुपए हुए और वैसी छतरी देश में तीस-पैंतीस रुपए से कम में नहीं मिल सकती। हांगकांग में मेरे जैसे टटपूंजियों की यही मनोदशा होती है और सबका यही अनुभव होता है। मेरी एक कमजोरी यह भी है कि दूकान में जाने के बाद कुछ न कुछ खरीदे बिना लौटकर नहीं आया जाता, जी नहीं करता।

वैसे हांगकांग के शो रूम मैंने खूब देखे हैं। वैसे ही आलीशान शो रूम हैं; डिपार्टमेंट स्टोर हैं—जैसे लन्दन, न्यूयार्क और टोकियो में हैं। डिपार्टमेण्ट स्टोर में आपको दूकानदार की व्यक्तिगत मान-मनुहार या आवभगत का सामना नहीं करना पड़ता। भाव ताव भी एक होते हैं। आप देखते जाइए, अगर कुछ नहीं ख़रीदना हो, चले जाइए। दुविधा की कोई बात नहीं। दूकान पर पहुंचते ही सेल्समेन या दूकानदार आप पर छा जायेगा और निकलना मुश्किल कर देता है। वहीं मैं हार जाता हूं।

हांगकांग दुनिया की हर चीज की मंडी है। कपड़ा, मशीनें, शृंगार सामग्री, घरेलू सामान, सिक्का, जवाहिरात, सोना, चांदी, रेडियो, केमरा, टेलीविजन, ट्रांजिस्टर आदि आदि। फिर भी कपड़े और जवाहिरात की यहां वेहद खपत है। कपड़े के सूट सीने वाले दर्जी जितने हांगकांग में हैं, उतने वहुत कम शहरों में होंगे। सूट सिलवाना यहां विदेशी पर्यटकों का जैसे एक रिवाज है। चट रोटी पट दाल की तरह दूकानदार आपको सूट सिलवाकर देता है।

जवाहिरात देखकर तो मुझे जयपुर भी ऐसा मालूम होने लगा जैसे एक खोमचा हो। क्या कहने जवाहिरात की वनावट के, क्या सीमा है उसकी कीमत की और क्या खूवी है उसकी सजावट की, देखते ही वनती है। मैंने मालूम किया कि जापान, चीन [राष्ट्रवादी] फिलीपीन आदि से लोग सगाई की अंगूठियां तक खरीदने के लिए हांगकांग आते हैं, हीरे की अंगूठियां। हीरा अफ्रीका से आता है।

फिर भी मैंने यह देखा कि कपड़ा राष्ट्रवादी चीन में हांगकांग से भी सस्ता है। ताइपेह उतरते ही पहिली वार मुझे गर्मी का सामना करना पड़ा। जापान तक मेरा काम कोट में चल गया लेकिन फार्मूसा पहुंचते ही तो वह असह्य हो उठा। मैंने पहिला काम किया, वुश-शर्ट खरीदने का। टेरीलीन का एक अच्छा वुशशर्ट मुझे पौने दो डॉलर में मिल गया। और सवसे अच्छी किस्म का वुशशर्ट तीन डॉलर में। उसी तरह के वुशशर्टों की कीमत हांग-कांग में क्रमशः तीन और पांच डॉलर [अमरीका] थी। राष्ट्रवादी चीन में कृत्रिम धागा इतना सस्ता वनता है कि हर देहाती उसी के कपड़े पहिनता है। हर आदमी के वदन पर टेरीलिन, टेरी कोट, डेकरॉन, नायलोन आदि के कपड़े हैं। हांगकांग में टेक्स न होने पर भी यह कपड़ा चीन के मुकावले में महंगा है। यहां भी इसी चीन से आता है।

तफरी और खरीददारी की वात छोड़िए। अगर राजनीतिक दृष्टि से भी देखा जाय तो हांगकांग पूर्वी एशिया में अत्यधिक महत्व का प्रदेश है। वह माओत्से तुंग की नाक पर मक्खी की तरह लाल-

चीन की धरती पर चिपका हुआ है और लाल-चीन के कबाब में हड्डी की तरह गले में फंसा हुआ है लेकिन चीन भी इसे मीठी छुरी की तरह अपने गले से लगाए हुए है।

माओ के आतंक से पीड़ित होकर भागने वाले हर चीनी के लिए हांगकांग एक खुला निमन्त्रण है। भगोड़ा चीनी हांगकांग को ध्रुव तारे की तरह देखता है। चीन में पत्ता भी हिलता है तो हांगकांग में उसकी खड़खड़ाहट सुनाई दे जाती है। मेरे पहुंचने से एक सप्ताह पहिले ही कुछ लाशें लाल-चीन से पर्ल नदी में बहती हुई हांगकांग में पकड़ी गई थीं। चीनी मिलिशिया की वर्दी में लाशें जिनके सिर कटे हुए और हाथ पीछे बंधे हुए थे। कुल तैयालीस लाशें तब तक मिल चुकी थीं जिन्हें देखने के लिए लोग इकट्ठे हो जाते थे। इसी तरह चीन से भाग कर आने वालों का तांता यहां कभी टूटता ही नहीं। पिछले दस सालों में हांगकांग की आबादी दुगुनी हो गई।

आने वालों में कुछेक को छोड़कर सब चीनी शरणार्थी हैं। यहां से बहुत से चीनी राष्ट्रवादी चीन में पहुंच गये हैं। फार्मूसा की राजधानी ताइपेह की आबादी एक साल में तेरह लाख से बढ़कर साढ़े चौदह लाख तक पहुंच गई हैं।

हांगकांग के अखबार चीन की खबरों से भरे रहते हैं। जिस दिन मैं रवाना हो रहा हूं [चार जुलाई] हांगकांग हेराल्ड में दो ब्रिटिश जहाजी कप्तानों की भेंट छपी है। दोनों ही तीन जुलाई को तीन महीने बाद चीन की हिरासत से मुक्त हुए हैं। दोनों अभी तक यह नहीं समझ पाए हैं कि उनका कसूर क्या था ? फिर भी उनका कहना था कि मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अपना 'अपराध' [चीनी कानून का उल्लंघन] स्वीकार कर लिया है।

इसी तरह जापान की दस व्यापारिक कम्पनियों के कर्मचारियों पर जासूसी का आरोप लगाकर उनको नजरबन्द कर दिया गया है। उनको अब माओ-विचार धारा के पाठ पढ़ाए जा रहे हैं। इस घटना से जापान का व्यापारी समाज क्षुब्ध है और दोनों देशों में

तनाव पैदा हो गया है। आजकल हांगकांग के सत्तावन मछुओं को चीनियों ने पकड़ रखा है और उनसे कहा जा रहा है कि वे सस्ते भाव पर चीनी कम्यून को अपनी मछलियां वेचें।

केण्टन व अन्य कई चीनी प्रदेशों में माओ समर्थक आज कल वड़े पैमाने पर मार काट कर रहे हैं। ये खवरें हांगकांग के अखवारों में खूव विस्तार के साथ छपती रहती हैं और दुनिया भर में हलचल पैदा करती रहती हैं। हांगकांग से चीन की सारी पोल खुलती रहती है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि चीन का अपनी सरहद पर वैसा नियन्त्रण नहीं है और वह छिद्रों को वन्द रखने में असमर्थ है।

यह तस्वीर का दूसरा पहलू है। चीन के साथ हांगकांग ने या व्रिटेन ने व्यापारिक सम्बन्ध वना रखे हैं, अत: आवागमन खुला हुआ है। चीन के लिए हांगकांग ही एक मात्र जरिया है जिससे वह पौंड या डॉलर प्राप्त कर सकता है। चीन को हजारों चीजों की जरूरत विदेशों से पूरी करनी पड़ती है और वह हांगकांग के जरिये ही पूरी कर सकता है। यही एक कारण है कि चीन इस मीठी छुरी को गले से लगाने को मजबूर है।

दूसरे यह कि वह कानूनी तौर पर हांगकांग के साथ छेड़छाड़ कर नहीं सकता। व्रिटेन ने उसे निन्नानवें साल के पट्टे पर ले रखा है। चीन चाहे तो जोर आजमाइशी कर सकता है और वह इतना आसान मसला नहीं है। दूसरी ओर चीन का यह भी सपना है कि हांगकांग की समृद्धि १९९८ में उसे अपने आप ही मिल जायेगी जव कि व्रिटेन के पट्टे की मयाद पूरी हो जायेगी। देखते हैं, चीन का सपना सच्चा होता है या नहीं। १९९८ की कौन जाने, क्या होगा?

— ११ जुलाई, १९६८

वापसी

अमरीका जाने से पहिले पासपोर्ट में देरी के कारण जो स्थिति बनी रही थी वैसी ही स्थिति वापिस दिल्ली पहुंचने से पहिले भी बनी रही, परन्तु दूसरे ही कारणों से। अमरीका से वापिस आने के लिए मैंने हवाई जहाज का अपना टिकिट खुला रख लिया था, अर्थात् रास्ते में अपने ठहरने और रवाना होने की तारीखें तय नहीं की थीं। यह मैंने अपनी सुविधा के लिए किया था। वापसी में सिर्फ पर्यटक या सैलानी की हैसियत से आ रहा था। कोई जान पहिचान नहीं और जान पहिचान का कोई काम नहीं। कितने दिन कहां रुकना है यह सब कुछ अपनी सुविधा पर निर्भर था। इसीलिए मैंने टिकिट पर तारीखें नहीं डलवाईं, जहां से जब जंचा रवाना हो गया। एक सीमा डॉलरों की भी थी। हांगकांग तक आते आते डॉलरों का सफाया करीब करीब हो गया था। उन्नीस दिन फोकट में जापान, फार्मूसा और हांगकांग घूम लिया, यही क्या कम था। हांगकांग में आकर मैंने तीन जुलाई को सीट मांगी तो पान अमेरिकन के दफ़्तर से जवाब

मिला कि बुधवार को उनकी कोई उड़ान नहीं होती । उनकी सहयोगिनी कम्पनी ही डवल्यू. ए. की भी कोई उड़ान नहीं थी । मुझे एक दिन ज्यादा रुकना पड़ा । केशांग से मैंने अपने मित्र और विशेष संवाद दाता श्री नरेश को नई दिल्ली के पते पर लिख भेजा था कि मैं चार जुलाई को पालम हवाई अड्डे पर पहुंच जाऊंगा , परन्तु यह पत्र भी अट्ठाइस जून को रवाना किया था । क्या पता पहुंचने में विलम्ब हो जाय । मैंने हांगकांग में पान एम. के कार्यालय से चाहा कि वे नरेश जी को मेरे बदले हुए कार्यक्रम की सूचना केविल द्वारा करदें । उन्होंने मंजूर किया और यह भी कहा कि केविल कर दिया गया है । वाद में नई दिल्ली पहुंचने पर पता चला कि केविल नरेश जी के पास तो नहीं पहुंचा , परन्तु पान एम. के नई दिल्ली कार्यालय में यह सूचना जरूर पहुंच गई थी कि मैं पांच जुलाई को प्रातः ढाई वजे पहुंच रहा हूं । नरेश जी कभी कच्चा कदम नहीं उठाते । उनको केशांग [फार्मूसा का दक्षिणी शहर] का मेरा पत्र भी मिल गया था , परन्तु पत्र के आधार पर वे चार जुलाई को प्रातः काल पालम हवाई अड्डे पर नहीं पहुंचे । उन्होंने अहतियात के तौर पर पान एम. के कार्यालय से पूछ-ताछ की और पता लगा लिया कि मैं पांच जुलाई को पहुंचूंगा । उन्होंने जयपुर में भी राजस्थान पत्रिका कार्यालय को सूचना देदी । पांच जुलाई को ढाई वजे जव मैं विमान से हवाई अड्डे पर उतरा तो देखता क्या हूं कि जयपुर से भी लक्ष्मी नारायण जी , विजय भण्डारी मेरे कनिष्ठ पुत्र मिलाप चन्द को साथ लिए पहुंच गये । दिल्ली में हमारे व्यावसायिक प्रतिनिधि आर सी. पंडित और जयपुर के मेरे पड़ौसी भगवानदास वर्मा भी मौजूद थे । कैसा वेवक्त विमान आता है । आने जाने वालों को करीव पूरी रात ही जागना पड़ता है । यह ख्वामखां का रतजगा है , लेकिन क्या किया जाय । पालम पर उतरते ही मौसम भी पलटा हुआ देखा । तीन घण्टे पहिले ही वैंकाक में विमान उतरा था तो वारिश हो रही थी और पालम पर लग रहा था जैसे कि लू चल रही हो । मैं अपने मित्रों को दूर से ही हाथ

उठाकर अभिवादन पहुंचाया। अभी कागजी कार्यवाही और कस्टम की छान बीन वाकी थी और सामान आने में भी देर थी। करीव एक घण्टा लगा। यहां यह उल्लेख करना भी अनावश्यक नहीं होगा कि कस्टम वालों ने किसी तरह की परेशानी पैदा नहीं की। वैसे मेरे पास कोई कीमती या व्यावसायिक महत्व की कोई चीज भी नहीं थी, लेकिन सुना करता था कि कस्टम वाले बहुत परेशान करते हैं, एक एक कपड़े को निकाल निकाल कर देखा करते हैं। मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। अगर ये सारा सामान बिखेरते तो कस्टम ड्यूटी तो उन्हें मिलती या नहीं, लेकिन मुझे कम से कम एक घण्टा और लगता। फिर भी सामान छुड़ाने और सारी कार्यवाही करने तक साढ़े तीन वज गये थे। तव कहीं जाकर मैं अपने मिलने वालों के पास पहुंचा। क्या खुशी थी जिसका अन्दाज सिर्फ चेहरे देख कर ही लगाया जा सकता था। दो महीने से ज्यादा समय तक दुनिया का पूरा चक्कर लगाकर आया हुआ, मैं अभी अभी पालम पर उतरा था, घर जाने का तकाजा, सवेरे ढाई तीन का वक्त वात करें तो क्या करें, कितनी तरह की करें। उत्सुकता मुझे भी थी जयपुर के हाल चाल विस्तार से जानने की और उनको भी थी मेरी यात्रा के वारे में सुनने की, जिसे मन ही मन दवाये हुए हम तुरन्त पालम से टैक्सी में बैठकर रवाना हो गये। नरेश जी के यहां पहुंच कर वातचीत में लग गये और वातें करते करते ही सवेरा हो गया। वात का कोई सिल-सिला भी नहीं, जो कहो सुनो वही नयी नयी लगती थी लेकिन उस रात फिर नींद नहीं आई।

सवेरा होते ही जयपुर से टेलीफोन पर टेलीफोन आने लगे। जयपुर के वारे में मुझे इतना मेरे साथियों ने जरूर वता दिया था कि वहां लोगों में मेरी यात्रा को लेकर जवर्दस्त दिलचस्पी है। इसका हल्का सा संकेत मुझे अमरीका में मिले हुए पत्रों से भी मिल गया था, परन्तु यहां पहुंचने पर लगा कि लोगों में दिलचस्पी कुछ ज्यादा ही थी। सवेरे से ही जव टेलीफोन आने लगे और जयपुर पहुंचने के

तकाजे होने लगे तो मुझे अधिकाधिक अनुभव होने लगा कि मुझे जो कुछ बताया गया था वह अतिरंजित नहीं था। मुझे यह बताया गया था कि अमरीका प्रवास में मैंने जो कुछ लिखा था, उसे प्रत्येक पाठक ने पढ़ा है और वह पाठक के लिए एक नया ही अनुभव था। मुझे जो टेलीफोन मिल रहे थे वे भी सिर्फ नजदीक के लोगों की तरफ से नहीं थे बल्कि कई पाठकों की ओर से भी थे। मुझे सचमुच ही संतोष हुआ कि मेरा परिश्रम बेकार नहीं गया।

सुबह नौ बजते बजते मैं नहा-धोकर तैयार हो गया। चाहता था अमरीकी सूचना विभाग में जाना। मैं चाहता था कि तभी वहां के अधिकारियों से मिलता आऊं और ब्रिटिश सूचना विभाग में भी जा आऊं तो दुबारा व तुरन्त दिल्ली न आना पड़े। मैं शुक्रवार को पहुंचा था और शनिवार-रविवार की छुट्टी थी। नरेशजी को भी उन दिनों फुर्सत थी। अपने साथ घसीटा। अमरीकी सूचना विभाग में अधिकारियों की वही प्रतिक्रिया देखी जो जयपुर से मिल रही थी। सब लोग बड़े ही खुश थे। प्रेमसागरजी वर्मा ने मुझे भोजन पर बुलाया। दिल्ली के दोनों हिन्दी दैनिकों के संपादक रतनलाल जोशी व अक्षय कुमार जैन भी थे। उनको भी आश्चर्य था कि अमरीका में घूमते हुए मुझे इतनी फुर्सत कहां से मिल गई कि लगातार लिखता ही रहा।

नई दिल्ली में सबसे ज्यादा उत्साहित देखा मैंने संसद सदस्य श्री रामनिवास मिर्धा को। वे दुनिया में काफी घूमे-फिरे हैं। उनके देखने का ढंग भी अन्य यात्रियों के मुकाबले एक जिज्ञासु के जैसा होता है। मैं उनकी विदेश यात्राओं के अनुभव सुनता ही रहा हूं। सफदरजंग रोड के निवास स्थान पर खाने पर बहुत बातें हुईं। वे भी मेरी यात्रा के विवरण को पढ़ते रहे थे और अपने अनुभवों से मिलाते रहे थे।

नई दिल्ली में तीन दिन रुका। नौ जुलाई को प्रातःकाल रेल से जयपुर पहुंचा। छः जुलाई को श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल ने मुझे जय-

पुर सें टेलीफोन पर तकाजा किया तो मैंने यों ही मजाक में ही कह डाला था कि वरसात होने पर ही आऊंगा, लेकिन वरसात तो जयपुर में सात जुलाई से ही शुरू हो गई। आठ जुलाई की रात को रवाना होकर नौ जुलाई को जव सवेरे जयपुर पहुंचा तो सचमुच वर्षा की झड़ी लगी हुई थी लेकिन फिर भी स्टेशन पर देखता क्या हूं कि कोई पांच सौ की भीड़ जमा है। मैं वैसे ही जन-जीवन के वीचोंवीच रहता हूं परन्तु जन-संकुल कभी नहीं रहता। इतना जमाव देखकर मैं प्राय: अस्त व्यस्त हो गया। मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि किस तरह व्यवहार करूं। मैं अपने हाथ में भी न था। एक ओर भगवानदासजी छंगाणी ने एक स्वागत समिती जैसी योजना वनाली थी तो दूसरी ओर मेरे पिता अपनी दुर्बल अवस्था व उग्र स्वभाव के साथ वहां छाये हुए थे। कुटुम्बी, समाचार-कर्मी साथी और मित्रों की रेलपेल में वड़ी मुश्किल से मैं अभिवादन मात्र की रस्म अदायगी कर पाया। कुछेक ने यह भी शिकायत की कि मैं स्टेशन पर उनको अभिवादन नहीं कर पाया। मैं स्वयं तो कुछ कर ही नहीं रह था, वल्कि यन्त्र-चालित था। इसके अलावा मुझे आधे घण्टे वाद ही सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय में मेरे पत्रकार साथियों के वीच पहुंचना था। इस कार्यक्रम की भी छोटी-सी कहानी है। श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट ने मुझे दिल्ली में ही फोन पर पकड़ा। वे अपने काम में आमतौर पर जोश में ही रहते हैं, लेकिन उस दिन कुछ ज्यादा ही जोश दिखाया। चार-पांच टेलीफोन लगातार कर गये। मैं नरेशजी के घर पर नहीं मिला तो अमरीकी सूचना विभाग में और वहां भी नही मिला तो फिर घर पर। उनकी इच्छा थी कि मैं जयपुर पहुंचते ही प्रेस रूम में उपस्थित हो जाऊं। प्रेस रूम जहां मैं अक्सर जाता रहता हूं, वहां जाने में मुझे सोचना भी क्या था। प्रेस रूम के लिए जो समय निर्धा-रित था वह इसलिए कम रह गया था कि दिल्ली से रेल दो घण्टे देर से पहुंची थी।

प्रेस रूम में पहुंचने के तकाजे के कारण स्टेशन पर बहुत मित्रों

से मैं वात भी नहीं कर सका । स्टेशन का वातावरण भी ऐसा हो गया था कि वात करना संभव नहीं था । प्लेट फार्म पर तो भारी जमाव था ही, प्लेट फार्म से जव निकला तो मेरी अस्त-व्यस्तता दुगुनी वढ़ गई जव देखा कि सेठ जीयालाल ने अपना पूरा वैण्ड ही मुसाफिर खाने में कायदे से खड़ा कर रखा है । एकदम जव वैण्ड वाजे का तुमुल नाद शुरू हुआ तो कुछ समझ ही नहीं पड़ रहा था । मैं जैसे तैसे वैंड वालों को हाथ जोड़ कर आगे वढ़ा तो क्या देखता हूं कि जीयालाल जी की वग्गी सजी हुई खड़ी है । गनीमत थी कि उस समय वर्षा हो रही थी, वरना वे मुझे पकड़ कर वग्गी में ही विठा देते और घर तक इसी तरह ले जाते । मुझे राहत मिली, जैसे कि कोई अभियुक्त सजा पाते पाते वरी हो गया हो । यह सव मुझे कहां फबता है ? जीयालाल जी से मैंने पूछा कि यह सव किस लिए किया तो उन्होंने वात सुनने से ही इन्कार कर दिया और भगवानदासजी छंगाणी की तरफ इशारा कर दिया । खैर !

जयपुर में मुझे यह देख कर वेहद खुशी हुई कि लोगों ने मेरे यात्रा-वृत्तान्त को वड़े चाव से पढ़ा था । जो मिला उसने पहिली वात यह कही कि उसने पढ़ा है । कुछ लोग मिले, जिन्होंने सव लेखों की फाइलें वना रखी हैं । जो मिला उसने यही आग्रह किया कि मुझे एक पुस्तक प्रकाशित करवानी चाहिए । दर्जनों संस्थाओं के प्रतिनिधि मिले जो चाहते थे कि मैं उनके यहां जाकर अमरीका-यात्रा परं वातचीत करूं । यह सिलसिला करीव महीने भर चलता रहा और वाद में भी कोई न कोई कार्यक्रम वनता ही रहा । मेरे वापिस आने की खवर सुनकर चिट्ठियां आने लगीं । उनमें भी वही वात । जव मैं जुलाई के अन्तिम सप्ताह में जोधपुर गया तो वहां भी वैसा ही चाव देखा । मैं दो दिन के लिए गया था और तीन दिन पूरे कर देने के वाद भी जैसे कुछ अधूरा ही रहा गया । वोरुंदा जाना चाहता था, नहीं जा सका ।

जोधपुर प्रवास में एक महत्वपूर्ण काम यह हो गया कि प्रस्तुत प्रकाशन पर काम शुरू हो गया, जिसकी भूमिका जयपुर में वन गई

थी । बन्धुवर कोमल कोठारी और विजयदान देथा संयोग से उस समय जोधपुर में ही मिल गये । वे पहिले से ही तैयार बैठे थे और रूप बाद में तैयार हुआ था । पुस्तक के प्रकाशन की एक रूपरेखा तैयार हो गई । अगर सुस्ती कहीं हुई है तो वह मेरी तरफ से । उनकी ओर से सिर्फ तकाजा ही तकाजा बना रहा । मेरी सुस्ती भी कोई काम करने की सुस्ती नहीं थी, वल्कि यह कि मैं एक महीने से ज्यादा समय तक एक जगह टिक कर वैठ ही नहीं पाया । आज यहां तो कल वहां और सुवह कहीं तो शाम कहीं । एक नया ही अनुभव था , परन्तु मुझे लगा कि इस अनुभव से मेरी जिम्मेदारियां ज्यादा बढ़ गईं । कह नहीं कि सकता मैं उन्हें पूरी भी कर सकूंगा या नहीं ।

अमरीका से वापसी पर मेरा एक अनुभव तो ऊपर लिख ही चुका हूं । दूसरा अनुभव मुझे लोगों से बातचीत करने पर हुआ । वेशक मुझसे सब तरह की बातें पूछी गईं । मैंने लिखी भी बहुत बातें थीं, लेकिन मुझे यह जानकर बड़ी हैरत हुई कि लोगों ने सबसे ज्यादा दिलचस्पी जो कहीं कहीं खफ्त भी बन गई, रात्रि चर्या [नाईट-लाइफ] के बारे में दिखलाई । बड़े बड़े परिपक्व बुद्धि वाले लोगों ने भी इस मामले में असाधारण कौतूहल दिखलाया और कुछ लोग तो इतने दीवाने नजर आये कि मुझसे अलग ले जाकर भी सवाल करते हुए नजर आये । मुझे लगा कि हमारे यहां की बन्दिशें लोगों के लिए बर्दाश्त के बाहर हो गई हैं और वे उन्हें तोड़ फेंकने को छटपटा रहे हैं । मुझे यह भी लगा कि न जाने लोगों ने विदेशों के बारे में किस तरह की धारणाएं बना रखी हैं । हो सकता है बहती गंगा में हाथ धो लेने की मनोवृत्ति हो । कुछ लोगों ने तो मेरी लिखावट की सच्चाई पर भी शायद शंका प्रकट की । इनकी शिकायत थी कि मैंने किसी प्रसंग का वर्णन करते करते हो जैसे 'सीन' काट दिया । उन्होंने अपने कौतूहल के वेग में मेरी अमरीकी दिनचर्या पर भी गौर फरमाने की तकलीफ नहीं की । मैं उन्हें किस तरह समझाता कि मैं जानने की नीयत से अमरीका गया था , भोगने की गरज से नहीं । वहां का

भोग भी मेरी जानकारी का ही एक विषय था। मेरा यह मानना है कि जीवन को भोगने के लिए विशेष क्षमता की आवश्यकता होती है और वह क्षमता यदि किसी में है तो वह कहीं भी भोग का सुख प्राप्त कर सकता है। यह एक मानसिक रुझान का प्रश्न भी है।

दूसरी दिलचस्पी जो मैंने लोगों में यहां देखी, वह अमरीका के गरीबों के प्रति। यह एक स्वाभाविक रुचि थी, परन्तु अमरीका के गरीब की आर्थिक स्थिति का विस्तृत ब्यौरा सुनकर मेरे श्रोताओं की दिलचस्पी दूसरा ही रंग ले लेती थी। अमरीका में गरीब की परिभाषा है दो सौ पचास डॉलर या इससे कम मासिक आय, यह जान कर बहुतों को आश्चर्य होता था।

अधिकांश पाठकों ने मेरे यात्रा-वृत्तान्त पढ़कर मुझे यह बताया कि उन्होंने घर बैठे अमरीका देख लिया। जोधपुर में एक मित्र ने मुझ से एक सभा में प्रश्न किया—अमरीका के साहित्यकारों के विषय में, परन्तु मेरे पास कोई जवाब नहीं था। यह एक मात्र प्रश्न था जो मेरे लिए लाजवाब निकला। लेकिन मैंने साफ साफ माफी मांग-ली। अमरीकी साहित्य के बारे में मेरी खुद की कोई जानकारी नहीं, इसलिए मैं वहां के साहित्यकार के बारे में भी क्या जान सकता था? जोधपुर के लोगों को यह बहुत अच्छा लगा कि मैंने अमरीका में भी एक जोधपुर [अलपासो] खोज लिया।

अमरीका यात्रा के दौरान एक सिरदर्द जो हमेशा बना रहा, वह वापस आने पर सचमुच दूर हो गया। वह था सौगातों का। मैंने अमरीका के पूरे पैंतालीस दिन में कोई चीज नहीं खरीदी लेकिन जापान और हांगकांग से छोटी-मोटी चीजें जरूर बटोर लाया था, जिनकी संख्या सौ से ज्यादा ही होगी। चयन में मैंने आम रुचि को ही महत्व दिया और सचमुच मेरा धर्म पूरा हो गया। इक्के-दुक्के ही यार-दोस्त बचे होंगे, जो इस भेंट से वंचित रह गये और वह भी जैसे कि प्रसाद वितरण में कुछ लोग भारी भीड़ में आंखों से ओझल हो जाते हैं। अलबत्ता कीमती चीजों की फर्माइश मैं पूरी नहीं कर

पाया लेकिन मुझे यह जान कर तसल्ली हुई कि किसी को कोई गिला नहीं। मैं किसी के लिए कुछ नहीं लाता तो भी कोई शिकायत नहीं होती लेकिन यह एक स्वाभाविक चाव है जो देने वाले के भी और लेने वाले के भी मन में होता है। थोड़ी सूझ-बूझ से अगर मैं यह भाव बनाये रख सका तो मुझे इसमें कोई जोर नहीं आया। दुनिया भी देखली और घर में भी मुंह दिखाने लायक रह गया यानी खाली हाथ नहीं आया। इसके अधिक मुझे और क्या चाहिये !

— १२ जुलाई, १९६८

मेरी अमरीकी यात्रा का विवरण तब तक अधूरा ही रहेगा — जब तक कि मैं अमरीका में प्रवासी भारतीय श्री प्रह्लाद नारायण गर्ग और उनकी पत्नी निर्मला बहिन की सहायता को स्वीकार न कर लूं। श्री गर्ग आठ वर्ष से अमरीका में हैं; योग्य एवं ख्यातिप्राप्त इंजीनियर हैं। वे राजस्थान के चीफ इंजीनियर श्री हरिदत्त जी एवं श्री सतीशचंद्र अग्रवाल के बहनोई हैं। मेरी यात्रा की सूचना मिलते ही उन्होंने पूरे सप्ताह की छुट्टी ले ली और इस सप्ताह में उन्होंने मुझे खरीददारी, बेंक-चर्या, ट्रैफिक के नियम, देहाती जीवन एवं कल-कारखानों का यथार्थ अनुभव सुनाया। इसी संपर्क ने मुझे अमरीकी जीवन के साथ घुल मिल जाने का अवसर प्रदान किया। स्वर्गीय बाबू कामता प्रसाद जी की पुत्री मंजु गुप्ता भी मिली। मंजु का विवाह गर्ग साहब के छोटे भाई शान्ति स्वरूप जी से हुआ है। मैं इस पारिवारिक सीमा में शीघ्र आश्वस्त भी हो गया और अमरीका से लौट आने पर उनके प्रति स्नेह को व्यक्त किये बिना अपनी कहानी को अधूरी ही मान पाऊंगा।